सारिका

जनवरी १९८४

तथा भव्य कहानियाँ और सभी स्तंभ!



इस वर्ष के महत्वपूर्ण प्रकाशन

अज्ञेय की सम्पूर्ण कहानियां :
छोड़ा हुआ रास्ता--भाग 1
लौटती पगडंडियाँ—भाग 2
आरम्भ से अब तक लिखी लेखक की सत्तर के लगभग कहानियां, महत्वपूर्ण भूमिकाओं तथा अध्ययन के लिए उपयोगी परिशिष्टों सहित। विशिष्ट साज-सज्जा। दोनों खण्ड आकर्षक डिब्बे में एक साथ। 40-00

पैर तले की ज़मीन : मोहन राकेश—लेखक का बहुप्रतीक्षित अन्तिम नाटक। 8-00

औरत : एक दृष्टिकोण : अमृता प्रीतम—विश्वविख्यात लेखिका का अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के लिए विशेष रूप से लिखित एक रोचक अध्ययन। 8-00

अन्तरा : अज्ञेय—'भवन्ती' की परम्परा में मूर्धन्य लेखक की विशिष्ट कृति। 12-00

अमीर खुसरो : भावात्मक एकता के अग्रदूत : संपा० डा० मलिक मोहम्मद—खुसरो की सातवीं जन्म-शती पर विशेष रूप से प्रकाशित, राष्ट्रपति महोदय द्वारा उद्घाटित, महत्वपूर्ण ग्रंथ। 25·00

हमारी विरासत : डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन—प्रख्यात दार्शनिक की एक और अध्ययनपूर्ण कृति। 10-00

संत साहित्य के प्रेरणा स्रोत : आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—संत साहित्य के विशेष अध्येता और लेखक की नवीन खोजों से पूर्ण विशेष रचना। 20-00

हिंदी साहित्य के विकास में दक्षिण का योगदान : संपा०—जी० सुन्दर रेड्डी, राव, राजू—एक सामयिक विषय पर महत्वपूर्ण अध्ययन, सभी दक्षिणी भाषाओं के योगदान पर स्वतंत्र निबंध। 8-00

अच्छी शिक्षा की ओर : डा० गोवर्धनलाल बख्शी—सफल शिक्षा के अधुनिक प्रयोगों पर एक विशेषज्ञ की रचना; लेखक सेन्ट्रल बोर्ड आफ सेकिण्डरी एजुकेशन के अध्यक्ष हैं। 15-00

विश्वविख्यात महिलाएं : आशारानी व्होरा—अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष में विशेष रूप से प्रकाशित, सचित्र कृति। 12-00

भारतीय चलचित्र का इतिहास : फीरोज रंगूनवाला—सिने जगत और साहित्य के मान्य अध्येता का विशद, रोचक अध्ययन, सचित्र। 12-50

वातायन : शिवानी—लोकप्रिय लेखिका के सामयिक विषयों को आधार मानकर लिखे गये ललित निबंध। 7·00

कंचनजंघा : सत्यजित राय—प्रख्यात फिल्मनिर्माता की प्रसिद्ध फिल्म का नाट्य रूप, सचित्र। 7-00

उपन्यास

श्रृंगार : लक्ष्मीनारायण लाल—लोकप्रिय लेखक का नवीन दृष्टिकोण से संपन्न महत्वपूर्ण उपन्यास। 7-00

कोई नहीं जानता : अमृता प्रीतम—विख्यात लेखिका की नवीनतम और अत्यन्त पठनीय कृति। 5-00

किसलिए : प्रभाकर माचवे—आधुनिक जीवन की समस्याओं को भीतर से कुरेदनेवाला श्रेष्ठ उपन्यास 10-00

वसंत की प्रतीक्षा : लक्ष्मीनारायण लाल—प्रेम के चिर पुरातन विषय पर एक विशिष्ट कृति जो सोचने को बाध्य करती है। 8-00

डाक बंगला : कमलेश्वर—लोकप्रिय लेखक की एक पुरानी प्रसिद्ध कृति का नवीन संशोधित संस्करण। 7-00

महाकाल : गुरुदत्त—कालिदास के जीवन पर आधारित एक मनोरंजक उपन्यास। 10-00

मृत्युहीन : विमल मित्र—एक बिलकुल अछूते विषय पर बहुत ही अनूठा उपन्यास। 8-00

प्रारब्ध और पुरुषार्थ : गुरुदत्त—अकबरकालीन जीवन पर आधारित एक विशिष्ट रचना। 8-00

आज कल परसों : विमल मित्र—लेखक के दो रोचक और लघु उपन्यास : 'आज कल परसों' और 'गुलजारी बाई'। 7-00

युग बदल गया : सोहण सिंह सीतल—इसी वर्ष के साहित्य अकादमी पुरस्कार से विभूषित श्रेष्ठ पंजाबी उपन्यास। 15-00

रात और दिन : मन्मथनाथ गुप्त—अफसरशाही की कारगुजारियों और भ्रष्ट जीवन का पर्दाफाश करनेवाला मनोरंजक उपन्यास। 10-00

चरित्र : विमल मित्र—मानव चरित्र की जटिलताओं को बड़े ही रोचक ढंग से व्यक्त करनेवाली कृति। 10-00

सबसे बड़ा छल : मधुकर सिंह—ग्राम जीवन के भ्रष्टाचार को व्यक्त करनेवाला मार्मिक उपन्यास। 7-00

कहानी

स्वयंसिद्धा : शिवानी—लोकप्रिय लेखिका की एक-से-एक बढ़कर रोचक और मार्मिक कहानियां। 5-00

कोयला भई न राख : राजेन्द्र राव—सत्य घटनाओं पर आधारित मार्मिक कहानियां। 8-00

मेरी प्रिय कहानियां : अज्ञेय— 7-00

मेरी प्रिय कहानियां : रमेश बक्षी— 7-00

मेरी प्रिय कहानियां : राजेन्द्र अवस्थी
इस लोकप्रिय माला में नई पुस्तकें, लेखकों की भूमिकाओं सहित। माला में अब तक 28 पुस्तकें छप चुकी हैं। 7-00

कविता

सुबह के बाद : देवराज—प्रतिष्ठित लेखक की नवीन कविताएं। 12-00

आज के लोकप्रिय कवि : रामकुमार वर्मा—लोकप्रिय कवि माला की तेरहवीं पुस्तक, कवि की सत्तरवीं वर्षपूर्ति पर प्रकाशित। संपादक—डा० राधेकृष्ण श्रीवास्तव की विस्तृत भूमिका। 5-00

नाटक

व्यक्तिगत : लक्ष्मीनारायण लाल—लेखक का एक बहुप्रशंसित नाटक, मंचन के चित्रों सहित। 6-00

जीवनी

इंदिरा गांधी : सफलता के वर्ष : ख्वाजा अहमद अब्बास—प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के जीवन और प्रधान मंत्रित्व-काल का विवेचन करनेवाली महत्वपूर्ण कृति। 12-00

हास्य-व्यंग्य

बुरे फंसे : बरसानेलाल चतुर्वेदी—एक-से-एक बढ़कर मनोरंजक हास्य-व्यंग्य की कहानियां। 6-00

बालोपयोगी

शकुन्तला : अवनीन्द्र नाथ ठाकुर—विख्यात कलाकार की एक श्रेष्ठ कृति, अनेक चित्रों सहित। 3-00

आजादी का गीत : निरंकारदेव सेवक—बाल साहित्य के सुप्रसिद्ध लेखक की बच्चों के लिए लिखी कविताएं। 2-00

प्यारी-प्यारी चिट्ठियां : प्रयाग—रोचक पत्रों के माध्यम से बच्चों को विविध विषयों का ज्ञान कराने वाली रचना। 1-2[illegible]

विविध

फीजी : भगवान सिंह—'देश और निवासी' माला की सत्ताईसवीं पुस्तक, फीजी में नियुक्त भारतीय उच्चायुक्त द्वारा लिखित। बीसियों चित्र। 4-00

आओ, गुलाब उगायें : स्वेश कुमार—गुलाब की खेती के विशेषज्ञ की सरल भाषा में लिखी, अनेक चित्रों से युक्त, पुस्तक। 6-00

जवान : राष्ट्र का गौरव : सं० डा० श्यामसिंह शशि—भारतीय सैनिक की गौरव-गाथा पर एक सामयिक कृति। 6-50

मानव शरीर : एक अद्भुत यंत्र : श्री रामनाथ 'सुमन'—मानव-शरीर की विशेषताओं का ज्ञान करानेवाली सचित्र पुस्तक। 4-00

आगामी प्रकाशन

कवि की प्रेयसी : इलाचन्द्र जोशी—कालिदास-पूर्व नाटककार सौमिल्ल के जीवन पर आधारित श्रेष्ठ सांस्कृतिक उपन्यास।

एक नशा, हज़ार मुसीबतें : विराज—शराबखोरी के दुष्परिणामों पर एक सचित्र, रोचक रचना। [illegible]-00

नाच्यो बहुत गोपाल : अमृतलाल नागर—भंगियों के जीवन पर आधारित महत्वपूर्ण उपन्यास।

सांगीत : एक लोकनाट्य परम्परा : राम नारायण अग्रवाल—उत्तर भारत की सांगीत परम्परा का विशद अध्ययन और विवेचन, सचित्र।

शल्य क्रिया : डा० आत्म प्रकाश, कैलाश साह—आधुनिक शल्यक्रिया पर एक रोचक सचित्र कृति।

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

जनवरी, १९७६

वर्ष : १६ ; पूर्णांक : १७७

देवदासियां : साहित्य के चौखटे में--विशिष्ट खंड

संपादक : कमलेश्वर

● मुख्य उप-संपादक : आनंद प्रकाश सिंह
● उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
● कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद्र झा, भिकाजी शिर्के

इस अंक में 'देवदासी विशिष्ट खंड' प्रकाशित किया जा रहा है. दक्षिण-पश्चिम महाराष्ट्र और विशेष रूप से गोवा के मंदिरों में देवदासी प्रथा सामंती युग के अवशेष के रूप में अब भी जीवित है. यह प्रथा अंधविश्वासों के सहारे भारतीय नारी के शोषण का घिनौना इतिहास प्रस्तुत करती है. इस खंड की कहानियां देवदासियों के जीवन, संस्कृति और उनकी यंत्रणाओं का सही दस्तावेज हैं. इस खंड में जितने भी संस्मरण प्रस्तुत किये गये हैं वे सब देवदासी पुत्र श्री राजाराम पैंगीणकर की आत्म रचना--मी कोण--से लिये गये हैं. इस खंड के संचयन में हमें श्री विष्णु निवसकर, श्रीमती मालिनी बिसेन और श्री प्र. श्री. नेरूरकर से विशेष सहयोग मिला है.

इस अंक के 'देवदासी' विशिष्ट खंड के सज्जाकार हैं 'सारिका' के पाठकों के चिरपरिचित चित्रकार अक्षय कुमार झा. भागलपुर (बिहार) निवासी इस चित्रकार ने बड़ौदा युनिवर्सिटी से फाइन आर्ट का एम. एस. डिप्लोमा प्रथम श्रेणी में प्राप्त किया और चार वर्ष के भीतर तीस हजार से ऊपर रेखाचित्र बनाये. आजकल स्वतंत्र रूप से चित्रकारी में लगे हुए हैं.

पाठकीय

अक्तूबर अंक

● **सोमेश्वर सिंह, २२८, भाभा होस्टल, रीजनल इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, जमशेदपुर, लिखते हैं:**

'सारिका' के अक्तूबर अंक की सोमानिया और वेस्ट-इंडीज की कहानियों में **'लहरें तुम्हें पुकारें'** काफी रोचक रही. अन्य कहानियां सामान्य लगीं.

प्रेमसिंह 'नेगी' की **'कथा की कथा'** ने आज के सामान्य जन की विपत्तिग्रस्त स्थिति का रोचक दिग्दर्शन कराया है.

'अंधेरे की उम्र' के जनार्दन बाबू ने आज के सभ्य और ऊंचे कहे जाने वाले लोगों का अच्छा प्रतिनिधित्व किया है. □

● **अशांत श्रीभोला सिंह, रूप-छाया आर्ट कैलेंडर्स, बेगूसराय (बिहार) से लिखते हैं :**

कहानी-प्रमुख पत्रिकाओं में **'सारिका'** मेरी मनपसंद पत्रिका है. पिछले दस वर्षों से नियमित पाठक हूं. कम कीमत में ढेर सारी सामग्रियां, जो केवल मनोरंजन ही नहीं करती, बल्कि झकझोर कर जगाती है, क्योंकि **'सारिका'** की कहानियां मात्र बहस से जुड़ी नहीं होतीं हैं. इसकी कहानियां जीवन के जीवंत क्षणों की सुगबुहाट होती हैं. आधुनिक परिवेश में आम आदमी की जिंदगी में घटी घटनाओं की सही अभिव्यक्ति नयी दृष्टि देती है. सामाजिक संभावनाओं के इर्द-गिर्द **'सारिका'** की कहानियां बेहतर जमीन की तलाश होती हैं.

'सारिका' ने लघुकथाओं के माध्यम से सामाजिकता को दिशा-बोध दिया है.

अक्तूबर अंक में रॉबिन भाई की आत्मरचना **'गर्दिश के दिन'** ईमानदारी के साथ तराशी गयी है. □

● **श्रीमती मिथिलेश दीक्षित, वाई. डी. डिग्री कालेज के समीप, जयदेव नगर, लखीमपुर खीरी से लिखती हैं:**

'सारिका' के अक्तूबर अंक में रॉबिन शॉ पुष्प ने अपने 'गर्दिश के दिनों' को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित किया है. प्रारंभिक जीवन के विलक्षण और विषम क्षणों में अपने निर्धारित साध्य को पाने का विफल प्रयास करता हुआ हिंदी का यह लेखक अब उसे बहुत कुछ पा चुका है और पीछे का बहुत कुछ भूल भी जाये, पर पाठक उसके जीवन की इन घटनाओं को आत्मसात कर चुके होंगे और कभी न भूल सकेंगे.

कृष्ण बलदेव वैद के उपन्[यास] **'दर्द लादवा'** का एक अंश 'इं[तहा]' जो कि टूटे-फूटे वाक्यों के चंद टु[कड़ों] का जोड़-तोड़ है, अद्‌भुत कथा[-] शिल्प का सर्वथा नवीन प्रयोग है.

कथा का फॉर्म किसी स्वप[्ना]विष्ट, सन्निपात ग्रस्त अथवा विक्षि[प्त] व्यक्ति का प्रलाप लगता है, [कि]न्तु इसके मूलमें निहित आक्रोश, [प्र]पीड़ा की छटपटाहट हृदय के अन्त[र] पर दर्द से भीगे कोने को छू जाती [है].

हिंदी के अतिरिक्त भी अ[न्य] भाषाओं के कथा-साहित्य का परिचय पा कर बहुत प्रसन्न होती है. हि[ंदी] में **'सारिका'** ही एकमात्र ऐसी पत्रि[का] है जो हमें देश-विदेश के कथा साहित्य से अवगत कराती है. □

● **राजेंद्र शर्मा 'कपिलेश्वर', सीता रोड, चंदौसी, मुरादाबाद से लिखते हैं :**

अक्तूबर, ७५ का अंक पढ़ा. इतने कम मूल्य में इतनी अच्छी सामग्री, वास्तव में प्रशंसनीय सेवा है. गोपालचंद्र जोशी का लेख अत्यंत उपयोगी लगा. **'सारिका'** का इस दिशा में सराहनीय प्रयास है, क्योंकि हिंदी पाठकों को यह हिंदुस्तान के बाहर कहानी-विधा के अंतर्गत होने वाले विकासों, उनकी मूल प्रवृत्तियों व प्रेरणाओं एवं शिल्प के विषय में परिचित कराती है.

'अपने-अपने साथी' की संवेदना और **'प्यार की जीत'** की उत्तेजना भली लगी. **'लहरें तुम्हें पुकारें'** में वेस्ट-इंडीज का अंतस् बड़े ही कारुणिक रूप से उभर कर आया है.

छोटी कहानियों की एप्रोच जीवन के प्रति बड़ी ही तीखी और सच्ची है. **'एक खिड़की की खातिर'** मर्मस्पर्शी है. **'ट्रांसफर'** के खन्ना साहब और **'आइसक्रीम का एक कोन'** का कुंतल अतिरिक्त रूप से जागतिक मानव हैं. दोनों ही आजकल के जमाने में बड़ी उपलब्धियां हैं. **'इंतहा'** पढ़ कर लगा कुछ अधिक ही भाषणबाजी और दुहराव है अथवा मनःस्थिति विशेष का विशिष्ट कथ्य अथवा कथ्य का विशिष्ट अंदाज.

● **गोविंद सिंह थापा, युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया, लखनऊ लिखते हैं :**

प्रेमसिंह नेगी जी की कहा[नी] **'कथा की कथा'** कुमाऊं [के] अधिकांश घरों का एक मार्मि[क] वास्तविक चित्रण है. नेगी जी [ने] कहानी के माध्यम से पहाड़ी जीव[न] का, समाज का, वर्णन किया है. उनकी पहुंच अत्यंत गहरी एवं वास्तविक है. कहानी पढ़ने से ऐसा अनुभ[व] होता है जैसे हम कुमाऊं के किसी गां[व] में पहुंच गये हैं. नेगी जी ने कहानी [के] माध्यम से पहाड़ी गावों की आर्थि[क] सामाजिक समस्याओं पर भी प्रका[श] डाला है. उनकी कहानी सिर्फ कहा[नी] ही नहीं, कुछ और भी है. □

● **अमर दोषी, वीरभद्र लिखते हैं :**

पत्रिका **'सारिका'** में, ठीक [त]ब याद नहीं आ रहा है, परंतु का[फी] दिनों से पढ़ता आ रहा हूं. अक्तूबर, ७५ का बेहद पसंद आ[या.] कारण स्पष्ट है, सभी कहानियां मान[]वीय क्षेत्र की समानांतर कहानि[यां] हैं. मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ कहानी चुन[ना] तो असंभव है, परंतु कई कहानियां हृदय के शांत तारों को झंकृत क[र] गयीं. मेरे हृदय के शांत तारों [को] झंकृत करने का सफल साहस यशपा[ल] जी ने **'कौन जाने'** कह कर, प्रेम [सिं]ह

...ी ने 'कथा की कथा' सुना कर ...या. □

नवंबर अंक

...नीलमकांत जैन, नया बाजार, ...लियर से लिखते हैं :

...सबसे पहले मैं 'सारिका' नवंबर ...क के लिए धन्यवाद देना चाहूंगा, ...सने गणिकाओं या नगरवधुओं या ...ह सकते हैं कि 'समाज के उज्ज्वल ...ल पर लगे कलंक' के जीवन के ...परिचित आयाम से परिचित ...ाया है.

इस अंक में सबसे ज्यादा पसंद ...या रमाकांत आजाद का लेख. ...जाद जी ने पॉश कालोनियों ... होनेवाले पॉश व्यवसायों को ...च्छी तरह उजागर किया है.

सारी कहानियां पढ़ कर मन में ...यंतकुमार की गजल का एक ...ा उभर आया :

...ब नयी तहजीब के पेशे-नजर हम ...दमी को भून कर खाने लगे हैं."

'मेरा पन्ना' न देख कर कोफ्त-सी ...ई. किसी भी भाषा की पहली ...हानी खोजने में **'सारिका'** की ...ल के लिए धन्यवाद.

'सारिका' के हर अंक में ...पया एक गजल अवश्य दिया करें. ...यंतकुमार की उपरोक्त गजल ...रिका' में इतनी अच्छी लगी थी ... अभी भी गुनगुना लेता हूं.

'सारिका' में प्रकाशित कहानियों ... साथ जो चित्र रहते हैं, कहानी ... बोध सुगमता से कराते हैं.

मैं आज से सात साल पहले ...ब १० वर्ष का था, तब से ही मैं ...हित्य में रुचि लेने लगा था और ...नेक सारे उपन्यास और पत्रिकाएं ...ढ़ने लगा. आज से तीन साल पहले ...ब **'सारिका'** पढ़ी, तब पसंद नहीं ...यी थी, क्योंकि मैं घटिया और ...स्ते, रूमानी साहित्य का पाठक ..., पर जिस महीने से **'सारिका'** ... **'समांतर कहानी'** का पहला अंक ...ढ़ा, तब से आज तक **'सारिका'** ... हर अंक को सहेज कर रखता आ ...हा हूं.

'सारिका' ने मेरी रुचियां एकदम बदल दीं और मुझे घटिया साहित्य की गिरफ्त से छुड़ा कर 'साहित्य' से परिचित कराया.

सचमुच **'सारिका'** आज के जीवन में, जबकि मानवीय मूल्य शून्य होते जा रहे हैं. . सारे संदर्भ अपरिभाषित होते जा रहे हैं. . . आपस के बीच की दरारें खाइयां बन कर गहराती जा रही हैं, मील का पत्थर बन कर दिशा-बोध दे रही है और समय-सापेक्ष साहित्य से हमें परिचित कराने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है. □

● मनोज कुमार गौतम, मलयपुर, मुंगेर से लिखते हैं :

'सारिका' गंभीर और ठोस सामग्री प्रस्तुत करने में वस्तुतः प्रशंसनीय है. कथा-जगत की अनेक पत्रिकाओं का मैं नियमित पाठक हूं, किंतु **'सारिका'** के साथ उनका तुलनात्मक मूल्यांकन न तो सरल ही है और न वांछनीय. प्रत्येक के उद्देश्य और दृष्टिकोण भिन्न हैं.

● मोहम्मद मन्नान सिद्दीकी 'तस्लीम', आजाद रोड नं. ५, मनेंद्रगढ़ (सरगुजा), म. प्र. से लिखते हैं :

हम **'सारिका'** के उस समय से ग्राहक हैं, जब मनेंद्रगढ़ में इसकी अत्यंत अल्प प्रतियां आती थीं. आज जब **'सारिका'** सबको प्रिय है, हम इस पर टिप्पणी करना अपना अधिकार समझते हैं. विगत कई माहों से हमें **'सारिका'** में **'मेरा पन्ना'**, **'मीना-कुमारी की डायरी'**, **'नयी पौद'** का अभाव खटकने लगा है. मैं पूछना चाहूंगा गुलजार जी से कि स्वयं की गजल लिखने-छपाने का समय मिल जाता है, किंतु मीनाकुमारी जी के डायरी के अंश को भेजने को समय नहीं मिल पाता?

विगत कई अंकों से हम यह अनुभव कर रहे हैं कि **'सारिका'** की कहानियों में अश्लीलता का समावेश लेखक बंधु अधिक करने लगे हैं. मानता हूं कि आज के आम आदमी के साथ यही सब घटित होता है, किंतु जो बातें पहले इशारों में की जाती थीं, अब निस्संकोच कही जाती हैं. आखिर क्यों?

नवंबर अंक में विशेष प्रभावित करने वाले लेखक थे, प्रकाश पंडित (**'प्रसंग'**), प्रकाश बाथम (**'क्षौर-कर्म'**), हबीब कैफी (**'भाई'**), सैयद जमीर हसन (**'लुच्ची'**), नूरशाह, (**'अंधेरे उजाले'**), अहमद नदीम कासमी (**'सफेद घोड़ा'**). सबसे अधिक प्रभावित किया भाई चंदूलाल पटेल ने **'गुलाब और हिना'** में, जिसमें वाकई, गुलाब और हिना की खुशबू थी और इस खुशबू से **'सारिका'** का नवंबर अंक मुअत्तर था. . . □

● वेदकुमार अरोड़ा, १२/१२ राजेंद्र नगर, नयी दिल्ली–६० से लिखते हैं :

'सारिका' द्वारा गणिका विशेषांक एक सराहनीय प्रयास है. इस अंक में रमाकांत आजाद की रिपोर्ट **'महानगर बंबई : वेश्यावृत्ति के सामाजिक आयाम'** दिलचस्प लगी. कहानियों में सैयद जमीर हसन की **'लुच्ची'** और अहमद नदीम कासमी की **'सफेद घोड़ा'** मर्मस्पर्शी रहीं. □

● जगजीत सिंह दाद पटियाला से लिखते हैं :

'सारिका' बहुत देर से पढ़ता आ रहा हूं. कई बार इसकी कहानियों के बारे में पत्र लिखना चाहा, लेकिन हिंदी लिखना कम आने की वजह से खत लिखने में झिझकता रहा. **'सारिका'** का नवंबर अंक पढ़ कर पत्र लिखने को मजबूर हो गया हूं.

इस बार का गणिका-जीवन का अंक औरतों के पक्ष में एक वकालतनामा है.

वैसे तो सब कहानियां अपना-अपना स्थान रखती हैं, फिर भी सबसे बढ़िया कहानी चंदूलाल पटेल की **'गुलाब और हिना'** लगी.

अहमद नदीम का तो क्या कहना! **'सफेद घोड़ा'** जिंदगी के बहुत नजदीक की कहानी है. . .

'अंधेरे-उजाले' की नयी टैकनीक के लिए लेखक बधाई का पात्र है.

प्रथम मौलिक कहानियां एक खोज-भरपूर काम है. . . इससे किसी भाषा की कहानी कला की शुरुआत का पता चलता है. □

गोमंतकीय देवदासी

● प्र. श्री. नेरूरकर

महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र और खासकर दक्षिण रत्नागिरी जिले एवं उसके सागर-किनारे से दक्षिण में नीचे की तरफ फैले हुए गोमंतक अर्थात गोवा प्रदेश में सदियों से 'भावीण,' 'कलावती' अर्थात 'देवदासी' प्रथा चली आ रही थी. यह देवदासी प्रथा हिंदू देवालयों से संबंधित हुआ करती थी. थोड़ा-बहुत प्रचलन तो इसका आज भी है, लेकिन बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तथा मध्य में इसी जाति में जन्मे कुछ कर्तृत्ववान, जागृत स्त्री-पुरुषों ने मिल कर इसे काफी हद तक खत्म कर दिया है. इस घृणित प्रथा को तोड़ने का प्रयास 'देवदासी' समाज के पुरुषों ने किया. साथ-साथ इसका उतना ही बड़ा श्रेय देना पड़ेगा दक्षिण रत्नागिरी स्थित सावंतवाड़ी संस्थान के भूतपूर्व महाराजा पंचम खेमराज बापूसाहब के बनाये हुए कानूनों को, जो उनके प्रगतिशील दृष्टिकोण के परिचायक हैं. स्व. बापूसाहब सावंत ने अपनी रियासत म इस प्रथा को कानूनन बंद करवा दिया. उस समय पूरे तौर पर यद्यपि यह प्रथा बंद नहीं हो पायी, फिर भी इससे इस समाज की अभागिन स्त्रियों को इसका एहसास तो हो गया कि धर्म के नाम पर वास्तव में उन पर जुल्म ढाये गये हैं. इस जाति के जिन पुरुषों ने शिक्षा प्राप्त की—विशेष रूप से इन लोगों ने चिकित्सा के व्यवसाय में महारत हासिल की—उन्होंने इस प्रथा के खिलाफ आंदोलन का नेतृत्व किया.

देवदासी समाज की नारियों को निम्न जाति की समझा जाता था. जमींदारी समाज-व्यवस्था के अंतर्गत भगवान, ब्राह्मण और धर्म की दुहाई दे कर वंश-परंपरा से इन्हें अपना यह व्यवसाय चलाये रखने पर मजबूर किया जाता था. गोवा में पुर्तगाली राजसत्ता ने भी देवदासी प्रथा के खिलाफ कानून बनाया, लेकिन तब भी किसी-न-किसी रूप में यह जारी रही और आगे चल कर इसे वेश्यावृत्ति का रूप प्राप्त हुआ.

गोवा में 'देवली,' 'देवदासी' अथवा 'बंदे' समझी जाने वाली जाति का स्वरूप अब बदल कर 'गोमंतक मराठा समाज' के नाम से जाना जाने लगा है. इसी समाज में जन्मे श्री राजाराम पैंगणिकर ने इस समाज के उद्धार के लिए आंदोलन किये. आज इनकी उम्र करीब अस्सी वर्ष की होगी. १९६९ में उनकी आत्मकथा—**'मैं कौन?'** ('मी कोण'?) नाम से प्रकाशित हुई है. काणकोण ताल्लुके में पैंगणि गांव में 'कलावती' के घर में उनका जन्म हुआ. मां रंगी 'कलावती' थी. दरअसल रंगी शेणवी (सारस्वत) घराने में ही जन्मी थी. लेकिन चूंकि वह एक विधवा की कोख से जन्मी थी, इसलिए पैंगणि की 'कलावती' पुतलाबाई को उसे बेच दिया गया था. इस पुतलाबाई को कोई आगा-पीछा न था. इसी ने रंगी को पाला-पोसा, नृत्य-गायन की शिक्षा दी. चौदह साल की हो गयी तो रंगा जी शेणवी भेंडे नामक किसी जवान ने इसे अपनी देवदासी–'भावीण'–बना लिया. 'रखैल' होते हुए भी मरते दम तक रंगी ने पत्नी का-सा साथ निभाया. लेकिन जब बड़े हो कर श्री राजाराम पैंगणिकर अपने नाम के साथ बाप का नाम लगाने लगे तो कड़ा विरोध किया गया. उनके हिस्से आया अपमान, अवहेलना, भर्त्सना.

सावंतवाड़ी, गोवा, पेडणे प्रदेश की यह देवदासी प्रथा कर्नाटक में भी चल रही थी. परंपरा से इनमें कुछ जातिगत विशेषताएं मिलती थीं—

(१) पीढ़ी-दर-पीढ़ी इनमें संगीत, नाट्य, नृत्य का अभ्यास किया जाता था.

(२) कोंकण में मशहूर दशावतारी लोक नाट्य-कला को इन लोगों ने जतन से बनाये रखा.

(३) इस जाति में कुशल मृदंगिये, गायक तथा पुराण-कथाओं के भाष्यकार पैदा हुए.

(४) त्योहारों तथा विशेष अवसरों पर देवालयों में, भगवान की मूर्ति के सम्मुख नाचने-गाने वाली कलावती स्त्रियां इसी समाज की होती थीं.

(५) इसलिए ये अपने आपको गंधर्व-अप्सराओं के वंशज माना करते थे.

(६) कार्तिक स्वामी इनके यजमान देवता थे.

(७) भगवान पर अपनी कन्याएं अर्पित करने का रिवाज इन लोगों में था.

(८) सावंतवाड़ी गोमंतकीय नाट्य कला का प्रमुख केंद्र था.

महाराष्ट्र के नामवर समाजशास्त्री, ज्ञानकोषकार डा. श्रीधर व्यंकटेश केतकर ने **'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष'** के पंद्रहवें भाग में महाराष्ट्र की देवदासी प्रथा को ले कर निम्नलिखित जानकारी दी है :

'कई सदियों से दक्षिणी देवालयों में देवता को देवदासी अर्पित करने का प्रचलन है. ये देवदासियां सदा के लिए देवता की सेवा में लग जातीं. अविवाहित रह कर सारा जीवन बितातीं. भगवान पर चंवर डुलाना, भगवान के सम्मुख नृत्य करना, भगवान के रथ के जुलूस के आगे नाचना और भगवान की आरती उतारना आदि इनके काम हुआ करते थे.'

महाराष्ट्र के पूर्वी भाग में देवदासी की एक और किस्म देखी जाती है, जो 'मुरली' अथवा 'जोगतीण' नाम से जानी जाती है. गरीब मां-बाप अपनी कन्याएं खंडोबा नामक देवता को अर्पित कर देते हैं. अर्थात् पहले इन मुरलियों का ब्याह खंडोबा के साथ रचाया जाता है. तब पुजारी जाति की तरफ से गर्भाधान हुआ करता है. आगे चल कर इस 'देवदासी', 'कलावती' या 'भावीण' समाज के लिए 'नायकीण' शब्द भी मराठी म प्रचलित हो गया. और फिर इसी 'नायकीण' शब्द को 'वेश्या' के अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा. इसी जाति के श्री सु. शा. मांद्रेकर ने 'नायकीण' या 'कलावंत' शब्द के संदर्भ में लिखा है: ' 'कलावंत' जाति होती है और 'नायकीण' पेशा. पुराने जमाने में हमारे समाज म मृदंगादि बजाने वाले वादक हुआ करते थे. उनके मुखिया को 'नायक' कहा जाता था और प्रमुख गायिका 'नायिका' कहलाती थी. ऐसा लगता है 'नायकीण' शब्द इसी

'नायिका' शब्द का अपभ्रष्ट रूप है. उस जमाने में हमारे समाज की केवल स्त्रियां 'कलावंत' कहलाती थीं और पुरुष 'गायक', 'गानू' अथवा 'गुणीजन' नाम से जाने जाते थे.'

गोवा या कोंकण प्रदेश की ग्राम-रचना में आज भी देवदासी बिरादरी का एक अलग स्थान पाया जाता है. गांव का प्रमुख देवालय देवालय-वाड़े (देऊलवाड़ा) से घिरा हुआ होता है. इसी में 'देवली' तथा 'भावीण' समाज की बस्ती हुआ करती है. इनके गुजारे भर के लिए देव प्रतिष्ठान की तरफ से थोड़ी-बहुत जमीन दी जाती है. हर 'भावीण' के परिवार में देवता की सेवा के लिए महीने, तिथि, दिन, त्योहार आदि बंटे हुए होते हैं. कीर्तन-भजनादि के अवसर पर उस परिवार का पुरुष देवालय में आ कर मृदंग, वीणा आदि बजाता है.

श्री पैंगणिकर अपने आत्मचरित **'मी कोण'** में एक जगह पचास वर्ष पूर्व तथा उसके पश्चात गोवा के 'कलावंत' समाज की अवस्था का वर्णन करते हैं, जिसके अनुसार, (१) इस समाज पर हमेशा सारस्वत ब्राह्मण समाज का दबाव रहा है, (२) देवदासी-भावीणों की धर्मभीरुता का फायदा उठाते हुए सारस्वत उन्हें धोखा देते आये, (३) इस जाति का गुजारा वेश्या-व्यवसाय से ही प्रमुख रूप से चलता है, इसलिए इस सदा ही अपने महाजन सारस्वतों के सामने विनम्र हो कर, झुक कर चलना पड़ता है.

कुछ समय बाद सारस्वत समाज भी बदलने लगा. इसका विवरण भी श्री पैंगणिकर देते हैं: 'आज सारस्वत समाज भी उन्नति कर रहा है. और जातिभेद के खिलाफ विचारधारा भी इस समाज में प्रसृत हो रही है. गोवा और महाराष्ट्र से कई सारस्वत ब्राह्मण युवा गोमंतक मराठा समाज की युवतियों से विवाहबद्ध हो चुके हैं. कुछ बरसों बाद यह जातिभेद नष्ट हो जायेगा और दोनों समाज आपस में मिल जायेंगे—जरूर...'

देवदासी प्रथा की वजह से इस समाज के लोगों की जो बेइज्जती होती थी, उससे चिढ़ कर इसी समाज के श्री आ. स. कवरे ने एक पुस्तक लिखी है— **'खत्म हुआ यह नरकवास!'** (**'बस्स, पुरे झाला हा नरकवास'**) जिसमें वह लिखते हैं: 'हमारे समाज में देवताओं-देवालयों की दुहाई दे कर लड़कियों को अनीति की राह दिखाने की जो निंदनीय रूढ़ि है, उसे जल्द-से-जल्द नष्ट कर देना चाहिए, क्योंकि इस रूढ़ि का सहारा ले कर हम न केवल उस एक लड़की को अनीति की गंदगी में झोंक रहे हैं, बल्कि उसकी आने वाली सारी पीढ़ियों को अनीति के, गंदगी के, भंवर में डुबो रहे हैं.'

देवदासी समाज की स्त्रियां रूढ़िवश देवदासी जरूर होती थीं, मगर इसका मतलब यह नहीं कि वे कोई बाजारू औरतें या चरित्रहीन वेश्याएं हुआ करती थीं. वयोवृद्ध विद्वान श्री गो. आ. कामत लिखते हैं: 'शेसविधि संपन्न होने के बाद इस समाज की जो स्त्रियां अविवाहित रहा करती थीं, उन्हें 'वेश्या' कहना कदापि ठीक नहीं होगा. जो सच्ची कलाकार थीं, नृत्य-गायनादि में निपुण थीं, उन्होंने अपनी कला के सहारे रुपया कमाया. अपने किसी एक प्रिय पुरुष के साथ वे विवाहेतर संबंध रखती थीं. तब भी देहविक्रय उन्होंने नहीं किया था. हां, जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त नहीं था, उनकी किस्मत में जरूर अनेकानेक पुरुषों का साथ लिखा होता. इसे टालना बड़ा कठिन था. फिर भी ये स्त्रियां न तो मानसिक दुर्बलतावश वेश्या बनती थीं, न ही ऐशो-आराम के लिए वारवनिता का वेश धारण करती थीं. हिंदू समाज में प्रचलित जाति-व्यवस्था का यह अनिवार्य परिणाम था. उनके बर्ताव, रहन-सहन में कहीं किसी प्रकार की बीभत्सता, कुरूपता नहीं झलकती थी....'

भगवान को अर्पण करने से पहले 'शेसविधि' नामक एक धार्मिक विधि संपन्न होती थी. यह ठीक ब्याह की-सी विधि हुआ करती थी. बस, अंतर इतना ही था कि दूल्हे की जगह कोई एक कुंआरी लड़की ही रहती थी, जिसे दूल्हे की पोशाक में, सेहरा-वेहरा बांध कर सजाया जाता. मुहूरत देखा जाता. और उस दिन विभिन्न संस्कार संपन्न होते.

दूल्हा-दुल्हिन (अर्थात दोनों ही लड़कियों) से उपवास रखवाया जाता. अंगों पर तेल-उबटन मला जाता. दूल्हे के हाथ में नारियल और खंजर दे कर जुलूस निकाले जाते, दूल्हे के घर आते ही मालकिन—दुल्हिन की माता—उसे विवाहस्थल पर ले आती. मुहूरत पर दोनों के बीच मंगलवस्त्र (अंतरपाट) का परदा पकड़ कर तब दोनों में पुष्पमालाएं बदली जातीं. होम-हवनादि के बाद ब्राह्मण पुरोहित को दक्षिणा दी जाती. अंत में गांव को भोज दिया जाता.

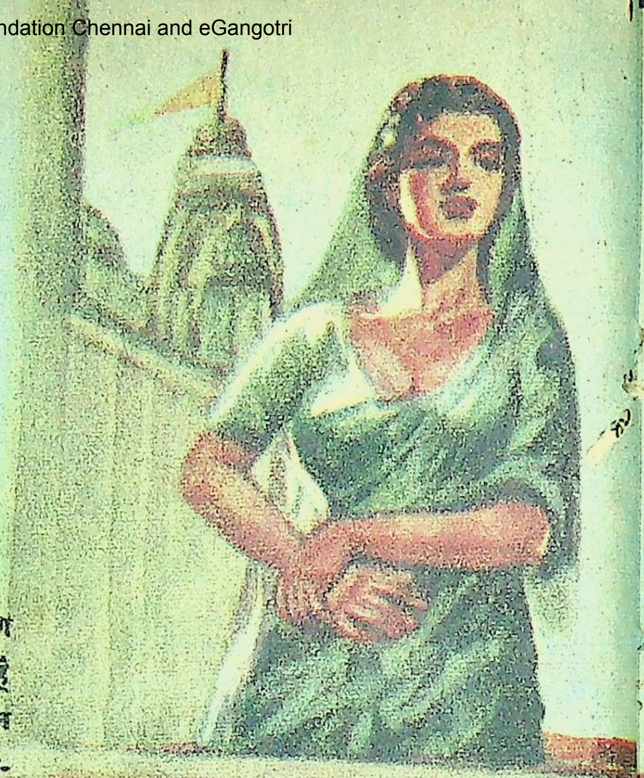
आगे चल कर धीरे-धीरे यह विधि बंद हो गयी. इसका वर्णन भी श्री राजाराम पैंगणिकर करते हैं. उन्हीं के शब्दों में: 'ताज्जुब की बात है कि शेसविधि जैसी अनिष्ट रूढ़ि के खिलाफ किसी भी जाति या समाज ने आवाज नहीं उठायी. उलटे इस समारोह में गांव के संभ्रांत, प्रतिष्ठित व्यक्ति शामिल होते थे और बिना किसी शास्त्राधार के गढ़ी हुई इस विधि को करहाडे ब्राह्मण संपन्न किया करते. इसी से भोले-भाले, भावुक, धार्मिक लोग यही समझते थे कि वे जो कर रहे हैं, वह देवता एवं ब्राह्मण देवता दोनों को मंजूर है.' श्री पैंगणिकर आगे लिखते हैं: '१९११ में मैंने इस समस्या को ले कर आंदोलन छेड़ दिया. इस वेश्या-व्यवसाय को बंद करने के लिए श्री शंकराचार्य के पास अर्जी भेजी कि वह इस अनिष्ट शेसविधि को बंद करवायें. लेकिन अर्जी का कुछ फायदा न हुआ. यह हमारा बेसिरपैर का शास्त्राधार!! तब मैंने पुर्तगाली सरकार को दरख्वास्त दे कर इस शेसविधि को बंद करवाया...'

मराठी-लेखकों ने देवदासी जीवन पर कहानियां लिखी हैं, उपन्यास लिखे हैं, लेकिन यह साहित्य इन स्त्रियों के जीवन-यथार्थ से कोसों दूर है. आज भी कोंकण में, गोवा में, देवालय हैं, देवालयों को घेरे हुए ये बस्तियां हैं. हां, देवदासी समाज का वर्तमान चित्र अतीत के उस चित्र से काफी बदला हुआ नजर आने लगा है. बदला हुआ—बिगड़ा हुआ, भ्रष्ट रूप... □□□

(अनुवाद : रेखा देशपांडे)

चंपा

• लक्ष्मणराव सरदेसाई



प्रस्तुत कहानी के यशस्वी कथाकार ने कोंकण के जीवन को बहुत नजदीक से देखा-परखा है और उनकी अधिकांश कहानियां कोंकण के जीवन पर ही आधारित हैं. और देवदासी प्रथा कोंकण-गोआ के जीवन का एक अभिन्न अंग रही है... प्रस्तुत कहानी उसी अंग की एक मार्मिक झांकी है...

मां की पुकार सुन कर चंपा हड़बड़ा कर जग गयी. आंखें मलते हुए उसने अंगड़ायी ली. बिस्तर पर उठ कर बैठ गयी और खिड़की में से बाहर झांकने लगी. उसे लगा अभी-अभी कहीं सुबह हुई है! लेकिन फिर उसे याद आया कि भोजन के बाद दोपहर में ही तो वह सो गयी थी. यथार्थ का ज्ञान होते ही वह हंसी, एक उदास फीकी हंसी!

बिस्तरे पर दुबारा वह लेट गयी. यह देख कर उसकी मां कहने लगी—चंपा, देख तो शाम हो गयी है. छह बज रहे हैं. और कितनी देर सोती रहेगी?

इस पर बिगड़ते हुए, कुछ क्रोधित स्वर में चंपा ने जवाब दिया—मां, आज पूरी पांच रातों से मैं जग रही हूं. पालकी निकलने तक मध्यरात्रि हो जाती है, उसके बाद मेरे जीवन का नाटक आरंभ होता है—मेरा मन इन सब बातों से अब ऊब-सा गया है. अपने ही से मुझे अब घृणा होने लगी है. यह भी कोई जीने का तरीका है!

उसकी मां को उसकी मानसिक व्यथा का पूरा एहसास था. शेवंती ने भी तो जिंदगी भर यही सब किया था. इसी के कारण साठ साल होने के बहुत पहले ही वह बूढ़ी हो गयी थी. आज अपनी बेटी के हृदय में उठे हुए बवंडर को देख कर उसकी आत्मा रो रही थीं.

पिछली पांच रातों से चंपा को एक झपकी लेने का भी अवकाश नहीं मिला था. सजधज कर, पूरे साज-शृंगार के साथ मेले में शरीक हुए बिना कैसे चल सकता था? सात आदमियों का पेट कैसे भरता? उनका निर्वाह और कौन से तरीके से हो सकता था? यह सब कुछ भुगते बिना दूसरा कोई चारा नहीं था. अन्य कोई उपाय भी तो उसके पास नहीं था.

मेले की रातों को बाहर से आये हुए शौकीन भगवान के दर्शन का बहाना बना कर मंदिर के आ पास चक्कर काटते रहते. भगवान को आगे बढ़ा वे अपनी वासनापूर्ति के लिए, अपने दिल बहलाव लिए सरंजाम की तलाश में रहते. गांव में पांच-पच्ची वेश्याएं हैं. वैसे ही उनमें होड़ लगी रहती है. रूप औ यौवन ढलने लगता है तो पुरुष स्त्री के पास क्यों आये भला? पुरुष तो अर्ध-विकसित पुष्प पर मंडराने वा भृंग होता है.

★ ★

चंपा शरीर से नाजुक! आजकल कुछ उसकी से भी ठीक नहीं रहती थी. उस पर रात के दो-तीन ब घर लौट कर आती क्योंकि मेले का जश्न तब त चलता ही रहता. साथ में कोई-न-कोई घर पर आता दस-पंद्रह रुपयों के लिए, चंद चांदी के सिक्कों खातिर बेचारी चंपा रात भर उस अजनबी के शरी की भूख शांत करने में लगी रहती. थक कर चूर-च हो जाती है वह! सूर्य ऊपर चढ़ने पर जब उसकी आं खुलती हैं तो खड़े रहने तक की शक्ति उसमें बा नहीं रह पाती. शरीर क्षीण हो चुका है इसीलिए फि वह चिड़चिड़ाती रहती है. दूसरों पर गुस्सा उतार रहती है.

यह सब सोच कर, चंपा की हालत देख कर, की ममता उभर आती है. उससे कहे बिना नहीं र जाता—बेटी, तेरी तबियत ठीक न हो तो आज म जा.

चंपा एक लंबी आह भर कर बोली—मैं नहीं गय

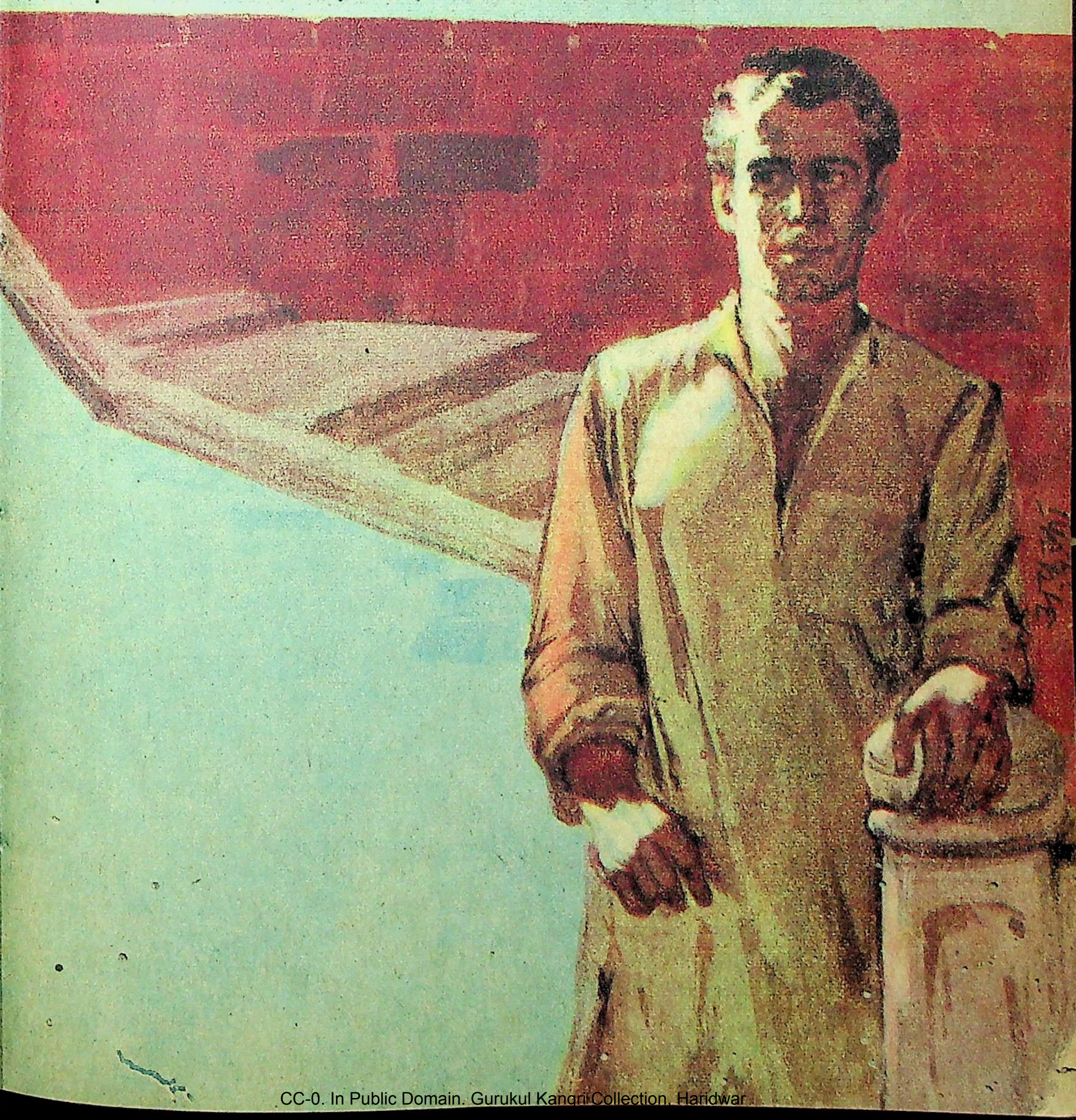
तो यह गृहस्थी कैसी चलेगी? हमारी जरूरतें कौन पूरी करेगा? पिछले दस सालों में सैंकड़ों मर्दों ने आ कर मेरा उपभोग किया पर उनमें से क्या एक भी टिक कर रहा? किसका सहारा है हमें? तू ही बता मां, तू ही बता!

शेवंती के दिल को बेटी की जानलेवा बातों से गहरी चोट पहुंची थी; पर वह कुछ नहीं कर सकती थी. असहाय थी, बेसहारा थी! हतभागी मां अपने आंसू छुपाते हुए चुपचाप अंदर गयी और थोड़ी देर में एक प्याला चाय बना कर ले आयी. कुल्ला करके चंपा ने चाय पी. चंपा कहने लगी—यह सब देख कर लगता है मुझे इस धंधे में पड़ना ही नहीं चाहिए था. यह सारी यातनाएं कब तक मैं सहती रहूं. मन और शरीर में कशमकश अहोरात चलती रहती है. दूसरी औरतों को जिस भोग में सुख मिलता है वही भोग मेरे लिए असहनीय हो जाता है. मैं क्या करूं मां, कुछ समझ में नहीं आता.

मां के अंतःकरण में भी सारी सहानुभूति सारा प्रेम उमड़ आया. अपनी बेटी उसे बेहद थकी-हारी नजर आयी. उसकी आंखों की चमक भी कम हो गयी थी. रस निचोड़ लेने के बाद जो आम के फल की स्थिति होती है, ठीक वैसी ही. चंपा सूख गयी थी, रसहीन हो गयी थी. उसके फूले हुए गाल अब अंदर धंस गये थे. छुटपन में रेशम जैसे मुलायम उसके काले घने बाल अब कड़े हो गये थे और झड़ रहे थे. पहले की मोटी चोटी अब पतली हो गयी थी. बालों का सारा सौंदर्य ही लुप्त हो गया था. गुलाबी तेजपुंज शरीर अब सूखा-सा और स्याह पड़ गया था. सौंदर्य की जगह अब रूक्षता ने ले ली थी. जिंदगी के थपेड़ों ने चंपा के मन को हताश, निराश कर दिया था.

चंपा की तरफ एकटक देखती हुई शेवंती की आंखों के सामने दस वर्ष पहले के जीवन के अनेक प्रसंग साकार हो उठे.

चंपा बारहवें साल में रजस्वला हो गयी थी. उसका शरीर भर गया था. उसके तीखे नाकनक्श में सम्मोहन आ गया था. भविष्य के सुनहले स्वप्न देखने वाले चंपा के नेत्रयुगल मादक-मधुर भावों से भर गये थे. चंपा में परिवर्तन आ गया था. यौवन ने उसके हर



एक अवयव में रस भर दिया था. बड़ी सुंदर, बड़ी मोहक लगती थी चंपा. देखने वाले की नजर उसकी प्यारी छवि पर अटक कर रह जाती. धीरे-धीरे शौकीन लोग उसके इर्दगिर्द मंडराने लगे.

चंपा ने खुली आंखों से अपनी मां की जिंदगी की बिडंबना देखी थी; तभी तो उसने खानदान की सालों से चली आ रही प्रथा से मुंह मोड़ लिया था. साफ-साफ उसने अपनी मां के सामने देवदासी का पेशा अपनाने से इन्कार कर दिया था.

--चंपा बेटी! याद है तुझे, शेवंती ने पूछा, चंपा ने प्रश्नवाचियक दृष्टिसे मां की तरफ देखा. शेवंती आगे बोली--मैं तेरी शादी कर देने के लिए तैयार हो गयी थी.

बीच ही में चंपा ने उसे टोका--पर बाद में तो बदल दिया तुमने अपना इरादा.

--क्या करती, वह निहूर का जमींदार आ टपका था. उसीने तो मुझपर दबाव डाला. उसने मुझे धमकी भी दी कि तेरी शादी मैं कर दूंगी तो वह हमें इस घर से निकलवाकर रहेगा.

--हां मां, मगर तू डर गयी. और तूने मेरी जिंदगी को नर्क बना दिया!

--क्या कर सकती थी मैं? यह हमारा घर उसकी जमीन पर ही तो खड़ा है ना. उसका विरोध करती तो मैं कहां टिक सकती थी! कोई भी मुझे शरण नहीं देता.

--लेकिन मां, उसने तो अपना वचन भी नहीं निभाया. उसने वादा किया था न कि पूरी उम्र वह मुझे अपनी बना कर रखेगा, मुझे ब्याहता पत्नी जैसे सम्मान का स्थान देगा. उसके वचन और उसकी कृति बिल्कुल एक दूसरे से विपरीत निकले!

--भाग्य अपना, बेटी. समाज में ऊंचा स्थान, मान-मर्यादा रखने वाले उस आदमी पर मैंने विश्वास किया. उसके हर वचन का मैंने एतबार किया. पर वह धोखेबाज निकला. एक बच्चे का जन्म होते ही उसने तेरी पूछताछ करना भी छोड़ दिया.

--किंतु मां, तू भी तो भयभीत हो गयी. मंदिर के उत्सव के समय उस स्वार्थी की करामात जाहिर कराने, उसका पर्दाफाश करने से तू भी तो डर गयी.

शेवंती बोली -- चंपा, क्या कहती है तू? वह गांव का साहूकार और जमींदार! हम गरीब लोग. मुझ जैसी अकेली स्त्री उससे भला कैसे जूझ सकती थी?

--मां, रहने भी दें. अब इन पुरानी यादों को कुरेदने से क्या लाभ?

--मगर बेटी तेरी हालत देखती हूं तो मेरी छाती फटने लगती है. पर हम दोनों ही मजबूर हैं, उठ नहा ले! ठंडे पानी से नहायेगी तो ताजगी महसूस होगी. उठ बेटा. मां का स्वर आर्त हो गया था.

--थोड़ी देर यूं ही पड़ी रहने दे मुझे, मां. यह कहते-कहते चंपा फिर से बिस्तर पर लेट गयी.

बच्चे चंपा की मौसी के साथ घूम कर लौट आये थे. ऊपरी मंजिल के कमरे की खिड़की से चंपा को मंदिर का दृश्य साफ दिखायी दे रहा था. पिछले पांच दिनों में चंपा ने मंदिर के आसपास कई चक्कर लगाये थे. विशेषतः पालकी निकलने के समय शौकीन रईस-जमींदारों की नजर अपनी तरफ आकृष्ट करने के इरादे से, मौके की जगह पर खड़ी हो कर अपने मोहक अंग-प्रत्यंगों का प्रदर्शन करते हुए चंपा उन लोगों की तरफ नशीले कटाक्ष फेंकती रहती. लेकिन लोगों को लुभाने के लिए खड़ी चंपा के अंतःकरण से एक आर्त स्वर प्रार्थना का निकला था जो किसी को भी नहीं सुनायी दिया था. हाय रे किस्मत! बदनसीबी की भी हद हो गयी थी कि जिस क्षण वह आंचल पसार कर जगत्‌नियंता से अगले जन्म में साफ-सुथरे जीवन की भीख अपने मन में मांग रही थी, उसी समय इस जीवन में जीने के लिए, अपने और अपने बच्चों के उदर-निर्वाह के लिए, उसे अपने शरीर का सौदा करना पड़ रहा था.

विचारों में डूबी हुई चंपा की नजर सहसा कमरे के फर्नीचर पर पड़ी. आठ साल पहले उसने वे सब चीजें खरीदी थीं. शीशम की कीमती लकड़ी की बड़ी चारपाई, नक्काशीदार आईना लगी हुई बड़ी-सी आलमारी, दो गोल मेज, सात-आठ कुर्सियां, दो छोटी चारपाइयां और दो बड़े आईने दीवार पर शान से लटक रहे थे. मादक जवानी के नशे में उसने वह सब खरीदारी बड़े गरूर से की थी. गांव के साहूकार ने उससे विश्वासघात किया था. उसके तुरंत बाद ही शहर के एक जानेमाने रईस ने उसे आमंत्रित किया था. आते समय उस रईसजादे ने उसे ५०० रु. इनाम दिये थे. यह सब चीजें चंपा ने उन्हीं ५०० रुपयों से खरीदी थी.

आठ साल बीत गये थे तो भी वे सब चीजें नयी दिखायी देती थीं. पुरानी तो वह स्वयं हो गयी थी. उसका शरीर पुराना हो गया है. मर्दों द्वारा उसकी नाजुक, कोमल देह में डाले हुए बीमारी के कीटाणुओं के कारण उसका शरीर खोखला हो गया है.

बिस्तरे पर से उठ कर जैसे ही वह बैठी, उसे अपना चेहरा सामने के आईने में दिखायी दिया. गुस्से से उसने मुंह फेर लिया तो सामने दीवार पर टंगी हुई अपनी खुद की तस्वीर पर उसकी नजर पड़ी.

किसी अच्छे फोटोग्राफर ने पणजी के एक रंगीले रईस के साथ उसकी वह तस्वीर खींची थी. उस तस्वीर में वह खड़ी हुई थी और घने काले बाल उसके उभरे हुए आकर्षक उरोजों को ढकते हुए नीचे की तरफ फैल गये थे. उसके एकदम दूधिया रंग में और उसके तीखे नाकनक्शों में उस समय कैसा सम्मोहन था! चेहरे के प्रसन्न भाव उसकी खूबसूरती में चार-चांद लगा देते. दस साल पहले की अपनी वह मनमोहक प्रतिमा देख कर चंपा सकते में आ गयी. अनजाने ही एक दीर्घ निश्वास उसके मुंह से निकला.

फिर वह स्नानघर में गयी. कपड़े उतारे और अपने सूखे हुए शरीर को देख कर शर्म से उसने गर्दन नीचे झुकायी. उभरे हुए वक्षस्थल अब सूख गये थे. हंडे में से ठंडा पानी निकाल कर लोटे से वह अपने ऊपर डालने लगी. साबुन भी रगड़ा. यौवनकाल की मीठी

मीठी स्मृतियां साबुन के फेन के साथ ऊपर उठने लगीं. पर शरीर साफ करके नीचे गिरते हुए गंदे पानी के साथ, जीने के लिए अपनाये हुए गंदे नापाक तरीके की वास्तविकता मन को झुलसाने लगी. ओफ् यह कैसी जलन, कैसा दाह जिसमें अब तनमन जल कर भस्म होता जा रहा था! अपनी उध्वस्त जवानी की यादों के भार के नीचे चंपा दबी जा रही थी. मां और मौसी के भार के बारे में चंपा सोचने लगी.

इन्हीं परस्पर विरोधी विचारों में उलझी हुई चंपा नहा-धो कर गुसलखाने से बाहर आयी. नहाने से उसे थोड़ी ताजगी महसूस हुई थी. आईने के सामने खड़ी हो कर वह अपने आपको ही निहारने लगी. अभी भी उसकी आंखों में एक अजीब मीठा-सा आकर्षण बाकी था. अभी तक की जिंदगी में संकटों से, विपत्तियों से मुकाबला करते-करते शरीर थक गया था, दुबला हो गया था. फिर भी चंपा में ऐसा कुछ जादुई सम्मोहन बाकी था कि उसके पास ग्राहक अपनी वासना-पूर्ति के लिए पहुंच ही जाते.

चंपा ने तीन बच्चों को जन्म दिया था. सात साल की सुमन, चार साल का सुरेश और सबसे छोटी दो साल की अनिता. अब तीनों बच्चों के साथ बैठ कर वह थोड़ी देर उनकी बातें सुनती रही. उसके मन में विचार आते रहे कि इन तीनों के भविष्य में पता नहीं क्या बदा है. बाप का पता नहीं और मां की यह ऐसी दारुण स्थिति. बेचारे अबोध बालक किसके सहारे जियेंगे. काफी देर गुमसुम बैठी हुई चंपा उठ खड़ी हुई.

मंदिर अब जगमग करने वाली रोशनी से चमक उठा था. चंपा ने अपने बाल संवारे. उनका मोहक-सा जूड़ा बनाया और उस पर एक अर्ध-विकसित कली खोंस दी. मुंह पर पावडर लगाया, लिपस्टिक लगाकर होंठों में लाली भर दी और बदन पर सुगंधित इत्र लगाया ताकि मन और शरीर दोनों ही उल्लसित हो जायें.

सामने रास्ते पर से सजी-धजी अनेक औरतें हास-परिहास में मग्न, चली जा रही थीं. उनमें से कुछ खरीदी करतीं, नाटक-सिनेमा देखतीं और जीने का मजा लूटतीं. उनको देखते हुए चंपा के उदास मन में भी कुछ आशाभरी उमंग जाग उठी. पर फिर वह सोचने लगी, यह सब औरतें कितनी खुश हैं, मस्ती से कैसी झूम रही हैं! और मैं तो खुशी का सिर्फ नाटक कर रही हूं!

कुछ ऐसे ही विचार उसके अंतर में उठ रहे थे कि पड़ोस की उसकी सहेली इंदु आ पहुंची. इंदु अभी भी काफी जवान और लुभावनी दिखती थी क्योंकि वह इस धंधे की बारीकियां खूब अच्छी तरह से जानती थी. चंपा भावुक थी. हर छोटी-सी घटना उसके अंतर में गहरी पहुंच जाती और चंपा के कोमल हृदय पर असहनीय आघात करती.

इंदु बोली—अरी चंपा, देख तो जरा घड़ी की तरफ. रात के ९ बजने वाले हैं और तू अभी तैयार भी नहीं.

चंपा ने झट से उठ कर अलमारी खोली. पांच-छह कीमती रेशमी साड़ियां इंदु के सामने रखते हुए पूछा—बता इनमें से कौन-सी आज पहनूं?

इंदु ने हंसते हुए कहा—चंपा तू खूब जानती है, कौन-सी साड़ी पहनने से मर्द पागल हो उठते हैं.

दोनों ही फिर दिल खोल कर हंसतीं रहीं. अंदर जा कर हलके नीले रंग की कश्मीरी रेशम की साड़ी परिधान करके चंपा बाहर आयी. इंदु तो चंपा के सौंदर्य पर स्वयं ही मुग्ध हो गयी और एक टक उसे देखती ही रह गयी. चंपा ने काले रंग का टीका माथे पर लगाया. मोगरे के मादक गंधवाला गजरा जूड़े पर लगाया और आईने के सामने खड़ी हो कर अपना प्रतिबिंब देखने लगी. उसने सोचा, जितना मैं सोचती थी, उतना मेरा रूपसौंदर्य ढल नहीं गया है. झटके से उसने सारे निराश विचार हटा दिये. सहसा वह चौंक गयी इंदु पूछ रही थी—आज क्या खरीदने का इरादा है?

—खरीदी कर ही नहीं सकती मैं, इंदु, चंपा ने उखड़े हुए स्वर में कहा.

—क्या मतलब? पिछली पांच रातों में तूने कुछ भी नहीं कमाया? ताज्जुब है!

अनमने भाव से चंपा बोल पड़ी—वह भी कोई कमायी है! बीमारी में लिया हुआ कर्जा तक अभी अदा नहीं कर पायी हूं. जो कुछ भी कमा लेती हूं, उससे हम सात आदमियों का पेट ही ठीक से नहीं भर पाता तो कर्ज की रकम कहां से अदा हो पायेगी?

—मगर चंपा आज तो आखिरी रात है. तू काफी-कुछ आमदनी कर सकती है.

—हां, तू ठीक कहती है, पर इंदु मेरे साथ हमेशा धोखा होता है. पिछले साल की ही तो बात है. एक पहचानवाला सुनार मिला था. रातभर मेरे साथ रहा. कुछ ऐसा प्रभाव डाला मुझ पर कि मैंने डेढ़ तोला सोना उसके सिपुर्द कर दिया. उसने वादा किया था कि चंद दिनों में ही मेरे लिए उस सोने का चंदनहार बना कर लायेगा. सोना भी गया और मेरी कमायी भी. चंपा का स्वर रोने-रोने जैसा हो गया था.

उसे दिलासा देते हुए इंदु बोली—चंपा असल में तू बहुत भोली है और इस संसार के लोग बहुत धूर्त होते हैं. खास कर हमारे इस धंधे में तो और भी अधिक होशियारी से रहना पड़ता है.

कोई खास सुंदर न होते हुए भी इंदु ने अपनी होशियारी से कमाया कुछ द्रव्य संचय कर लिया था. आगे बढ़ कर चंपा का हाथ पकड़ते हुए इंदु ने कहा—चल उठ. छोड़ सब पिछली बातें. देख, जशन शुरू होने का समय हो गया है.

उठते हुए चंपा ने पूछा—मगर तू तो पहले खरीदारी करने पर जोर दे रही थी न?

—हां-हां, पहले बाजार का ही चक्कर लगायेंगे. तुम्हारी मां, मौसी और बच्चों को कीर्तन सुनने के लिए बिठा देंगे और हम दोनों घूमने निकल पड़ेंगे. अरी चंपा मेले में घूमेफिरे बगैर ग्राहक कहां से मिलेंगे?

दोनों ही मेले के लिए चल दीं. चंपा आसपास की

(आगे पृष्ठ ९१ पर)

कुमुद की कहानी उसी की जुबानी

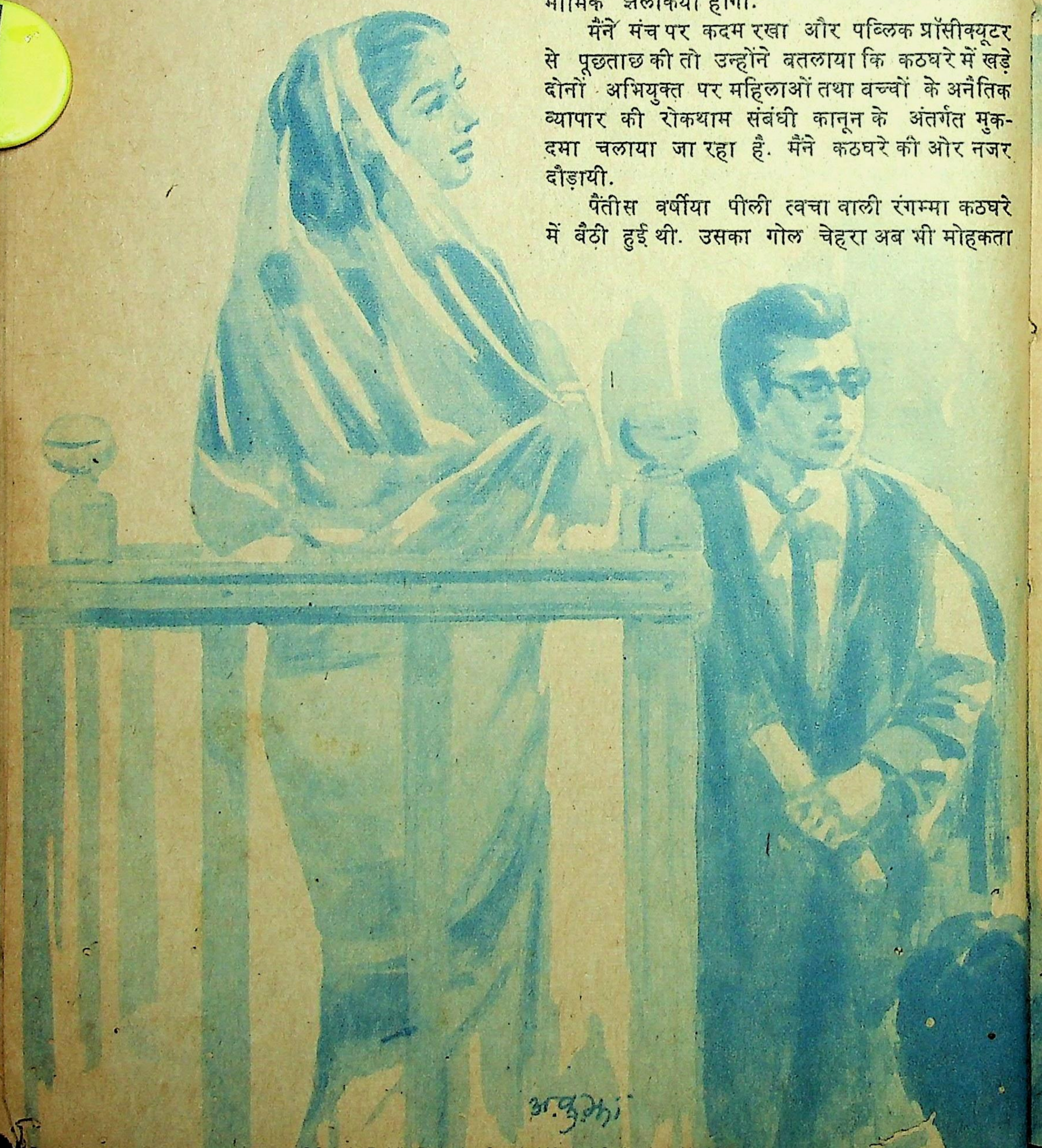
• वी. आर. तलाशीकर

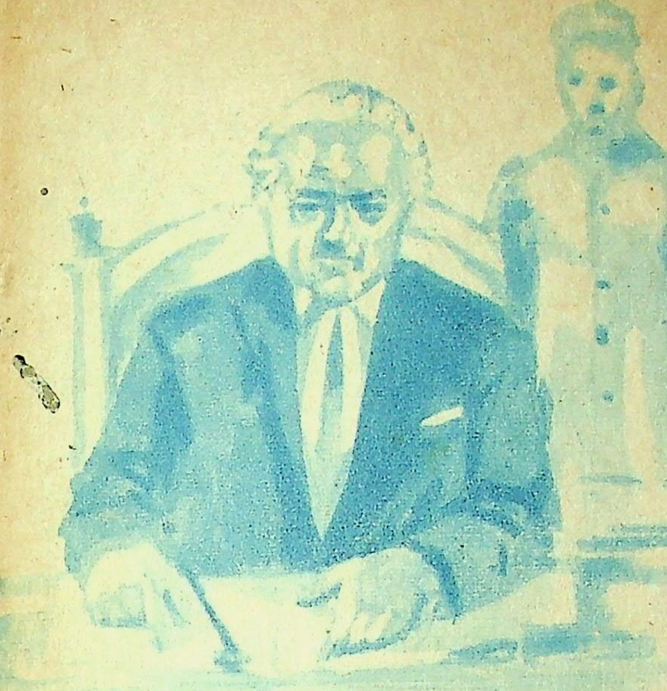
प्रस्तुत कहानी, कहानी न हो कर एक सत्य-कथा है. इसके लेखक बंबई सिटी सिविल कोर्ट के रिटायर्ड जज हैं जो अपने निर्भीक तथा स्पष्ट फैसलों के लिए पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके हैं.

सेशन कोर्ट के जज के रूप में मेरा वह दिन भी और दिनों की तरह ही सामान्य लग रहा था. मैंने सपने में भी न सोचा था कि उस दिन मुझे कोई ऐसा केस सुनना पड़ेगा जिसमें किशोरावस्था को भी न लांघ पायी एक सुंदर लड़की की मजबूर, शर्मनाक जिंदगी की मार्मिक झलकियां होंगी.

मैंने मंच पर कदम रखा और पब्लिक प्रॉसीक्यूटर से पूछताछ की तो उन्होंने बतलाया कि कठघरे में खड़े दोनों अभियुक्त पर महिलाओं तथा बच्चों के अनैतिक व्यापार की रोकथाम संबंधी कानून के अंतर्गत मुकदमा चलाया जा रहा है. मैंने कठघरे की ओर नजर दौड़ायी.

पैंतीस वर्षीया पीली त्वचा वाली रंगम्मा कठघरे में बैठी हुई थी. उसका गोल चेहरा अब भी मोहकता





में अभियुक्तों के विरुद्ध एक सीधा सबूत होगा.

कुमुद को बुलाया गया. किशोर वय की एक प्रफुल्ल-वदना, दुबली-पतली लड़की, जिसका चेहरा कुमुदिनी जैसा शुभ्र था, धीरे से बेंच पर से उठ कर सामने आयी. उसकी आंखें बड़ी-बड़ी और काली थीं, भौंहें कमान की तरह खिंची हुई थीं और उनके बीच लाल टीका लगा हुआ था. उसकी नाक नुकीली थी, पतले लाल ओठ बोलने को अधीर हो रहे थे. उसके संगमरमरी गालों पर जैसे गुलाबी पंखुरियां खिली हुई हों. वह कठघरे की ओर राजसी चाल से बढ़ी तो उसके उरोजों का हिलना देख कर दर्शक बेचैनी का अनुभव करने लगे. वह कठघरे में बिना किसी घबराहट के खड़ी हो गयी. वह कन्नड बोल सकती थी और मराठी भी समझ सकती थी. मैंने उसे शपथ दिलायी कि वह पूरा-पूरा सत्य बोलेगी और उसने वैसा करने का वचन दिया.

लिये हुए था, यद्यपि अनैतिक जीवन बिताने के कारण उसमें अब वह आकर्षण नहीं रह गया था. फिर भी लगता था कि अतीत में उसमें बरबस आकृष्ट करने वाला शारीरिक सौंदर्य अवश्य रहा होगा. उसकी मादक आंखों में सचमुच ही चुंबकीय शक्ति थी. कठघरे में अन्य व्यक्ति था एक मोटा, गठीले बदन का बदमाश जो दलाल के तौर पर रंगू के साथ फारस रोड पर एक वेश्यालय चलाता था. वह लापरवाही से देख रहा था किंतु रंगम्मा चिंतित दिखलाई पड़ रही थी.

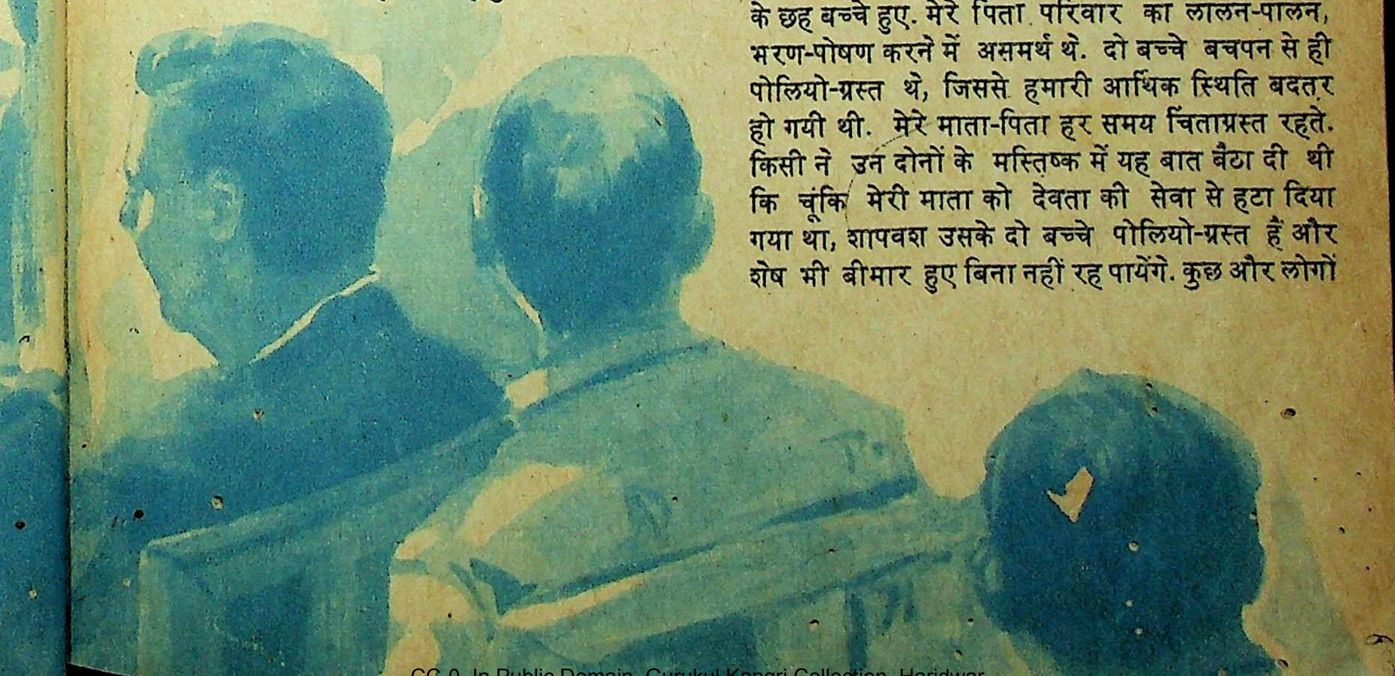
मैंने उन दोनों पर यह आरोप गढ़ा कि स्वयं को लाभान्वित करने के विचार से कुमुद को जबरन उसकी इच्छा के विरुद्ध वेश्यावृत्ति अपना कर अपना शरीर बेचने को बाध्य करने के लिए उसका उन दोनों ने अपहरण किया, जिसपर उन दोनों ने ही अपने को निर्दोष बतलाया.

पब्लिक प्रॉसीक्यूटर ने केस को संक्षेप में कह सुनाया और कहा कि अच्छा तो यह हो कि स्वयं कुमद ही अपने दुर्भाग्य की मार्मिक कहानी कह सुनाये, जो अपने आप

★ ★

—मैं अपने माता-पिता तथा दो बहनों और दो भाइयों के साथ मंगलूर से कुछ दूर एक गांव में रहती थी और स्कूल में पढ़ा करती थी. . .उसने शुरुआत की और आगे कहने के लिए साहस बटोरने लगी.

—मेरी माता पहले एक देवदासी थी, मंदिर में गाती तथा पुजारी के घर भोजन किया करती थी. मेरे पिता को लगा कि जल्दी ही वह अनैतिक जीवन बिताने को मजबूर की जायेगी, अतएव वह उसे अपने गांव ले आये जहां उनके पास धान का एक छोटा-सा खेत था. उन्होंने उससे शादी कर ली और १२-१४ वर्षों में मेरी माता के छह बच्चे हुए. मेरे पिता परिवार का लालन-पालन, भरण-पोषण करने में असमर्थ थे. दो बच्चे बचपन से ही पोलियो-ग्रस्त थे, जिससे हमारी आर्थिक स्थिति बदतर हो गयी थी. मेरे माता-पिता हर समय चिंताग्रस्त रहते. किसी ने उन दोनों के मस्तिष्क में यह बात बैठा दी थी कि चूंकि मेरी माता को देवता की सेवा से हटा दिया गया था, शापवश उसके दो बच्चे पोलियो-ग्रस्त हैं और शेष भी बीमार हुए बिना नहीं रह पायेंगे. कुछ और लोगों



ने उन दोनों के दिमाग में यह बात भी भर दी कि अन्य बच्चों को रोग से बचाने और परिवार की हालत को और गिरने से बचाने के लिए यह जरूरी है कि कम-से-कम दो वर्ष के लिए किसी लड़की को सौंदत्ती में यलम्मा की सेवा में भेजा जाये ताकि उनका क्रोध शांत हो सके, उसने अपने भीतर के उफनते मनोभावों के साथ कहा. कुछ देर के लिए वह चुप रही. उसकी छाती पिछले अनुभवों को याद करके धड़कने लगी. दुख और पाश्चाताप के भाव उसके चेहरे पर स्पष्ट थे और अपनी रामकहानी सुनाने में वह हिचकिचाहट का अनुभव कर रही थी. पब्लिक प्रॉसीक्यूटर ने उसके मनोभाव ताड़ लिये और उसने कहा कि वह भरी अदालत में अपनी रामकहानी सुना पाने में अपने को असमर्थ पा रही है अतएव लोगों को अदालत से बाहर जाने को आज्ञा दी जानी चाहिए. इस पर हाल को दर्शकों-तमाशबीनों से खाली करा लिया गया.

कुछ मिनटों में ही वह शांत हो गयी और उसने कहना पुनः जारी रखा—

तब मैं १५-१६ वर्ष की थी. मैंने लोगों को अपने माता-पिता से कहते सुना था कि चूंकि मैं सभी बच्चों में आकर्षक तथा सुंदर हूं, मुझे यलम्मा के चरणों में सेवा के लिए भेज दिया जाना चाहिए. चूंकि मैंने अच्छा गला पाया है, अच्छी तरह जीविकोपार्जन कर सकती हूं. मेरी माता ने शुरू में इस क्रूर सलाह को मानना नहीं चाहा और कई दिनों तक रोती-कलपती रही. उसे बार-बार याद आती रही कि कितनों दिनों तक उसे इस प्रकार का कुत्सित तथा अनैतिक जीवन बिताना पड़ा था. एक दिन मेरे माता-पिता ने छाती पर पत्थर रखकर मुझे मेरे मामा के साथ, जो बंबई में टैक्सी ड्राइवर थे और कुछ दिनों के लिए मंगलूर आये थे, सौंदत्ती भेज दिया, उसने कुछ थम कर अपने स्वाभाविक दीप्ति से चमक रहे चेहरे को पोंछ कर साड़ी के पल्ले को दोनों कंधों पर सम्हाला.

हम दस दिन बाद सौंदत्ती पहुंचे. मेरे मामा गुंडप्पा ने वहां पर आयी हुई अन्य लड़कियों से भी जो देवी की सेवा में नाचने, गाने, बजाने के लिए आयी हुई थीं, पूछताछ की. उन्होंने मेरा सबसे परिचय कराया और यह जानकर संतोष पाया कि मेरे रहने-खाने आदि का प्रबंध हो सकता है. कुछ दिनों उपरांत वे बंबई चले गये. जाते समय अपना पता देकर कहते गये कि कोई संकट आने पर मैं उनसे पत्र-व्यवहार जरूर करूं, उसने कहा.

यह जानकर मुझे गर्व हुआ कि आगंतुक मेरी ओर आकृष्ट होने लगे हैं और मुझे यह भी पता चल गया कि मुझमें दूसरों को आकृष्ट करने का पर्याप्त सौंदर्य है. मैंने अन्य लड़कियों से जिन्होंने नाचना अपना पेशा बना लिया था, नृत्य सीख लिया जिसके कारण मैं रूपलोलुप व्यक्तियों के और भी नजदीक आ गयी. दो-एक वर्ष तक मैं अपनी सहेलियों, देवी की आराधना के बहाने वहां आनेवाले युवकों द्वारा बड़ा मान-सम्मान पाती रही. क्रमशः मेरा भ्रम दूर होता गया जब मैंने पाया कि देवी की पूजा-आराधना के लिए आने वाले कुछ व्यक्ति मेरे साथ शारीरिक संपर्क जोड़ने को लालायित हैं. कुछ ने मुझे यह वचन भी दिया कि यदि मैं उनकी हो कर रहूं तो सभी सांसारिक सुख पा सकूंगी. मैं उनकी निर्लज्जता देखकर स्तब्ध रह गयी किंतु देवदासी होने के कारण उनकी बातों को बर्दाश्त करती रही, उनको टालने का प्रयास करती रही. मैंने महसूस किया कि मेरे पास जीविकोपार्जन का अन्य कोई साधन नहीं है अतएव उनसे अलग नहीं रह सकती हूं. मुझे उनके वासनापूर्ण जीवन से समझौता करने को बाध्य होना पड़ा यद्यपि मैं स्वयं को उससे बचाने का हर संभव प्रयत्न करती रही. किंतु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, स्वयं को दूसरों को समर्पित किये बिना उस मंदिर में रहना असंभव हो गया. मैंने अपनी कुछ सहेलियों को धन के लिए खुल्लमखुल्ला अनैतिक जीवन बिताते देखा जिसके लिए वे मुझ पर भी दबाव डालती जा रही थीं. मेरा मन विद्रोह से भर उठा और अनैतिक जीवन बिताने के लिए बाध्य किया जाना मेरे लिए असह्य होने लगा.

मैंने उसके चेहरे पर गौर किया तो लगा कि यह वर्णन अपने आप में उसके लिए कितना दुखद साबित हो रहा था. मनःसंताप की भावना उसके चेहरे पर स्पष्ट झलक रही थी.

★ ★

उसने आंखें मेरी ओर उठायीं और पानी का गिलास मांगा. उसे पानी दिया गया और सम्हल कर उसने फिर कहना जारी रखा. मैं उसके पतले मोहक ओठों से निकल रहे वाक्यों को वक्तव्य के रूप में रिकार्ड किये जा रहा था.

मैंने गुंडप्पा को पत्र लिखने प्रारंभ किये कि वह मेरा उस स्थिति से उद्धार करे. मैं अपने माता-पिता के पास लौटना नहीं चाहती थी क्योंकि ऐसा करने से उन पर बोझ और बढ़ जाता. ३-४ पत्रों के बाद मामा सौंदत्ती आये और उन्होंने कहा कि वे स्वयं एक निर्धन टैक्सी ड्राइवर हैं, अपने परिवार में मेरा भरण-पोषण नहीं सकते. मैं उनके पैरों पर गिर पड़ी और मंदिर से छुटकारा पाने के लिए गिड़गिड़ाने लगी. मने कहा कि बंबई पहुंच कर मैं कोई काम खोज लूंगी, उन पर भार नहीं बनूंगी. उनको मुझ पर दया आ गयी और मुझे बंबई स्थित अपने घर ग्रांट रोड ले आये. बंबई पहुंच कर मैंने अपने माता-पिता को सूचित कर दिया कि चूंकि मैं शर्मनाक जिंदगी से बचना चाहती थी इसलिए बंबई आ गयी हूं, उसने कहना जारी रखा. लगता था कि वह ऐसे व्यक्तियों के सामने अपने बोझ को हलका कर देना चाहती थी जो धन तथा इंद्रिय सुख से अधिक नैतिकता को महत्व देते हैं. उसका भार सचमुच हलका होता लगता था.

गुंडप्पा मेरे लिए किसी सुरक्षित काम की तलाश में थे और उन्होंने मुझे बंबई की सड़कों पर चलने वाले ऐसी लोभी दृष्टिवालों तथा गिद्धों से सचेत किया जो धन के लिए कुछ भी करने को उतारू हो सकते हैं. एक दिन उन्होंने बतलाया कि गिरगांव में वे दारशा नाम के पारसी सज्जन से मिले हैं जिसे घर के काम के लिए एक नौकरानी की जरूरत है. गुंडप्पा मुझे उसके पास ले

गये तो उसने मुझे बतलाया कि चूंकि वे पति-पत्नी भिन्न दफ्तरों में काम करने जाते ह, मुझे उनके घर के काम के अलावा उनके एकवर्षीय पुत्र की देखभाल करनी होगी. उसने मुझ ४० रु. प्रतिमाह तथा फ्लैट म रहने तथा भोजन देने का वचन दिया. दारशा एक सुंदर युवक था और म उसकी सादगी से प्रभावित हुए बिना न रही. मैंने उसके घर में काम प्रारंभ कर दिया. उसकी पत्नी मेरा बड़ा खयाल रखती थी. मैं अच्छा खाती-पीती तथा ४० रु. पाती थी. प्रतिमाह मैं अपने माता-पिता को ४० रु. भेजने लगी. इस प्रकार दो वर्ष गुजर गये और मैं सुखी थी, उसन स्पष्ट किया.

एक मिनट के लिए वह चुप हो गयी और मुझे लगा कि उसके भीतर कोई द्वंद्व चल रहा है. मैंने उससे कहा कि वह बिना झिझक उसके साथ जो कुछ भी हुआ, कहती चले.

मुझे काम देनेवाले पारसी युवक को मेरा बड़ा खयाल रहता था. उसने मेरा वेतन बढ़ा कर ५० रु. प्रति माह कर दिया और अगले साल और भी बढ़ाने की बात कही. उसे मुझसे लगाव हो गया था. अपनी पत्नी की गैर-मौजूदगी में वह मेरा बार-बार चुंबन लिया करता और मैं प्रतिरोध नहीं कर पाती थी. कई बार हम दोनों एक दूसरे का चुंबन-आलिंगन करने लगे किंतु एक सीमा के आगे नहीं गये, उसने स्पष्ट किया.

प्रति सायं को मैं उसके पुत्र को घुमाने के लिए गिरगांव स्थित एक बगीचे में जाया करती थी. एक दिन मैं रोज की तरह बगीचे में बैठी थी और बालक पास ही खेल रहा था कि एक औरत करीब की बेंच पर आ कर बैठी और लगातार मेरी ओर देखने लगी. वह बच्चे को दुलारती-पुचकारती रही और मुझे कनखी मारती हुई उठ कर चल गयी. दो दिन बाद वह पुनः बगीचे में आयी और मेरी ही बेंच पर बैठ गयी--किसका बेटा है, यह? उसने मुझसे पूछा. मैंने बतलाया कि मेरे मालिक का है, तो उसने मेरा कन्नड़ उच्चारण भांप लिया और पूछा कि क्या मैं कन्नड़ जानती हूं. मेरे हां कहने पर वह मुझसे कन्नड़ में बातें करने लगी. उसने पूछा कि मैं पारसी के घर यहां कब से काम कर रही हूं और वह मुझे क्या देता है. बिना कोई संदेह किये मैंने उसे बतला दिया कि मैं दारशा के घर में पिछले तीन वर्षों से काम कर रही हूं और वह मुझे ५० रु. देता है. खाना-पीना तथा रहने को भी मिलता है. उसने अचरज दिखला कर कहा, इतने के लिए ही तुम वहां काम कर रही हो!

दो दिन के बाद वह फिर से बगीचे में आयी. उसके साथ एक अन्य व्यक्ति भी था. ये दोनों वही हैं जो कठघरे में खड़े हुए हैं. उसने बतलाया कि उसके साथवाला वह व्यक्ति उसका चचेरा भाई है. उसने बलपूर्वक कहा कि बंबई में मुझे अधिक रुपये मिलने चाहिए और नुकसान नहीं उठाना चाहिए. उसने आगे कहा कि मुझ जैसी लड़कियों को बंबई में घरेलू काम के लिए १०० रुपये आसानी से मिल सकते हैं और इतना तो शुरू में ही वह भी मुझे देने को तैयार ह. उसके चचेरे भाई ने कहना शुरू किया कि उसकी बहन रंगू के पास अच्छी-खासी जगह है और उसका दूध का धंधा इतना अच्छा चल रहा है कि वह बड़े मजे में मुझे १०० रु. प्रति माह दे सकती है. मैंने उन्हें जवाब दिया कि मैं कुछ दिनों बाद सोच कर बताऊंगी, वह कहती गयी.

अगले ही दिन मेरे पिता का पत्र आया कि मैं १०० रु. तत्काल भेजूं ताकि मेरे बीमार भाई की दवा की जा सके. जैसे-तैसे करके मैंने १०० रु. भेज दिये और गंभीरतापूर्वक सोच-विचार करने लगी कि क्यों न रंगू के यहां काम कर लूं ताकि माता-पिता को अधिक रुपये भेज सकूं. मैं रोज की तरह बगीचे में गयी जहां मौजूदा अभियुक्त मुझे मिला. उन दोनों ने घरेलू नौकरानी के तौर पर मेरे सामने मेरे भविष्य के सुनहरे चित्र खींचे. रंगू ने जल्दबाजी में मुझे यह दिलासा भी दी कि वह मुझे अपनी बहन समझेगी और बाद में अपने धंधे में मुझे भागीदार बना लेगी. यह सुनकर मैं उनकी बातों में आ गयी. रंगू ने बतलाया कि अगले दिन १० बजे वह दारशा के फ्लैट के सामने टैक्सी में मेरा इंतजार करेगी, उसने लंबी सांस लेकर कहा.

★ ★

अगले दिन मैंने सड़क पर एक टैक्सी को प्रतीक्षारत पाया. मैंने रंगू को टैक्सी में बैठे पाया और अपने कपड़ों का थैला लेकर उसके पास चल पड़ी. वह मुझे फारस रोड स्थित एक मकान में ले गयी. हम पहले माले पर पहुंचे तो मैंने ३ अन्य किशोरियों को वहां पाया. क्षण भर के लिए मेरे मस्तिष्क में यह विचार कौंध गया कि हो न हो, यह वह जीवन नहीं है जिसका मुझे वचन दिया गया था. रंगू मुझे अपने कमरे में ले गयी जो इत्र की सुगंध से भरपूर था. उसने मुझे भोजन कराया और एक अलग कमरे में कुछ देर आराम करने को कहा. चाय के बाद उसने मुझे अपनी साड़ी में इस्त्री करने को कहा जो कि मैंने किया. सायंकाल मैंने तीन लड़कियों को साज-शृंगार करते देखा. उन्होंने मुझे भी वैसा ही करके तैयार होने की सलाह दी. मैंने पूछा कि किस बात के लिए तैयार होना है, तो उन तीनों ने बताया कि शीघ्र ही मुझे पता चल जायेगा. रंगू ने मुझे अपने कमरे में बुलाया जहां दूसरा अभियुक्त भी मौजूद था. दोनों ने मुझे साफ-साफ शब्दों में बतला दिया कि मुझे ग्राहकों को संतुष्ट करने के लिए तैयार होना है. और यदि मैंने उसका विरोध किया, चिल्लाने अथवा भागने की कोशिश की तो मुझे जान से मार डाला जायेगा. खलीद ने मुझे रामपुरी छुरा भी दिखलाया. रंगू ने धमकाया कि विरोध करने पर मुझे पीटकर बेहोश बना देगी किंतु मुझे अच्छी लड़की बन कर ग्राहकों से अधिकाधिक रुपये ऐंठने चाहिए. उसने वचन दिया कि वह धनीमानी ग्राहकों को ही मेरे पास भेजेगी. यह सब सुन कर मैं लगभग बेहोश हो गयी, मुझे विश्वास हो गया कि मैं एक ऐसे वेश्यालय में आ फंसी हूं जहां से मुक्ति पाना असंभव है, वह रुक-रुक कर बोलने लगी.

मुझे भयभीत करने के लिए खलीद ने दो बार मेरी कमर पर भीषण चोट पहुंचाई और मेरे गले पर छुरा

रख दिया. वह मुझ पर बराबर निगाह रखता था. एक महीने तक मुझे उस मकान से बाहर नहीं निकलने दिया गया. प्रति दिन मुझे तीन-चार कामुक व्यक्तियों की वासना का शिकार होना पड़ता था जिनमें से प्रत्येक से से रंगू १००-२०० रुपये ऐंठ लेती थी. अगले महीने मुझे एक फिल्म के लिए काम करने को बाहर जाने दिया गया किंतु खलीद छाया की तरह मेरे पीछे चाकू लिये लगा रहता था. मैं पूरी तरह असहाय बन चुकी थी. इसी प्रकार एक वर्ष गुजर गया, उसने दुखपूर्वक कहा.

एक रोज बालकनी में खड़ी मैं सड़क की ओर देख रही थी. खलीद पास ही खड़ा था. मैंने मकान के सामने एक टैक्सी को रुकते देखा. टैक्सी से ड्राइवर ने निकल कर दरवाजा खोला. यात्री ने उसे रुपये दिये और अपनी राह चल दिया. मैंने पहचान लिया कि टैक्सी ड्राइवर मेरे मामा गुंडप्पा थे. खलीद की पैनी निगाह से यह छिपा न रहा, उसने मुझे जोर की चिकोटी काट कर मार डालने की धमकी देते हुए भीतर की ओर ढकेल दिया. मैं दर्द से तिलमिला उठी. मुझे लगा कि गुंडप्पा ने मुझे देख लिया है. यह सब क्षण भर में घटित हो गया. खलीद नीचे उतर गया जब कि रंगू ने मुझे बांहों में भर लिया, मेरी कमर को सहलाते हुए, मुझे सांत्वना देने लगी. मुझे गुंडप्पा के जोर-जोर से बोलने की आवाज सुनाई दी और खलीद का कहना भी सुनाई पड़ा कि कुमुद नाम की कोई लड़की हमारे घर में नहीं है. फिर टैक्सी के चले जाने की आवाज भी सुनाई पड़ी. मुझे लगा कि मेरे भाग्य के द्वार हमेशा के लिए बंद हो गये. मेरे चारों ओर पहरा और भी कड़ा हो गया और मैं असहायावस्था की चरम सीमा को पहुंच गयी, उसने गंभीर मुस्कान के साथ कहा. उसकी आंखें आंसुओं से भर गयी थीं और वह उन्हें बरबस रोके हुए थी.

कुछ महीनों के भीतर ही अनैतिकता और इंद्रियवासना से पूर्ण जीवन का प्रभाव मेरे स्वास्थ्य पर दिखाई पड़ने लगा. मेरे पास शब्द नहीं कि मैं अपने पर किये गये ग्राहकों की काम-वासना के पागलपन का वर्णन कर सकूं. मैं बीमार पड़ गयी और डाक्टर बुलाया गया. अभियोगियों को लगा कि मैं असहाय अवस्था को पहुंच चुकी हूं और अपने पूर्व के शारीरिक यौवन-लावण्य को पुनः नहीं प्राप्त कर सकूंगी. मैंने डाक्टर के पास जाने का हठ किया और एक बारहवर्षीया लड़की के साथ मुझे वहां जाने दिया गया, उसके चेहरे पर अनेक भाव आ-जा रहे थे और वह बोलती जा रही थी.

हां, खलीद द्वारा अपने पर किये गये एक अत्याचार को बताना तो मैं भूल ही गयी. उसे लगा कि गुंडप्पा कभी भी मेरी खोज में आ सकता है. उसने मुझे फारस रोड से हटा कर कमाठीपुरा की एक तंग अंधेरी कोठरी में डाल दिया. वहां मुझे तीन सप्ताह तक रहना पड़ा. एक दिन दोपहर को वह छुरा और स्टैंप पेपर लेकर मेरे पास आया. उसने मुझे उस पर यह कहते हुए सही करने को मजबूर किया कि ऐसा वह एक नये राशन कार्ड के लिए करवा रहा है. बाद में मुझे पता चला कि वह दो हजार रुपये १२% ब्याज के साथ लौटाने का समझौता था, यह कहते-कहते वह अपना धैर्य लगभग खो चुकी थी.

हां, तो उस दिन मैं उस बारहवर्षीया लड़की के साथ डाक्टर के पास गयी. उसने देखभाल के बाद दवा लिख दी. मैंने बोतल लड़की को पकड़ायी कि वह कंपाउंडर से दवा ले ले जब तक कि मैं पाखाना हो आऊं. दवाखाने से निकल कर मैं एक टैक्सी में बैठ कर गुंडप्पा के घर पहुंची और उसकी पत्नी की बांहों में लिपट कर सुबकती रही. मैंने रोते-रोते उसे अपनी रामकहानी सुनाई. कुछ देर बाद गुंडप्पा मामा भी आ गये. मैं उनके पैरों पर गिर पड़ी और गुनाहगारों से रक्षा की भीख मांगने लगी. वह मुझे पुलिस थाने ले गये, वहां मेरी रिपोर्ट दर्ज करवायी गयी किंतु गुनाहगार कई दिनों तक नहीं पकड़े गये, उसने चैन की सांस ली और पैंतरा बदला.

★ ★

गुंडप्पा मुझे दारशा के घर पर मिलने को आया करते थे और दारशा को भी गुंडप्पा का घर मालूम था. गुंडप्पा के घर पहुंचने के २-३ दिन के भीतर ही दोनों अभियुक्त वहां आये और उसे धमकी देते हुए मुझे वापस भेजने की मांग की. उनका कहना था कि मैंने स्वेच्छा से वह अनैतिक धंधा अपनाया था. गुंडप्पा के इंकार करने करने पर खलीद ने २ हजार रुपये का स्टैंप पेपर दिखला कर गुंडप्पा से वह रकम १२ % ब्याज सहित वापस मांगी ताकि वह मुझे अपने चंगुल से मुक्त कर सके. गुंडप्पा ने दोनों को घर के बाहर निकाल दिया तो वे उसे यह धमकी देते हुए चले गये कि उसे जान से मार डालेंगे, उसका बंबई में टैक्सी चलाना असंभव बना देंगे, उसने लड़खड़ती जबान से कहा और ५ मिनट का आराम चाहा क्योंकि वह थक चुकी थी.

दीवार के पास अपनी बेंच तक वह मंथर गति से पहुंची. वहां पहुंच कर कुछ देर तक रूमाल से चेहरे को हवा करने के बाद उसने एक गिलास पानी पिया और वापस लौटी.

अगले २-३ दिनों में खलीद ने गुंडप्पा से बदला लेने का बहुतेरा प्रयास किया. भयभीत हो गुंडप्पा ने मुझे मंगलूर भेज दिया जहां मैं दो महीने रही. उसके बाद वह मुझे इस मुकदमे के लिए लाये, उसने आखिरी वाक्य कहा.

अभियुक्तों के वकील की जिरह का उसने भलीभांति जवाब दिया. शरीर-व्यापार के अपने घिनौने अनुभवों का सच्चाई के साथ वर्णन करने में उसे सफलता मिली. मैंने अन्य गवाहों से भी पूछताछ की, अभियुक्तों को सुना और उन्हें जेल जाने की सजा दी.

जैसा कि जोसेफ कानरड ने कहा है : 'स्त्री होना अपने आप में एक भयंकर कठिन कार्य है क्योंकि वैसा होने पर मुख्यतया पुरुषों से ही पाला पड़ता है.' □□□

(अनुवाद : आनंद प्रकाश सिंह)

८ रागिनी, साहित्य सहवास,
बांद्रा (पूर्व), बंबई ५१

देवदासी

• शंकर राव खरात

यह एक ऐसी औरत की कहानी है, जो जवानी में फूल थी और जवानी समाप्त होते ही पत्थर बन गयी, जिसे या तो लोग ठोकर मारते हैं या जिससे बच कर निकल जाते हैं...

सड़क के किनारे बबूल का कंटीला ठूंठ खड़ा था. उसकी तार-तार-सी विरल छाया में गीता खड़ी थी. उसका चेहरा फक पड़ा हुआ था.

गीता की केशराशि पक कर सफेद हो चुकी थी, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गयी थीं, आंखें अंदर धंस गयी थीं, गालों में गड्ढे पड़ गये थे. उसके हाथ-पैर सूख कर कांटा हो चुके थे.

कभी देवता के अक्षत्-कंकू-हल्दी से भरा गीता का सिर आज सफेद पड़ गया था. उसके हाथों की अगुलियों की अंगूठियां सरक-सरक कर गिर पड़ती थीं. पैर के घुमावदार तोड़े टूट चुके थे. कमर का बंद पता नहीं कब का खो चुका था. कानों के छेद सूने पड़ गये थे. कर्णफूल कहां गिर गये, पता नहीं. गीता के गले में अब बची थी तांबे की मणियों की डोरी, जिससे उसके देवदासी होने का पता चलता था. आज उसके शरीर पर तार-तार हुई झीनी काली साड़ी अपना करुण अतीत बता रही थी. कभी उसके शरीर पर खिलने वाला बेशकीमती, जरी से भरा हुआ शाल और गुलाबी-आसमानी रंग की जरी वाली साड़ी का पता नहीं था. उसके गोरे शरीर पर कसमसाती धारवारी चोली का भी पता नहीं था. आज उसके शरीर पर सफेद ढीली-ढाली अंगरखी झूम रही थी.

रस भरे ओठों के गुलाबी रेशे गायब हो चुके थे. आज उसके ओठों पर पपड़ियां पड़ चुकी थीं.

★ ★

भीषण गर्मी. सब कुछ झुलस रहा था. पक्षी पेड़ों की छांह में छिपे थे. पशु पेड़ों की ओर चल पड़े थे. लोग भी पेड़ों के नीचे छाया में बैठे थे.

केवल गीता ही उस सूखे-कंटीले बबूल के पास खड़ी पथराई आंखों से देख रही थी. उसके पास भूखा कुत्ता भी था, जो पेड़ के तने की छाया में बैठा था.

गीता की निश्चल-रोती आंखें टीले पर खड़े उस मंदिर पर लगी थीं. उसकी आंखें मंदिर के अहाते में ही तैर रही थीं. उसके चारों ओर चक्कर लगा रही थीं. उस तपती दुपहरी में उसकी आंखें तप रही थीं.



--पांड्! गीता का साथी 'वाघ्या' आज उसे कहीं नहीं दिख रहा था, जिसकी वह घंटों राह ताका करती थी. कभी बीच में कौआ बोल पड़ता तो कहती--वाघ्या! वाघ्या!! मैं भी आती हूं. ठहर! आज हमें रात भर जागना है!

गीता ऐसे ही बोला करती---बका करती. और फिर उसके अंग में 'देवी' का संचार होता.

. . .और एकाएक गीता के मन में क्या आया, किसे मालूम! उसने आनन-फानन में साड़ी का पल्लू कमर में मजबूती से खोंसा और ऐसे ही कुछ बजाने को हाथ हिलाया--फिर क्या था! वह थिरक उठी. उसने आवाज दी--वाघ्या! बजा! बजा!! बोल! और गीता को दूर से आती आवाज सुनायी दी--- थिरक! थिरक! देवी, थिरक!!

--होने दे. अक्षत गुलाल उड़ने दे! येलकोट देवस्थान!

--येजुरी की जयमल्हारी, येलकोट देवस्थान. . . गीता उस बबूल के पेड़ के नीचे से निकली और रास्ते पर ताल-नृत्य करने लगी--और बबूल के पेड़ पर कौआ कांव-कांव बोल उठा. . .

★ ★

गीता को रास्ते पर थिरकते हुए देख कर राह जाते हुए अधेड़ पटवारी ने ताना कसा--अरे गीता, तुझे इस बुढ़ापे में क्या सूझी है? और पास के हल्दी-कंकू वाले की दुकान के अंदर जा कर और भी बड़बड़ करने लगा---अरी मैया री, मैया! गीता पगला गयी है. जरा देखो तो उसका पागलपन!

पटवारी के व्यंग्यबाण कान में पड़ते ही गीता फुफकार उठी--क्यों रे पटवारी के बच्चे, तुझे पाड़े का आम चाहिए? आता है मेरे पाड़ का आम उतारने? अब कैसे-कैसे नाक-आंख सिकोड़ता है!

गीता की यह झिड़की कान में पड़ते ही पटवारी वहां से हटा-- उसे लगा. . .यह गीता मुझे भी पागल बना देगी.

और पटवारी को चलते देख गीता उसके पीछे हो ली. पटवारी बड़े जोर से बोल उठा-- ए बुड्ढी! मरे पीछे क्या आती है!

इतना सुनते ही गीता उस पर बमक पड़ी---क्यों रे भड़वे! मेरी जवानी में तो तू कुत्ता बना हुआ था! अब मैं बुढ़िया हो गयी?

और तलाठी इतना सुनते ही वहां से उलटे पांव भाग पड़ा. . .

★ ★

गीता मंदिर की सीढ़ियों के पास आम के पेड़ के नीचे बैठ गयी.

आम में बौर आया था. उसकी मादक सुगंध वातावरण में फैल रही थी. आम के बौर पर मधुमक्खियों और भौंरों का दल टूट पड़ता था, झुंड-का-झुंड चला आ रहा था.

गीता की दृष्टि सहज ही बौर पर पड़ी और वह मन-ही-मन बुदबुदायी--अरे, मेरी जवानी भी तो कभी ऐसे ही बौरायी थी! कभी मुझमें भी यौवन का उभार आया था! मेरी मदभरी जवानी के दिनों में ऐसे ही पागल लोगों की मेरे दरवाजे पर भीड़ लगा करती थी. मेरे पीछे भी ऐसे ही 'भौंरों' का गुंजन हुआ करता था.

बौराये आम की बहार देखते ही बनती थी. आम्र बौर की मीठी-मीठी, मंद-मंद गंध से सारा वातावरण गमक रहा था. . .

एक, दो, तीन . . .सारी-की-सारी तितलियां, मधु-मक्खियां! . . .

देखते-देखते गीता हंस पड़ी और फिर कुछ बोल उठी--मेरे दरवाजे पर भी देवी का कंकू-गुलाल उड़ा करता था. भक्तों की भीड़ लगा करती थी. बैठने को जगह नहीं रहती थी. भक्तों की आंखें मुझ पर अटक जाती थीं, उनमें कुछ जवान, कुछ किशोर और कुछ अधेड़ भी होते. मुझ पर कंकू-गुलाल-हल्दी उड़ाते वक्त उनकी आंखों में एक हविस होती. उनके मन में कितने मनसूबे हुआ करते! मेरे उभरते रूप-यौवन पर सभी भौंरों की तरह मंडराते!... सच! मुझ पर पैसों की बौछार होती. मुझे लगता ये भौंरे नहीं, ये वास्तव में देवी के भक्त हैं. इन्हें भगवान के दर्शन चाहिए-- इसीलिए मेरी तरफ दौड़ रहे हैं!... हां, मैं देवदासी, मैं ही उन्हें भगवान के चरणकमलों तक ले जाया करती. भगवान का नाम रटा करती. जय मल्हार, जय मल्हार! . .येलकोट! इस तरह भगवान के नाम का जयजयकार होता. मैं और वाघ्या आगे-पीछे और सारे भक्तों की भीड़ पीछे-पीछे! इस तरह बाजे-गाजे के साथ भगवान के दर्शन की यात्रा निकला करती.

. . .और लोग मेरी तरफ मुंह बाये देखते रहते. रास्ते के दोनों ओर भीड़-ही-भीड़. उनकी आंखें मुझ पर गड़ी होतीं--और लोग मुझ पर मुग्ध हो कर हल्दी-कंकू का 'भंडारा' उड़ाते.

इस 'भंडारे' की पीली बौछार से मेरा चंपा खिल उठता. और फिर देवस्थान के अहाते में मुझ पर देवी का 'उन्माद' चढ़ता और वाघ्या को भी 'देवी' का प्रमाद भरता. उसके हाथ दिमड़ी पर पड़ते, मेरे पैर भी थिरक उठते. . . और फिर थकने का नाम न लेते. . . दिमड़ी और मेरे पैरों की ताल दोनों एक हो जाती! . . .

--थिरक! और थिरक!! देवदासी! बीच-बीच में ऐसी आवाज उठती. मैं उस उड़ते कंकू-गुलाल में मस्त हो कर नाचती. मुझ पर पूरा नशा चढ़ जाता. . . और वाघ्या भी अपनी सुध-बुध खो बैठता. . .

हमारे शरीर में देवता का 'वास' होता. जय मल्हार! जय मल्हार!!

मेरा अंग-अंग पसीने से सराबोर हो उठता. सिर पर से पसीने की धारा बह निकलती. और मैं कमर में खोंसा आंचल निकाल कर पसीना पोंछती. मैं निढाल हो जाती, पर मुझे ऐसा लगता जैसे सब कुछ मिल गया हो. और तभी कोई फिर मुझ पर 'भंडारा' फेंक कर मुझे सराबोर कर देता.

मेरे चारों ओर यात्रियों की भीड़ लग जाती. उनकी आंखें मुझ पर गड़ी होतीं. उन आंखों में मुझे मादकता के चिह्न स्पष्ट दिखते. हविस की आग जलती दीखती!

गुलमोहर-सी मैं खिल उठती!

रंग-बिरंगी 'तितलियां', 'भौंरे' चारों ओर जैसे गुनगुना रहे थे, गुंजन कर रहे थे. फूलों की सुगंध उन्हें मदमत्त कर रही थी. पराग का छक कर पान करते भौंरों की मस्ती देखते ही बनती.

आम्र-बौर का पता नहीं!

भौंरे आकाश में उड़ कर गायब हो गये. और गीता फिर अचानक कुछ बुदबुदा उठी--

अरे मैं देवदासी,
लेकिन मुझे पुरुषों ने लूटा!
पत्थर को देवत्व मिला,
लेकिन मानव पत्थर हो गया!
सब कुछ. . .उलटा न्याय!

गीता ऐसे ही बड़बड़ाये जा रही थी. और फिर एकाएक उसने आसमान की तरफ नजर उठायी और जोर से चीख पड़ी ---वाघ्या! अरे पांड्या!! अरे तू भी मुझे छोड़ गया ---मैं अकेली ही रह गयी. . .अकेली.

गीता भावाभिभूत हो कर फिर बबूल के पेड़ के पास आयी. उसने फिर आकाश की ओर देखा. उसे कांटे-ही-कांटे दिखायी दिये. सफेद और नुकीले कांटे. सारा बबूल कांटों से भरा हुआ था. गीता ने रास्ते की ओर पथरायी आंखों से देखा. उसका चेहरा सफेद पड़ गया था. उसने सामने देखा. वह लजा गयी और बोल उठी--सुना जी, मैं अब मां बनने वाली हूं, दो महीने चढ़ गये.

--चल हट, बच्चा-वच्चा कुछ नहीं चाहिए! एक रोबदार और कड़क आवाज गूंज उठी.

--नहीं मालिक, ऐसा मत कहिए! मैं इस संसार में अकेली हूं, मुझे साथी मिल जायेगा!

--रंडी! मेरा साथ होते हुए तुझे और किसके साथ की जरूरत पड़ गयी! वह रोबीली आवाज फिर गूंज उठी.

--अजी लड़के की! पेट के बच्चे की!

--अरे! पागल पागल. . .इस जवानी का आनंद ऐसे ही लेना चाहिए.

--देवस्थान में ऐसा कहते हो?

--हां-हां, तेरी जवानी ही भगवान का 'भंडारा' है.

--लेकिन मेरे प्रियतम, भंडारा खत्म होने पर मेरे हाथ क्या लगेगा?

--यह सब कुछ नहीं! भगवान का भंडारा भगवान को ही अर्पित होना चाहिए!

और गीता को अपनी सुध आयी. . .

--भगवान संतान देता है!. . .और मनुष्य संतान मारता है!. . .हे भगवान, यह क्या!. . .अंत में मैं अकेली!. . .

और गीता के मन में अचानक जाने क्या आया. वह बबूल के नीचे से एकदम उठी और दौड़ती हुई ऊपर की ओर चली, जहां भगवान का मंदिर था.

वह रोती जा रही थी---कुछ बुदबुदाती जा रही थी. उसके थके हुए शरीर में जैसे जान आ गयी हो! उसका खून खौल उठा था. वह चिल्लाती जा रही थी. . . .

--अरे, देखो!. . .गीता पागल हो गयी.

--कुछ मत पूछो, उस रंडी के जवानी के दिन भी क्या थे!

--एक, दो, तीन. . .रास्ते पर फिर कोई ताल दे रहा था. गीता के कानों से फिर ये बोल टकरा रहे थे. उसने पागलपन की स्थिति में चारों ओर एक नजर दौड़ायी और खिलखिला कर हंस पड़ी. और रास्ते पर बजते बोलों की खिल्ली उड़ाते हुए वह चीख उठी--अरे, मैं पागल नहीं!. . .पागल तो तुम हो! तुम्हारा मानव-हृदय पत्थर हो गया!

--चल हट, कहीं मनुष्य भी पत्थर होता है!

--हां, हां! मनुष्य भी पत्थर बन जाता है.

--तभी पत्थर में देवत्व जागता है!! और गीता इसी विह्वल अवस्था में मंदिर की सीढ़ियां चढ़ती जा रही थी. . .

★ ★

गीता देवस्थान के अहाते में आ गयी. देवस्थान का अहाता, वाघ्या, देवदासियों और भक्तों से ठसाठस भरा था. सारा देवस्थान कंकू-गुलाल-हल्दी से भर उठा था. मदमाती जवान देवदासियों के नृत्य से सारा वातावरण रंगीन हो उठा था.

उनके चारों ओर खड़े भौंरे आंखों से यौवन-मदिरा का रसपान कर रहे थे. वाघ्या ताल देने में मस्त था.

लेकिन, गीता के लिए वहां स्थान नहीं था. उसका ललाट किसी ने 'भंडारे' से नहीं भरा. उसे किसीने पूछा तक नहीं. यह बात उसे तीर-सी लगी. वह छटपटा उठी.

वह निराश हो उठी! पागल हो गयी. क्रोधावेश में चिल्ला उठी--हे भगवान, तू भी मुझे भूल गया! तेरा नाम ले कर मैंने सारा जीवन बिता दिया. तेरे नाम से मैंने अपना रोम-रोम भरा. हे भगवान, हे भगवान, तू मेरे लिए क्यों मौन हो गया! आदमी पत्थर बन गया. पर तुझमें तो देवत्व है!

गीता का शरीर भयंकर क्रोधाग्नि में जल रहा था... वह उस भीड़ में से चीखती-चिल्लाती निकली--मनुष्य पत्थर! सभी पत्थर! मैं भी पत्थर!

गीता चिल्लाती हुई सीढ़ियों से नीचे उतर रही थी. दौड़ रही थी. हाथों से पत्थर उठा रही थी. . . लोगों पर फेंक रही थी. . . .भगवान पर फेंक रही थी. . . चिल्ला रही थी. . .भाग रही थी. . .उसे सभी ओर पत्थर ही पत्थर दिख रहे थे. . .वह बेतहाशा भागी जा रही थी.

दौड़ते-दौड़ते वह ठोकर खा कर सीढ़ियों से गिर पड़ी. उसका सर फट चुका था. . . .

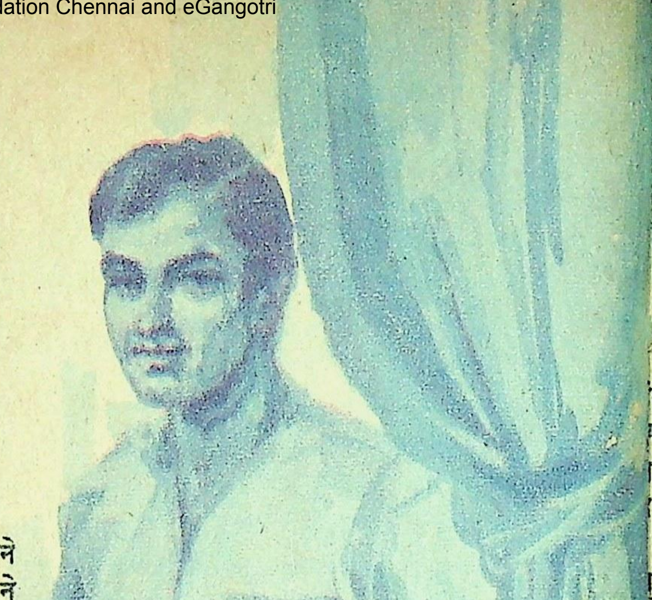
खून से लथपथ . . .ऊपर पत्थर. . .नीचे पत्थर. . .

□□□

(अनुवाद: चंद्रमौलि शर्मा)

उपकुलपति, मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, महाराष्ट्र

मधु मंगेश कर्णिक



महाराष्ट्र में नाम पूछने पर अपने नाम के साथ पिता का नाम भी बताने का प्रचलन है. किंतु देवदासी ही एक-मात्र इसका अपवाद है. कस्तूरी से डिप्टी साहब ने स्कूल में जब उसका पूरा नाम पूछा तो वह कांप गयी... प्रस्तुत कहानी में देवदासी प्रथा से संबंधित रीतियों का भी मार्मिक चित्रण है.

डिप्टी साहब हमारे स्कूल में मुआइने के लिए आने वाले थे. उसके एक दिन पहले ही मास्टर साहब ने हम सब विद्यार्थियों को साफ-सुथरे कपड़े पहन कर और अच्छी तरह से नहा-धो कर स्कूल में आने का आदेश दिया था. विशेष रूप से संभाल कर रखे हुए कपड़े पहन कर हम लोग स्कूल पहुंच गये थे. ओटवनेकर साहब का लड़का पद्मनाभ तो जवान पुरुष जैसी खूब लंबी पतलून पहने हुए था. बड़े ठाठ से उसने अपनी कमीज पतलून के अंदर दबायी थी. लड़कियां तो खूब बन-ठन कर आयी थीं. भगवान गणेश की बगल में बैठी हुई देवी गौरी जैसी हर एक लड़की सजी-धजी दिखायी दे रही थी.

समय पर डिप्टी साहब आ गये. बांबुलीकर मास्टर साहब जान हथेली पर ले कर उनकी जी-हुजूरी में लगे हुए थे. मेरा ध्यान आकृष्ट किया डिप्टी साहब से अधिक उनके साथ वाले चपरासी ने. स्वच्छ-सफेद कड़क इस्त्री के कपड़े पहने हुए और कंधे से कमर तक लटके हुए लाल पट्टे के कारण वह बहुत रोबीला दिख रहा था. मुझसे चुप न रहा गया तो पास बैठी हुई कस्तूरी से मैंने कहा—ए कस्तूरी, उस तरफ देख ना. साहब के साथ वाला वह लाल पट्टे वाला चपरासी कितना सुंदर है!

कस्तूरी का भी ध्यान उसी पर केंद्रित था. यह देखते हुए मेरा मन भी आनंदित हुआ. उसको एकटक निहारते हुए कस्तूरी ने कहा—जरा उसके कोट के बटन तो देख. चांदी जैसे चमक रहे हैं.

आगे मैं कस्तूरी को बतलाने वाला ही था कि राजा पार्टी वाले लोग ऐसे ही चमकदार कपड़े पहनते हैं पर उतने में डिप्टी साहब ने हमारी कक्षा में कदम रखा. बांबुलीकर मास्टर साहब की आंखों का इशारा पाते ही पहले नंबर का छात्र तपाक से खड़ा हो गया और कर्कश आवाज में दोहराने लगा—एक, दो... हम पांचवीं कक्षा के सभी विद्यार्थी खड़े हो गये. हलके-से मुसकराते हुए डिप्टी साहब ने कहा—बैठ जाओ, तुम सब!

मैं तो डर रहा था कि कहीं डिप्टी साहब गणित के सवाल न पूछने लगें. साक्षात मृत्यु से भी मैं उतना नहीं डरता जितना गणित से. पर मेरी बगल में बैठने वाली कस्तूरी गणित के मुश्किल सवालों का हल मुझे बड़ी आसानी से ढूंढ़ देती. गणित के सवाल उसके लिए बायें हाथ का खेल था. पलक झपकने की देर कि कस्तूरी के पास सवालों के जवाब तैयार रहते.

परंतु डिप्टी साहब ने गणित के सवाल पूछे ही नहीं. वह तो मास्टर साहब से ही बातें करने में व्यस्त हो गये थे. सहसा अपनी नजर हम सब विद्यार्थियों पर डालते हुए, वह कस्तूरी की तरफ एकटक देखने लगे. काफी देर उसे निहारते ही रहे. पता नहीं उनके मन में क्या-क्या विचार आये होंगे. सहसा वह आगे बढ़े और बड़े प्यार से उन्होंने कस्तुरी से पूछा—बेटी! बताओ तो तुम्हारा नाम!

तपाक से खड़ी हो कर कस्तूरी ने अपनी मीठी आवाज में बताया—कस्तूरी आचरेकर.

मुझे लगा कि डिप्टी साहब उसकी आवाज की मिठास पर ही बेहद खुश हो गये थे. हंस कर ममता भरे स्वर में उन्होंने कहा—वाह-वाह! नाम तो बड़ा प्यारा है तुम्हारा! पर हमेशा नाम पूरा बतलाना चाहिए; है ना? क्या है तुम्हारा संपूर्ण नाम, बेटी?

हाय! हाय! डिप्टी साहब ने भी अनजाने ही मेरी कस्तूरी से वह प्रश्न पूछा, जिससे वह डरती थी, उसका

कस्तूरी

तेरमन जिससे दहल जाता था. उसी प्रश्न को ले कर कूल के सारे बदमाश लड़के उसे छेड़ा करते, उसका जाक उड़ाया करते. और फिर कस्तूरी की आंखों में ारुण व्यथा के आंसू चमक उठते.

डिप्टी साहब का सवाल सुन कर कस्तूरी की बान पर घबराहट से जैसे ताला पड़ गया. हीनता की ावना से उसकी गरदन नीचे झुक गयी और सके गोरे गाल शर्म से लाल हो गये. सहमी-ी वह केवल अपने पांव के अंगूठे पर नजर ड़ाये खड़ी रही. उसका सारा शरीर कांप हा था.

परंतु मास्टर साहब ने स्थिति को ंभालते हुए कहा---साहब, स्कूल के राजिस्टर में उसका नाम केवल कस्तूरी भवरेकर ही लिखवाया गया है. इन लोगों के समाज में पिता का नाम लगाने की प्रथा ही नहीं है.

मास्टर साहब का वह उत्तर सुन कर डिप्टी ाहब भी कुछ संभले. ममता से उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा---कोई बात नहीं! बैठ जाओ, बेटी. भावावेग से उनकी आवाज भी कुछ भारी-सी निकली थी.

* *

उस प्रसंग के बाद कस्तूरी चार दिन स्कूल आयी ही नहीं. इसीलिए शायद कि लड़के उस पर ऐसे कटाक्ष करते, छींटे कसते और जीवन की ऐसी आलोचना करते कि बेचारी का सांस लेना भी दूभर हो जाता. अच्छा ही हुआ, वह स्कूल नहीं आयी. लेकिन उन चार दिनों में मैंने कितनी दारुण व्यथा सही, यह केवल मेरा ही मन जानता है.

कस्तूरी उमर में मुझसे कुछ बड़ी थी. तेरह-चौदह साल की कस्तूरी हमेशा मोतिया या हलके हरे रंग का



लहंगा और चोली पहनती. उसने लंबे-लंबे बालों में हमेशा कोई न कोई सुंदर फूल लगा रहता. जब मंद-मादक सुगंधवाले रंगीले नाज़ुक फूलों का पीला गजरा लगाये हुए कस्तूरी स्कूल आती तो घंटों उसकी वह मनोहारी छवि निहारते रहने के लिए मन ललच जाता. कस्तूरी गोरी और सुंदर तो थी ही पर शरीर से भी अच्छी-खासी तंदुरुस्त थी.

पर बेचारी की कोई सहेली नहीं थी, स्कूल में भी लड़कियां उसे अपने गुट में शामिल नहीं करती थीं. हमेशा कस्तूरी अकेली ही दिखायी देती थी. मैं ही एक ऐसा था जो उसके आसपास मंडराता रहता. गायन कला का उसे काफी अभ्यास था. नाटक-सिनेमा के बढ़िया गाने जब वह मुझे गा कर सुनाती तो उसकी सुरीली आवाज की मिठास में बंधा हुआ मैं मंत्र-मुग्ध-सा बैठा रहता. दुनिया से बिलकुल बेखबर!

कभी-कभी अपने बस्ते में छिपा कर वह मेरे लिए एकाध लड्डू ले आती और आसपास जब कोई अन्य विद्यार्थी नहीं होता तो धीरे-से लड्डू मेरी हथेली पर रखकर कहती——जल्दी से खा ले.

कस्तूरी को मुझसे बड़ा लगाव था पर हमारी दोनों की वह दोस्ती स्कूल में उपहासपूर्ण मजाक का विषय बन गयी थी. स्कूल के सभी विद्यार्थी हम दोनों पर फब्तियां कसते, व्यंग करते और उपेक्षा से हम पर हंसते रहते. देवदासी की लड़की से मित्रता रखने के कारण अन्य सभी लड़के मुझसे भी दूर भागते. मेरा भी कोई दोस्त नहीं था.

एक दिन स्कूल की पढ़ाई समाप्त होने के बाद जब मैं घर की तरफ जा रहा था तो पांडू म्हसकर ने मुझे रास्ते में ही रोककर कहा——अरे ए बाम्हन के छोकरे, उस अपनी दोस्त, देवदासी की लड़की कस्तूरी को मेरी यह चिट्ठी दे देगा क्या? मुझे लालच देते हुए वह आगे बोला, इतना मेरा काम कर देगा तो देख लेना बाजार के अपने होटल में तुझे ढेर सारी जलेबी खिलाऊंगा. करेगा ना यह काम?

पहले तो मैं कुछ हिचकिचाया मगर फिर मुझे अपने आप पर बड़ा गर्व हो आया. यह सोचकर मेरी छाती अभिमान से फूल गयी कि पांडू म्हसकर ने आगे बढ़कर मुझसे बात की और अपना निजी काम करने को कहा. पांडू म्हसकर हमारे स्कूल में सातवीं कक्षा का विद्यार्थी था. स्कूल में पढ़नेवाले सभी छात्रों से वह उमर में बड़ा था और सब पर अपना रौब जमाये रखता. मैंने कहा ——हां दे दो, चिट्ठी. पहुंचा दूंगा कस्तूरी के पास.

कागज का एक छोटा-सा गोला मेरे हाथों में थमाते हुए पांडू ने हिदायत दी—— दूसरे किसी के हाथ में मत देना. समझे ना? और हां कस्तूरी का जवाब मुझे ही आकर बताना. मैंने हामी भर दी, वैसे ही पांडू वहां से चला गया. फिर भी जाते-जाते चिल्लाकर उसने आवाज दी—ए, रात को दुकान पर जरूर आना. जलेबी खिलाऊंगा.

मुझे जो खुशी हो रही थी पांडू की अपनेपन से की हुई बातों की, जलेबी मिलने की उतनी नहीं.

वहां से सीधे मैं कस्तूरी के घर की तरफ मुड़ा. उसके घर जाना मुझे बेहद अच्छा लगता था. कलेश्वर मंदिर के पिछवाड़े उसका घर था. लाल मिट्टी से पुती हुई उसके घर की दीवारें और उनपर खिंची हुई सफेद लकीरें मन को अनायास ही आकर्षित कर लेतीं. लीपापोता स्वच्छ आंगन और उस के बीच पूजा के लिए तुलसी चौरा. सुनहरे पीले-पीले फूलों से लदा हुआ दरवाजे के सामने चंपा का ऊंचा पेड़ और अहाते के फाटक पर कटहल के दो विशाल वृक्ष. सब कुछ मन को बड़ा लुभावना लगता था.

अंदर से भी घर देखने लायक था. दालान में पीतल की मजबूत सांकल से लटकता हुआ एक नक्काशीदार झूला था. पास ही में चमकता हुआ पीतल की महीन सलाखोंवाला पिंजड़ा और उसमें लगी हुई छोटी डंडी पर हिलोरें लेता हुआ सफेद चोंचवाला हरा तोता लगातार बोलता जा रहा था ——ए कस्तूर! कस्तूर दाल दे, मुझे खाने को अमरूद दे. दीवारों पर ढेर सारी तस्वीरें टंगी हुई थीं. एक में एक राजा को उसकी सात रानियां स्नान करवा रहीं थीं और महल की खिड़की में से राजमाता बड़े कौतूहल से उस दृश्य को देखे जा रही थी. दूसरी तस्वीर में अपनी गोद में नन्हीं बच्ची को लेकर खड़ी एक सुंदर युवती के सामने एक दाढ़ीवाला ऋषि ऊपर उठे हुए अपने दाहिने हाथ से अपना मुंह ढांपकर नहीं-नहीं कह रहा है. यह सब देखने के लिए मुझे कस्तूरी के घर जाना बहुत भाता था. लेकिन जब कभी भी मैं उसके यहां जाता, मुझे बड़ी डांट-फटकार सुननी पड़ती.

पांडू की दी हुई चिट्ठी कस्तूरी को देनी थी और यह जोरदार बहाना था उसके घर जाने के लिए.

* *

मैं उसके घर पहुंचा तो उसकी मां और नानी ही दिखायी दीं. कस्तूरी की मां उसी की जैसी सुंदर थी. मेरी मां से तो वह उमर में बहुत ही कम लगती थी. मैंने जब पूछा कि कस्तूरी कहां है, तो उसकी मां ने बताया ——बाजार से ताजी बांगड़ा मछली खरीदकर लाने गयी है.

कस्तूरी की नामौजूदगी में मुझे अपने घर लौट जाना चाहिए था पर पता नहीं क्यों मैं वहीं झूले पर बैठा रहा. हमारे घर के झूले से अधिक मुझे कस्तूरी के यहां का झूला पसंद था. लाल पॉलिश पर पीतल से नक्काशी का चमकदार काम किया हुआ वह झूला बड़ा लुभावना था. झूलते समय उसमें से निकलनेवाली 'कुंई ऽऽ कुंई ऽऽ' की ध्वनि भी अनायास मन को मोह लेती.

थोड़ी देर बाद कस्तूरी आ गयी. कागज में लपेटी हुई मछली अपनी नानी के हाथ में सौंपकर, उसने हाथ धोये. फिर मेरे पास झूले पर बैठ गयी. हंसते हुए उसने पूछा —— क्यों रे, गणित के सवाल पूछने हैं क्या?

मैंने उससे कहा —— नहीं तो. आज और ही कुछ काम है. प्रश्नार्थक दृष्टि से उसने मेरी तरफ देखा और मैंने उत्तर दिया, सातवीं कक्षा में पढ़ने वाले पांडू म्हसकर को तो पहचानती हो ना. उसी ने यह चिट्ठी दी है. जेब से निकालकर मैंने वह चिट्ठी उसे दे रहा था कि पता नहीं कैसे उसकी मां वहां आ पहुंची.

उसने पूछा——किसकी चिट्ठी है? किसने दी है?

डरते-डरते ही मैंने उसे बताया कि पांडू म्हसकर ने कस्तूरी को देने के लिए यह चिट्ठी दी है. उसकी मां गरज कर बोली——पढ़कर तुरंत सुना, कस्तूरी!

कस्तूरी ने कागज के उस गोले को खोला और एक-एक शब्द अपने आप ही पहले पढ़ लिया. फिर गुस्से से लाल-पीली होती हुई वह चिल्लायी —बदमाश, पाजी कहीं का! अपनी मां की तरफ वह चिट्ठी फेंककर वह बोली, इसीलिए मैं बारबार तुझे कहती हूं कि मुझे इस स्कूल में पढ़ना ही नहीं है. पर तू मानती ही नहीं.

कस्तूरी की मां ने मुझे चिट्ठी देकर कहा—तुम पढ़कर सुना दो. मैंने चिठ्ठी पढ़कर सुना दी. आड़े-टेढ़े अक्षरों में और बेहद अश्लील भाषामें लिखा हुआ वह एक गंदा प्रेमपत्र था. कम उम्र का होने के कारण उस समय उस प्रेमपत्र के गंदे ध्येय को मुझे कल्पना नहीं हो पायी. मैं तो केवल इतना ही समझ पाया था कि कस्तूरी को छेड़ने के लिए ही पांडू ने वह प्रेमपत्र भेजा था.उस पत्र द्वारा पांडू ने उसे पूछा था कि कलेश्वर के मंदिर की अटारी पर मुझे मिलने आओगी क्या? उसने उसे प्रलोभन भी दिया था कि तुम वहां मेरे पास आओगी तो नयी फैशनवाली साड़ी तुम्हें उपहार में दूंगा.

कस्तूरी की मां शेरनी जैसी दहाड़ती हुई बोली—उस नालायक, हरामखोर पांडू को कह दे जाकर कि हम देवदासियों की भी इज्जत है, हमारे अपने खास रस्म-रिवाज हैं और व्यवहार के हमारे अपने निजी तरीके हैं. हम लोग देवदासी जरूर हैं पर कमर की साड़ी छोड़कर सर पर नहीं लपेटते. उसे समझा दे कि मेरे से टक्कर लेनेकी जुर्रत न करे. नतीजा खतरनाक होगा. समझ गया ना? तो जा अब तू!

मैं जो वहां से भाग निकला तो घर पहुंचकर राहत की सांस ली. कस्तूरी दूसरे दिन स्कूल नहीं आयी. तीसरे दिन नहीं आयी और बाद में फिर कभी आयी ही नहीं.

पांडू म्हसकर ने मुझसे असलियत जानने की बहुतेरी कोशिश की. जलेबी और भजिये खिलाने का लालच भी दिया. जब वह मुझे किसी भी तरह फुसलाने में सफल न हुआ तो उसने मुझे दहशत भी दी कि मार-मार के मेरी हड्डी-पसली एक कर देगा. पर मैं जरा भी डावांडोल नहीं हुआ. मैंने उसके हर सवाल का एक ही जवाब दिया—तुम्हारी दी हुई चिट्ठी कहीं खो गयी.हो सकता है कि पतलून की जेब में रह गयी हो और धोने में छूट गयी हो.

उसके बाद भी पांडू ने एक बार फिर कस्तूरी को देने के लिए मुझे चिट्ठी देने का यत्न किया पर मैंने कहा—मैं भई उसकी मां से बहुत डरता हूं.किसी भी हालत में और किसी भी कीमत पर मैं उनके घर नहीं जाऊंगा. फिर पांडू ने कभी मुझे परेशान नहीं किया.

कस्तूरी भी कहीं नजर नहीं आयी. स्कूल के रजिस्टर से उसका नाम हटा दिया गया. घर पर भी वह दिखायी नहीं दी. चार-छ: बार मैं उसके घर के आसपास चक्कर भी काट आया पर उसकी आहट तक न मिली. एक दिन सारा साहस बटोर कर मैंने उसकी मां से पूछ ही लिया—आजकल कस्तूरी नहीं दीखती!

गर्दन गर्व से ऊपर उठाते हुए उसकी मां ने कहा—वेलगांव उसे उसके मामा के यहां भेज दिया है. अब वह वहां अंग्रेजी पढ़ती है. वहां का स्कूल बढ़िया है.

कस्तूरी कुड़ाल गांव से चली गयी थी. पांचवीं कक्षा के बाद मेरे घरवालों ने भी मुझे अंग्रेजी पढ़ने के लिए बंबई भेज दिया. धीरे-धीरे मैं कस्तूरी को भूल-सा गया. उसकी मनोहारी मूर्ति मेरे मानस-पटल से गायब हो गयी.

हर गर्मियों की छुट्टियों में मैं अपने कुड़ाल गांव पहुंच जाता. कस्तूरी भी छुट्टियों में गांव आ जाती थी. अक्सर मैं उसे मिलने उसके घर ही चला जाता. शाम को हम दोनों गवलदेव के जंगल की तरफ घूमने निकल जाते. सुप्रसिद्ध उपन्यासकार खांडेकर के नये-नये उपन्यासों पर चर्चा भी छिड़ जाती. कस्तूरी खांडेकर-साहित्य की अनन्य उपासक थी. उसी ने तो मेरा ध्यान उपन्यासों की तरफ आकृष्ट किया था.

बातों के दरम्यान एक शाम अचानक बड़े ही व्यथित अंत:करण से वह बोल पड़ी—सच, मेरा मन जिंदगी के इस घेरे के बाहर निकल जाने को करता है—इस देवदासी की जिंदगी के घेरे के बाहर. अब तो 'देवदासी' शब्द से मुझे घृणा होती है. इस नाम से जीने की मुझे शर्म लगती है पर. . .

मैं उसके भावविह्वल शब्द केवल सुनता रहा. मैट्रिक की परीक्षा देकर गांव आया हुआ मैं, क्या कह सकता था? उसके भविष्य के बारे में कुछ सोचने की या उसकी जिंदगी के बारे में कुछ राय देने की काबलियत कहां थी मुझ में! मुझे तो जरा भी खयाल नहीं था कि उस बदकिस्मत कस्तूरी के सामने किस्मत ने कितना बड़ा प्रश्नचिह्न खड़ा कर रखा था. मैं तो यही समझता रहा कि जिस तरह मेरा जीवन सही रास्ते पर से गुजरते हुए आगे बढ़ रहा है, उसी तरह कस्तूरी का भी होगा.

और वहीं मेरे और कस्तूरी के जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय समाप्त हुआ.

★ ★

समय अपनी रफ्तार से गुजरता गया. मेरी शिक्षा पूरी हो गयी. उच्च डिग्री प्राप्त होते ही मुझे ऊंचे पद की नौकरी भी मिल गयी. मैं अपनी जिंदगी संवारने में लगा था और मेरे सभी अपने लोग मुझे आगे बढ़ने में सहायता दे रहे थे. अब केवल मेरा विवाह हो जाने की कमी थी. विवाह से मुझे समाज में मान्यता मिलती और मेरा अपना एक प्रतिष्ठित स्थान बन जाता.

छुटपन की निरर्थक बातें भी मेरे दिलोदिमाग से कब की निकल गयी थीं; तेज धूप हो जाने पर नीबू के पेड़ पर बैठी हुई गोरैया जिस तरह फुर्र से उड़ जाती है.

उस साल मेरी शादी तय की गयी. सावंतवाड़ी के एक बहुत रईस खानदान की लड़की थी. पढ़ी-लिखी और सुंदर थी. दहेज भी बहुत मिलनेवाला था. विवाह समारंभ सावंतवाड़ी में ही होनेवाला था. वहीं हमारे घर के सभी सदस्य, रिश्तेदार और दोस्त एकत्रित हो गये थे. विवाह धूमधाम से होनेवाला था.

विवाह की रस्में प्रारंभ हो गयीं. सावंतवाड़ी में एक विशेष रस्म प्रचलित है. शादी की अनेक विधियों के बीच एक समारंभ का आयोजन किया जाता है. नववधू की वेशभूषा करने के बाद उसे सुंदर फूलों का साज चढ़ाया जाता है. खानदान से संबंध रखनेवाली

देवदासी को आमंत्रित किया जाता है और उसी के हाथों यह रस्म अदा की जाती है. वधू के बालों का फूलों से शृंगार करने के पहले वह देवदासी अपने हाथों उसे मंगल-स्नान करवाती है और वधू के उतरे हुए वस्त्र उस देवदासी को इनाम में दिये जाते हैं.

आज सुबह ही यह समारंभ वधू के घर होने जा रहा था. वर पक्षवाले हम सभी लोगों के ठहरने की व्यवस्था जिस घर में की गयी थी, वह ठीक वधू के घर के सामने था. इसी से दोनों तरफ के लोगों को दोनों मंडपों में होनेवाली हलचल, भागदौड़ सभी कुछ बड़े आराम से देखने को मिलती. अपने मंडप में लगे हुए झूले पर बैठकर मैं और मेरे दोस्त वधू-मंडप में होनेवाली रस्में देख रहे थे. मेरी मंगेतर की सहेलियों के हंसी-मजाक से सारा वातावरण गूंज उठा था. बाहर की तरफ शहनाई बज रही थी. उसके मधुर स्वर उस मनोहारी हंसी-मजाक में और उत्तेजना भर रहे थे.

फिर मैंने देखा कि मेरी होनेवाली पत्नी एक कीमती, महीन साड़ी परिधान किये हुए सहेलियों से घिरी बाहर आयी. गुलाब के लाल-पीले फूलों से उसके बालों का सौंदर्य और भी बढ़ गया था. नहा-धोकर, मोहक प्रसाधन और साज-शृंगार करके एक-एक कदम आहिस्ते से उठा कर सीढ़ियां उतरनेवाली उस लावण्यवती की सौंदर्य-गरिमा देखते हुए मैं तो क्षण भर अवाक् रह गया. तुलसी मैय्या के सामने घी का दीप जला कर और श्रद्धा से माथा नवाकर वह जैसी आयी थी, वैसी ही सहेलियों से घिरी घर के अंदर चली गयी. मैं सोचने लगा, पता नहीं यह मेरी भावी पत्नी तुलसी मैय्या से कौन-सा वरदान मांग रही है.

मेरे सब मित्र मजाक के बीच मुझे लाख-लाख बधाई देते हुए मेरे सौभाग्य की सराहना कर रहे थे कि कितनी सुंदर जीवन-संगिनी मैंने पायी थी.

अचानक मेरी नजर सामने के घर में से बाहर आनेवाली नवयुवती पर पड़ी. मेरी पत्नी से वह कितनी अधिक गोरी और सुंदर थी! चंपा के विकसित फूल जैसी नाजुक और मोहक उस नवयौवना को देख कर मैं ठिठक गया. पर दूसरे ही क्षण मैंने पहचान लिया अपने बाल्य-काल की मित्र कस्तूरी को. और उस निषाद बाल्यकाल की कितनी सारी छोटी-छोटी घटनाएं कल्पना के सामने साकार हो उठीं. यादों की गौरय्या जो नींबू के आंगनवाले पेड़ से उड़ गयी थी, उसने वापस आकर मेरे मन में हलचल मचा दी. सहसा चौंककर मैंने देखा कि मैं वहां उस झूले पर अकेले ही बैठा हुआ था; सारे मित्र कब से चले गये थे. उस क्षण मैं अपने खानदान की इज्जत, शोहरत, अपनी खुद की प्रतिष्ठा सब कुछ भूल गया था. मैंने आवाज दी—कस्तूरी!

वह वहीं ठिठक गयी. उसके हाथ में मेरी मंगेतर की उतरी हुई गीली साड़ी थी और केशभूषा के समय गुलाब के साज में से गिरे हुए चंद फूल. उसने आंखें ऊपर उठा कर मेरी तरफ देखा. तुरंत पहचान गयी थी वह मुझे. उसकी आंखों में दारुण व्यथा के भाव स्पष्ट दिखायी दिये.

—कस्तूरी,तू ! और यहां ?' मैंने अधीर होकर पूछा. उसके हाथों की गीली साड़ी और मुरझाये-से गुलाब के फूल देखकर मेरे मन में उसके जीवन की जो एक गंदी कल्पना उभर आयी थी, उसे असत्य साबित करनेवाले उत्तर की मैं उससे अपेक्षा करता रहा.

कस्तूरी एक पल सहमी-सहमी खड़ी रही; फिर चारों तरफ नजर घुमायी. वह पसीने में तरबतर हो गयी थी, शायद लोकलाज का उसे भय था. गर्दन नीचे झुकाकर मंद स्वर में वह बोली—तुम्हारी दुल्हन को फूलों का साज चढ़ाकर आ रही हूं. उसका चेहरा घबराहट और आत्म-ग्लानि से फीका पड़ गया था.

थोड़ी देर के बाद बड़े ही अलिप्त भाव से उसने कहा—बहुत अर्से के बाद मुलाकात हुई. ठीक तो हो ना?

उसका वह प्रश्न सुनकर लगा जैसे एकाएक वह मुझ से चालीस साल बड़ी हो गयी हो और नानी-मां जैसी मेरी सेहत की पूछताछ कर रही हो.

सामने के आंगन से अपने श्वसुरजी को बाहर आते देखकर मैंने अपना होश सम्हाला. कस्तूरी तो पता नहीं कब की वहां से चली गयी थी.

छुटपन में गणित के कठिन सवाल हल करने में मेरी मदद करनेवाली, छुपछुप कर मुझे लड्डू खिलानेवाली, पांडू म्हसकर की छेड़खानी से तंग आकर स्कूल त्यागनेवाली, खांडेकर के उपन्यास के उदात्त विचार और उनका भाव-सौंदर्य मेरे सामने स्पष्ट करके, मुझमें रुचि पैदा करनेवाली कस्तूरी. 'देवदासी के जीवन को बदलना है रे,' ऐसी हृदय की गहराई से आर्तता से पुकारनेवाली, मेरी बचपन की सहेली कस्तूरी. आज दस साल बाद वही मरी कस्तूरी मेरी ही पत्नी को स्नान करवा कर, उसके केशों का फूलों से शृंगार करने का मान लेने आयी थी और जाते समय बड़े चाव से पत्नी की उतरी हुई गीली साड़ी लेकर जा रही थी. पत्नी के बालों में से गिरे हुए जूठे गुलाब बड़ी खुशी से ले जा रही थी. विधि की यह कैसी बिडंबना थी!

★ ★

शादी ठाठबाट से हुई. दावतें हुईं, रस्में की गयीं. लेन-देन भी बड़े पैमाने पर हुआ. अंत में एक ऐसी रस्म बाकी रह गयी थी जिसमें देवदासी का हाथ लगना आवश्यक था. महिलाएं कस्तूरी को ढूंढ़ने लगीं पर वह कहीं नहीं दिखायी दी. तभी एक स्त्री बोली—दुल्हन को फूलों का साज चढ़ाकर वह कहीं चली गयी.

नौकर को उसके घर फौरन भेज दिया गया ताकि वह आ जाये और उस रस्म को पूरा कर दे. नौकर ने आकर खबर सुनायी कि उसके घर में ताला पड़ा है और वह कहां चली गयी, किसी को भी पता नहीं.

फिर वे रस्म देवदासी का हाथ लगे बगैर ही कर दिये गये. दोपहर का समय था. शहनाई में से कोई अनाड़ी कलाकार जोगिया राग का उदास सुर निकाल रहा था. □□□

(अनुवाद : मालिनी बिसेन)

७, मेघधनु, वावाभाई रोड,
बंबई–५६



समाज क्रांति

मैं कौन हूं (मी कोण) मेरी कहानी अर्थात् आत्मकथ्य है. मेरा जन्म ज्येष्ठ शु. पंचमी शक संवत १८११ में काणकोण तालुका के अन्तर्गत पैंगीण में एक रंगी नामकी देवदासी के पेट से हुआ था. मेरी मां का जन्म सदाशिव गढ़ काजूबाड़ा में एक विधवा के पेट से हुआ था. अपनी लज्जा की रक्षा करने के लिए इस विधवा ने अपने पेट के इस कलंक को पैंगीण की पुतलीबाई नाम की एक देवदासी के सिपुर्द कर दिया. पुतली बाई ने मेरी मां को दत्तक ले कर उनका उचित रूप से पालन-पोषण किया तथा विधिवत् नाच-गाने की साधारण शिक्षा दी. मेरी मां के नाक-नक्श बड़े तीखे थे तथा अंग-प्रत्यंग बड़ा सुडौल होने की वजह से वे चार के बीच में अलग ही दिखाई देती थीं. वे स्वभाव से अत्यंत स्नेही तथा निरीह थीं इसी वजह से वे अपने परिवार में सबकी लाड़ली थीं. चौदह वर्ष में उनका "नहान" हुआ तथा श्री रंगा जी शेणवी मेंडे नामक एक तरुण ने उन्हें हमेशा के लिए अपनी रखैल बतौर रक्खा. आजीवन वे उनके सहचर्य में पत्नी की तरह रहीं. प्रथम वर्ष में ही वे गर्भिणी हुईं. मोगाबाई के प्रयत्न स्वरूप असाध्य कष्ट के बाद मेरा जन्म हुआ. माणू जोशी नामके प्रसिद्ध ज्योतिषी के पास नारियल रख कर मेरी जन्म कुंडली उनसे बनाने की विनती मेरी आजी (पुतलीबाई) ने की तथा उन्होंने मुझसे संबंधित सारी जानकारी दी. प्रसूति के समय मुझे बिना देखे ही माणू जोशी ने मेरा नाम मृत्युंजय रखने की सोची और घोषणा की इस बच्चे के हाथ से कभी बुरा काम नहीं होगा. हमेशा शुभ ही शुभ होगा तथा आपकी गरीबी नष्ट होगी. यह सुन कर आजी प्रसन्नता से गद्-गद् हो उठीं. मेरा नाम मृत्युंजय ही रक्खा गया किंतु प्रचार में राजाराम ही उपयोग में आने लगा. □

देवदासी समाज : कुछ संस्मरण

(इस विशिष्ट खंड में देवदासियों या उनके परिवार अथवा समाज से संबंधित जितने भी संस्मरण दिये जा रहे हैं वे सब राजाराम पैंगीणकर की आत्मरचना—मी कोण (मैं कौन ?) से लिये गये हैं. राजाराम जी स्वयं भी एक देवदासी मां की संतान हैं और उन्होंने उस समाज के सुधार के लिए काफी काम किया है. उसी पुस्तक के कुछ अंशों का संक्षिप्त रूपांतर प्रस्तुत कर रही हैं श्रीमती चित्रा मुद्गल)

आजी का प्रेम

कुछ पुरानी यादें हैं. . .उस समय मैं दस-ग्यारह वर्ष का रहा होऊंगा. गांव में 'रामनवमी' की यात्रा थी. यात्रा में निकलने से पूर्व आजी ने मेरी हथेली पर पांच आने रख दिये तथा बोलीं—जो तुम्हें अच्छा लगे, वह खाना. मैंने पिताजी के द्वारा दिये हुए पैसे ही खर्च किये तथा आजी के पैसों से उनके लिए जलेबी ली. मुझे पता था उन्हें गर्म-गर्म जलेबी बहुत पसंद है. घर आ कर जब वह पुड़िया मैंने उनके हाथ में दी तब उनका गला भर आया, वह रोने लगीं. मैं आश्चर्य में पड़ गया. पूछा—अजी, क्या बात है? मुझसे कुछ गलती हो गयी है क्या?

वह बोलीं—बेटा, तुम्हें खर्च करने के लिए दिये हुए पैसों में से तुम स्वयं न खर्च कर मेरे लिए जलेबियां लाये हो. यह देख कर मेरा मन भर आया है. उन्होंने खींच कर मुझे अपनी छाती से भींच लिया. कितनी वात्सल्यमयी थीं वे. □

कुर्सी पर बैठने का अपमान!

सामाजिक आंदोलन शुरू हो जाने के बाद की घटना है. प्रसिद्ध दिवंगत गायिका देवदासी शामाबाई पैंगीणकर के घर मैं गया हुआ था. वहां पर कोई सारस्वत गृहस्थ पहले से ही कुर्सी पर विराजमान थे, कुछ बोल भी रहे थे. मुझे देख कर शामाबाई उठ खड़ी हुईं तथा अपनी कुर्सी उन्होंने मुझे बैठने के लिए खिसका दी. काफी देर तक बैठने के पश्चात मैं घर वापस आ गया. दूसरे दिन जब मैं शामाबाई के घर के सामने से गुजर रहा था तो उन्होंने आवाज दी. मैं गया. उन्होंने बताया, कल आप कुर्सी पर बैठे थे न!

—हां, तो क्या हुआ?

—यह उन आये हुए गृहस्थ को उचित न

लगा, उन्होंने अपने समक्ष आपके इस तरह बैठने से अपमान अनुभव किया . ऐसा उन्होंने ही बताया .

मैंने कहा—घर हमारा है. तुम हमारी हो, मैं भी घर की तरह ही हूं. कुर्सियां भी हमारी हैं, ऐसा समझ कर ही मैं कुर्सी पर बैठा था. उन सज्जन ने अपना अपमान महसूस किया, इसमें उनका दोष नहीं है. गलती हमारी स्वयं की है. इसीलिए मैं कहता हूं, लड़कों को शिक्षा दिलाओ तथा लड़कियों की शादी करो. हमेशा के ये पूर्वाग्रह तभी टूट सकेंगे और हम अपमानित न हो सकेंगे.

वे सुन कर हंस दीं. ☐

कैप्टन वेलोज से भेंट

शायद घटना १९१७ या १८ के मध्य की है, पुर्तगाली गृहस्थ कैप्टन वेलोज काणकोण के तत्कालीन शासक थे तथा राणे लोगों के दंगों के कारण उस समय मिलिटरी कायदा लागू था. एक दिन अब्बुल नामका एक सिपाही मुझसे मिलने आया. सारे घर में खलबली मच गयी. उसने समझाया, डरने की कोई वजह नहीं है. कैप्टन वेलोज से मैंने आपकी बड़ी प्रशंसा की है, अत: वे ब्राह्मणों से न मिल कर आपसे भेंट करना चाहते हैं.

मैंने उस सिपाही के साथ जा कर वेलोज साहब से भेंट की. उनकी पत्नी गोवा की होने की वजह से कोंकणी अच्छी तरह समझती थीं, उन्होंने मेरी बातों को पोर्तुगीज में अनूदित किया. गांव के विषय में उन्होंने संपूर्ण जानकारी प्राप्त करने के पश्चात कहा कि मैं एक पंच-कमेटी बनाना चाहता हूं. उसमें आप भी एक सदस्य होंगे. यह सुन कर मैंने उनसे विनती की कि वे मुझे उसमें शालि न करें. क्योंकि समस्त ब्राह्मण समाज हमें 'नीच' समझता है. आप सिर्फ इतना ही करें, पैंगीण में एक पोस्ट आफिस की अत्यंत आवश्कता है क्योंकि काणकोण पोस्ट से हमें पत्र प्राप्त होने में आठ-दस दिन लग जाते हैं. तथा शिवाय ग्राम में एक पोर्तुगीज भाषा का स्कूल खुल जाये तो हम लोगों को भाषा सीखने में बड़ी सुविधा होगी.

वे बोले—मैं कल ही पैंगीण आ रहा हूं. मैंने गांव के कुछ प्रमुख सारस्वतों को बुलवाया किंतु कोई आगे आने को तैयार ही नहीं था. उनके इस व्यवहार से वेलोज साहब अत्यंत दुखी हुए तथा उन्होंने कड़े शब्दों में उनकी भर्तसना की कि—पिछड़ा वर्ग पोस्ट ऑफिस तथा स्कूल की मांग कर रहा है ताकि वह कुछ सीख सके, आगे बढ़ सके किंतु आप लोग इन प्रयत्नों में अपना सहयोग तक नहीं दे रहे हैं, इस तरह आप लोग जीवन में कभी आगे नहीं बढ़ सकेंगे.

कुछ समयोपरांत उन्होंने पोस्ट ऑफिस खुलवा दिया. पत्र-पेटी, पोस्ट ऑफिस में मैंने दी थी और आज भी वह पैंगीण पोस्ट में सुरक्षित है. ☐

एक लड़की को तो रहने दीजिए...

एक दिन मैं पड़ोस के एक गांव में गया हुआ था. देवदासी समाज की ही एक बाया नाम की महिला ने मुझे आग्रह कर के भोजन के लिए रोक लिया. साथ में उनके भाई पोपू तथा एक अन्य यजमान भी थे. भोजन करते समय वे मेरे समक्ष आ कर बैठ गयीं. तथा बोलीं—राजाराम मामा, मैं आपसे एक बात पूछूं क्या?

मैंने कहा—पूछो.

उन्होंने कहा —आपने तो अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह कर दिया, अब तीसरी को तो घर में रहने दीजिए. आपको अब किसका सहारा है.

मैंने कहा—अभी तो वह छोटी है आगे देखा जायेगा.

वे बोलीं—अपनी लड़की को मैंने अपने कलेजे के टुकड़े की तरह पाला है, उसको ब्याह कर के किसी अजनबी के गले मढ़ दूं और भविष्य में कुछ अच्छा-बुरा हो गया तो वह अपनी आंखों से देखने की अपेक्षा यह स्थिति ही ठीक है. . . मैंने मन-ही-मन सोचा, इन महिला का विचार बदलते अभी समय लगेगा.

एक दिन मैं पैंगीण की एक दुकान में जो रास्ते के किनारे स्थित थी, बैठा हुआ था. इतने में काणकोण की बस मेरे समक्ष आ कर खड़ी हो गयी. अचानक मेरी दृष्टि 'बस' में बैठी हुई उन महिला पर पड़ी. वे अपनी पुत्री तथा उन्हीं यजमान के साथ बैठी हुई थीं. मुझ पर दृष्टि पड़ते ही वे प्रसन्न-सी नीचे उतर आयीं. गद-गद स्वर में बोलीं—राजाराम, मुझे क्षमा कर दो, आपके कहने के अनुसार मैंने लड़की की शादी पक्की कर दी है तथा 'काणकोण' में जा कर रजिस्ट्री सिव्हील कर आयी हूं. . .मेरी पुत्री को उसके सुखमय घर संसार के लिए आशीर्वाद दीजिए.

मेरी आंखें सहसा भर आयीं. उठ कर लड़की के माथे पर आशीष स्वरूप दोनों हाथ रख दिये. मन-ही-मन कहा—कालाय तस्मै नम: मेरी पुत्रियों की शादी की बात ले कर एक दिन उन्होंने मेरी आलेचना की थी. और भी बहुत से लोगों ने, आज वही लोग बेहिचक अपनी पुत्रियों की शादी धड़ाधड़ करने लगे हैं. यह उदाहरण है कि देवदासी समाज में नैतिक मूल्य बदले हैं. ऊंचे हुए हैं. . . ☐

आवडा

• प्र. श्री. नेरूरकर

देवदासी—नाम के लिए भगवान को अर्पित हो अंत में महज़ इनसान की भोगदासी बन कर रह जाती है. अपनी एक निष्ठा के बावजूद उसे किसी संभ्रांत पुरुष की दया, कृपा के सहारे महज़ जिंदा रहना होता है, वह भी समाज की नजरों से गिरी हुई रह कर ही. गोआ के कोंकणी समाज में देवदासी-जीवन के एक अनोखे पहलू पर सोचने को मजबूर कर देती है प्र. श्री. नेरूरकर की प्रस्तुत मराठी कहानी 'आवडा'.

अमा आवडा को पुकार-पुकार कर थक गयी. लेकिन देवताल पर मौलसिरी-तले अच्छे-खासे बड़े-से पत्थर को चुन कर कपड़े धोती आवडा के कान तक वह पुकार नहीं पहुंची. अपनी टोकरी से चिथड़े निकाल-निकाल कर वह कभी पत्थर पर उन्हें फटक-फटक फटकती, कभी मसल-मसल मसलती. घुटनों तक पांव पानी में छोड़े वह बैठी थी. बिखरे अस्तव्यस्त बालों का ढीला-ढाला जूड़ा गर्दन पर घिस-घिस जाता था. खूब लंबा, बेढंगा बदन बड़े ही बेढंगे तरीके से ऊपर-नीचे हो रहा था. मोटे, टेढ़े होंठ और टेढ़े हो आये थे. कानी, बड़ी आंख से कभी पानी में तो कभी टोकरी में टकटकी लगाती और कंधे से खिसक-खिसक जाने वाला पल्लू कभी वैसा ही छोड़ देती, तो कभी बड़ी बेतरतीबी से उसे दूर करती. छोटा माथा, चपटी नाक, छोटी चपटी ठुड्डी और लंबी गर्दन पर झूलता हुआ लंबा, काला घना केशसंभार!

आवडा जब तक दोपहरी को ताल पर पहुंचती, बाकी औरतें नहाने-धोने से निबट चुकी होतीं. दोपहरी अब झुकनेवाली होती. देवालय की बस्ती में सन्नाटा होता. लोग खा-पी चुके होते, इस समय देवालय के अंदर-बाहर की आवाज भी रुक गयी होती. शिवालय के पिछवाड़े में ही दाहिनी तरफ बंडू गुरव का घर, बाग था. बीच का एक गलियारा पार कर लें, तो बायीं तरफ अमा का घर. देवालय की बाहरी दीवार से सटा हुआ-सा. वहीं से पीछे घाडी की नहर तक देवालय की बस्ती फैली हुई थी. अमा देवदासी थी और घाडी वाली नहर से लेकर बड़े रास्ते के पीपल के चबूतरे तक और देवताल के किनारे पर बसे लाल रंग के सारे घर देवदासियों के थे.

अमा के घर से एक पगडंडी देवालय के पिछवाड़े तक आती. पीपल से निकलने वाली पगडंडी दक्षिण की तरफ से आकर नगाड़खाने पर पहुंचती. यह पगडंडी ताल के किनारे-किनारे होकर आती. वहां से देवालय की तरफ आने लगो तो दाहिनी तरफ खलनाथ, सातेरी, भैरव जैसे छोटे-छोटे देवताओं के छोटे-छोटे मंदिर. अमा अपने आंगन में खड़ी, कमर पर दोनों हाथ रखे चीखे जा रही थी—अरी ओ ऽऽ आवडा ऽऽऽ, आवडा री ऽऽ. . . दोहपर के भयावने सन्नाटे में, देवताल के अहाते में गूंजती हुई चीख आवडा तक फिर भी नहीं पहुंच पाती.

पर यह तो रोज-रोज की बात थी. देर-सबेर अमा आवडा को यूं ही चीख-चीख कर पुकारा करती. बस्ती के लोगों को अमा की इस आदत की इस कदर आदत पड़ गयी थी कि कभी उसकी चिल्लाहट सुनायी नहीं देती तो लोग पूछने आते. बात भी सही थी. अमा कभी बीमार हो जाती या गांव से बाहर कहीं चली जाती तो वहां एक अजीब-सा खालीपन लगने लगता. बिना अमा की पुकार के अहाता बदसूरत-सा हो जाता. घर-घर से बच्चों के लिए पुकारें सुनायी देतीं, पर उनकी अपनी एक सीमा होती. पुकार आते ही आते ही कहीं पर सुनी भी जाती. उसका जवाब मिलता और मामला वहीं खत्म हो जाता. लेकिन अमा और आवडा की तो बात ही निराली थी. आवडा चाहे ताल पर हो, चाहे पिछवाड़े गुरव के बाग में, अमा की पुकार वह न सुनती, न सुनती. पुकार जारी रहती और न सुनना भी जारी रहता. हर बार, हर दफे. फिर ऊब कर अमा चीखना बंद कर देती. दो चार भद्दी कोंकणी गालियां बककर चुप हो जाती. आवडा को भी कोसती, अपने को भी कोसती, और बस चुप हो जाती.

और आवडा है कि ताल पर अपने चिथड़े धोने में मगन! चारों तरफ, दूर तक उसके कपड़े फटकने की ध्वनि-प्रतिध्वनि गूंजती रहती. पानी में छोटी-सी मछलियां उसकी पिंडलियों को काटती रहतीं, पर अब तो उसे सहने की आदत भी आवडा को पड़ चली थी. बहुत ज्यादा ऊब जाती तो एक पैर निकाल कर पत्थर के किनारे रख लेती; फिर थोड़ी देर बाद उसे पानी में छोड़ दूसरा पैर ऊपर रख लेती, उस समय पानी में चबक्-चबक् आवाज निकलती, पानी में हलचल होती. पल भर के लिए सन्नाटे का भंग हो जाता! बस! पेड़ों पर पक्षी भी चुपचाप बैठे रहते. देवताल के बांध से होकर एक पगडंडी देवालय तक जाती थी और बांध के उस पर पार दूर-दूर तक हरेभरे खेत फैले थे. पगडंडी का दूसरा छोर चौपाल तक जा मिलता था. वहीं पर बाजार था. दो-तीन चाय—मिठाई के होटल, दो-तीन किराना की दूकानें, बच्चों का प्राइमरी स्कूल. वहीं पीपल का चबूतरा था और एस. टी. वहीं रुका करती थी. हनुमान का टूटा-पुराना मंदिर था. . . . और भी बहुत कुछ था. . . . टेलरिंग शॉप, पोस्ट आफिस था, चमारों के झोंपड़े थे, यहीं, रास्ते के दोनों तरफ 'गावती' औरतें मछली बेचने बैठी जातीं. शाम के समय लोग वहां आने-जाने लगते, चहल-पहल

होती. चौपाल पर काम खत्म करके लोग देवताल के बांध से होते हुए शिवालय जाते. घंटानाद होता. फिर देवालय की बस्ती भी काम में जट जाती. तब फिर ताल-वाले तत्थर पर शायद ही कोई कपड़े धोता नजर आता. लेकिन यह सारी चहल-पहल होती दोहपर के ढल जाने के बाद. भरी दोपहर में चौपाल पर कोई ताकने भी नहीं जाता. एक आवडा अकेली ताल पर झुक-झुक कर कपड़े धोती, रुक-रुक कर पत्थर पर कपड़े फट-कती रहती. फटके हुए कपड़े पानी में से निकाल कर निचोड़ कर टोकरी में रखती. कभी धोये-निचोड़े कपड़ों को अपनी ही धुन में दुबारा धो देती. और कपड़े धोना जारी ही रहता.

* *

कल-परसों तक आवडा घाघरा पहनती थी. घाघरे चोली में वह और भी अजीब लगती. जवानी का रंग चढ़ा, तब भी कभी तो उसकी जवानी बेढंगे तरीके से कपड़ों से बाहर अपने आपको उंडेलती-सी लगती तो कभी उसके कपड़े इस कदर बदन से चिपके रहते कि लगता उसकी जवानी को मुंह बना-बना के चिढ़ा रहे हों.



उसके शरीर में नाम के लिए भी कहीं होई सलीका न था. चलने लगती तो एक कदम इस तरफ पड़ता, दूसरा उस तरफ! लगता, दोनों पांवों से लंगड़ी खेल रही है, बांहें भी ऐसी ही बेढंगी! एक बांह छोटी लगती, दूसरी लंबी. तलुवे कलाई की तरफ मुड़े हुए-से विरूप! नाक चपटी और बड़ी-बड़ी गोलियों जैसी आंखें. गले की हड्डी बाहर झांकती हुई. हां, शरीर था पूरा सशक्त और भरा-भरा उरोभाग. पीठ में कूबड़ झांकता था, लंबाई आम औरतों से फुट पौन फुट ज्यादा ही थी. ताड़-सी लंबाई. एक मात्र धन था—— लंबे और घने काले केशकलाप का. गर्दन पर या तो बड़ा-सा जूड़ा झूलता रहता या तो ढीला बनकर पीठ पर फिसल-फिसल जाता. लेकिन खुद आवडा को तो किसी बात कोई दिलचस्पी न थी. उसके सिंगार में जो कुछ थोड़ा बहुत कहने भर को था, वह सब अमा की ही करतूत थी.

अमा आवडा को लेकर चिंतित रहती. अक्सर सोच कर रह जाती कि इस आवडा का क्या होगा? कहीं कोई आशा नहीं जगती थी. आवडा की तरफ न तो कभी किसी ने देखा था, न ही कोई देखेगा, ऐसा उसको विश्वास हो गया था. कोई देखे भी तो क्यों? आवडा अमा जैसी खूबसूरत थोड़े ही थी? खूबसूरती से वह कोसों दूर थी, लेकिन इसमें दोष न तो अमा का था, न ही आवडा का! जाने वह कैसा मनहूस क्षण था, जब अमा की कोख में आवडा ने जन्म लिया था. आवडा ने जन्म लिया और अमा के सरल-सीधे जीवन को झकझोर कर रख दिया. एक व्यंग्य पैदा हुआ. पास-पड़ोस की देवदासियों ने टोटका-टोना करके अमा की कोख में अंतिम बार इस बदसूरती को ला डाला था. अमा उनको फूटी आंखों नहीं सुहाती थी न. अमा उनके नाम पर सिर धुनती. शिवजी के पास भी अपनी शिकायत रखी थी अमा ने; शिवजी से अनुरोध किया था उसका अहित करनेवाले का सत्यानाश करने को.

अमा तो देवदासी थी. लेकिन वही अपने परिवार की अंतिम देवदासी भी तो होने जा रही थी. बड़ी लड़की सीतू, दूसरी गंगू और तीसरी आवडा. मुकुंद और भास्कर दो बेटे. एक आवडा को छोड़ सारे बच्चे खूबसूरत, बुद्धिमान, सशक्त. तीस सालों से अमा भगवान को साक्षी रख एक ही पुरुष के साथ निष्ठा एवं संयमपूर्वक रही थी. पूरी श्रद्धा के साथ!

★ ★

अमा को अनंत नाना ने रखा था. अनंत नाना ब्राम्हण थे. उनकी इसी बात को लेकर अमा सदा ही गौरव महसूस करती रहती. बस्ती की दूसरी देवदासियों की स्थिति पर सोचने लगती तो अपनी बात सोचकर खुशी से फूली न समाती. किसी देवदासी को किसी मराठे ने रखा था तो किसी का संबंध बनिये से था. एक दो ही देवदासियां ऐसी थीं, जिन्हें ब्राह्मणों का सहारा मिला था. अमा उन्हीं भाग्यवानों में से एक थी. नाना थे तब तक तो अमा को देखते ही बनता था. सुदृढ़, गोरे-गोरे कामदेव की सुंदरता और पौरुष धारण किये हुए नाना बूढ़े पिता विठोबा अण्णा के बाद गांव के कुलकर्णी बन गये थे. यही कुछ बीस-बाईस की उम्र रही होगी. गांव के स्कूल में ही सातवीं तक पढ़े थे, लिखावट बड़ी सुंदर थी, तालुके के सरकारी कामकाज के कागज पढ़ने तक के लिए बुलावा आता. शादी भी हो चुकी थी. गांव उनकी पत्नी को बड़े अदब से 'काकीबाय्' नाम से बुलाता. बड़े संपन्न, सुसंस्कृत जमींदार घराने में काकीबाय् पली थीं. ब्राह्मणों की बस्ती देवालय से बहुत दूर थी. घर क्या थे, बड़ी-बड़ी हवेलियां थीं. एक के ऊपर दूसरी मंजिल चढ़ी थी, चारों तरफ बाग. केले के बाग, नारियल के पेड़, सुपारी, पान के बेल, स्वर्णचंपा के पेड़. अन्ननस फल रहे थे. कुएं थे, कुओं पर रहट थे. हमामखाना था. संपन्नता, विफलता वहां पूरी सज-धज के साथ बैठी थी. नाना ने घर-गिरस्ती बड़े मन से संभाली थी. न कभी कोई झगड़ा, न फसाद.

बाराबंदी अंगरखा, कदमों तक झूलती हुई सफेद, महीन धोती, सिरपर पगड़ी, हाथ में वजनी लट्ठ, उन्हीं के एक असामी चमार के बनाये हुए मोटे-मोटे कर्र-कर्र बजने वाले जूते, गले के पास बाहर झांकता हुआ जनेऊ, लच्छेदार मूंछें, पहले के लाल हंसते होंठों पर घर के बनाये पान का चढ़ा हुआ लाल रंग. . . नाना देवालय में आते तो उनके रूप की प्रभा के सामने भगवान का रूप भी पलभर के लिए निष्प्रभ-सा लगता. भाऊ गुरव टकटकी बांध कर नाना की तरफ देखता रहता. नाना खिसियाने-से होकर उसे टोकते.

——क्यों रे? क्या देख रहा है?

——नहीं, जी नहीं, नाना. . . मैं तो बस देख रहा था यूं ही.

——क्या देख रहा था?

——आपका यह राजा का रूप. . .

——नजर लगा दोगे एक दिन. . .

——छिः . . . छिः! . . . . ऐसा कभी हुआ है साऽऽब! गुरव जिस किसी तरह बात को समेटता और फिर नाना की हथेली पर तीर्थ उंडेलने लगता.

धूप ढल चुकी थी. सांझ का रंग चढ़ने लगा था. लेटे-लेटे अमा आवडा की तरह देख रही थी. आवडा के लिए उसने भूनी हुई बांगडे की मछली और भात थाली में निकाल रखा था. लेटे-लेटे अमा सोच रही रही थी, यह आवडा आयेगी कब? खाना कब खायेगी? लगा फिर एक बार आंगन में जाकर उसे पुकारे. लेकिन इस कदर अपने आपको जलाने से फायदा ही क्या! आज तक कभी अमा की पुकार उसने सुनी है, जो आज सुन पायेगी? यह सब जानते हुए भी अमा चीख-चीख कर पुकारती. उसका यह पुकारना दरअसल आवडा के लिए नहीं था. यह उसी का अपना अपने लिए वत्सल आक्रंदन था. कई बार ऐसा भी होता कि आवडा अमा की बगल में खड़ी होती और अमा पुकार रही होती——आवडा रीऽऽ, अरी ओऽऽ आवडागरऽऽ!

आखिरकार आवडा ने सारे कपड़े धो लिये, निचोड़ लिये, टोकरी में भर लिये, लेकिन सीधा रास्ता पकड़ने की आदत उसकी न थी. रास्ते पर पहला मंदिर पड़ता

ा खलनाथ का. पहले तो वह वहां गयी. खलनाथ को ाथ जोड़कर होंठों ही होंठों में कुछ फुसफुसायी. . . जाने या मांगती थी खलनाथ के द्वार पर! फिर सातेरी के ंदिर गयी. फिर बैताल, ब्रह्मनाथ. . . और अंत में शिवजी के मंदिर में उसने कदम रखा.

पिछवाड़े से जब आवडा घर में घुसी, तब अमा झपकी रही थी. आवडा के पेट में चूहे दौड़ रहे थे. धोये हुए कपड़ों की टोकरी एक ओर रख कर वह चूल्हे के पास यी. थाली पर रखी थाली हटायी और जल्दी-जल्दी भात खाने लगी. घर में कोई था नहीं. मुकुंद कहीं मृदंग बजाने चला गया था. भास्कर चौपाल पर अपनी पान-बीड़ी की दूकान सजा कर बैठा करता था; वहीं था. पास-पड़ोस के बच्चे स्कूल में थे और आवडा मचक्-मचक् करती हुई भात का भूसा पेट में भर रही थी. लोटा मुंह को लगाकर उसने गटक्-गटक् पानी पिया और सट से लोटा जमीन पर रखा. रखते समय वह पीतल की थाली से टकराया, टकराहट की आवाज से अमा की नींद खुली. आवाज से ही पहचान गयी कि आवडा चूल्हे के पास है.

—आवडा ऽ . . . .

—क्या है अमा? . . . घर में आते ही आवडा अमा की पुकार का जवाब तत्परता से देती.

—आ गयी?

—हां.

—कितनी देर तेरे को पुकारती रही.

—काहे को?

—ताल पे अकेली गयी थी तू.

—तो ?

—तो क्या ?

—डूब कर मर तो नहीं जाऊंगी.

—अच्छा? . . .

—मेरी चिंता तुम मत करो अमा. . . . अमा बोलने लगती तो हर बात पर आवडा का जवाब तैयार रहता.

अमा ऊब कर कहती—जाने क्या होगा तेरा!

—मेरा खलनाथ जो है.

—वह क्या करेगा?

—कुछ भी. . . .

इस पर अमा की जबान बंद हो जाती. आवडा टोकरी से कपड़े निकाल-निकाल कर, दुबारा निचोड़ कर आंगन में सूखने के लिए डाल देती. किरणें छिप गयी होतीं. देवालय और देवालय की बस्ती में लोगों की आवाजाही शुरू हो जाती. बस्ती बोलने लगती. घंटानाद होने लगता. शहनाई-वादक किशा अपनी शहनाई साफ करते-करते धीरे-धीरे फूंकने लगता और बेसुरी ध्वनि गूंजती रहती. पत्ते-पत्ते, बूटे-बूटे पर पंखी चहचहाने लग जाते. देवालय बस्ती में कहीं कोई मृदंग पर थाप देता, कोई शहनाई-सींग बजाता, कोई तबले पर हाथ चलाता. भजन शुरू हो जाता.

शाम हो आती तो अमा प्रदक्षिणा के लिए निकलती. पिछवाड़े से वह देवालय में कदम रखती, वहीं चबूतरे पर सफेदपोश औरतें बैठा करतीं. वहीं कुछ देवदासियां थीं, उन्हीं में बैठ जातीं. गर्भागार में गुरव के हाथों पूजा-पुजापा करवाकर अमा आगे सभागार से होती हुई अहाते में आती और उसकी प्रदक्षिणा शुरू होती.

अनंता नाना एकाएक ही गुजर गये थे. विषबाधा जैसी कोई छोटी-मोटी वजह से. तब से अमा ने माथे का टीका पोंछ डाला था. काकीबाय् और अमा— दोनों एक साथ ही विधवा हो गयी थीं. अमा को याद आया, अमा का टीका पोंछने कोई सुहागिन नहीं आयी थी. अमा ने खुद अपने ही हाथों अपना सुहाग-चिह्न मिटा दिया था. सबसे बड़ी सीतू नाना की छत्रछाया में ही बड़ी हुई थी. मुकुंद पला था, गंगू जवान हुई थी, आवडा भी पल रही थी. अनंत नाना के कहने से अमा ने बच्चों को स्कूल में दाखिल करा दिया था. सीतू सातवीं तक पढ़ी थी, गंगू ने भी सातवीं पास कर ली. मुकुंद और भास्कर नहीं पढ़ पाये. मुकुंद मृदंग की ताल में ही मगन हो जाता. दो-तीन साल पढ़ाई कर लेने के बाद भास्कर ने पानबीड़ी का धंधा शुरू किया. अनंत नाना अक्सर अमा से कहा करते.

—बेटियां तो मेरी हैं, बेटे तुझ पर गये हैं.

—आप ठीक कहते हैं. . . अमा अदब से कहती और हंसकर रह जाती. वह तो इसी में अपने आपको धन्य समझ लेती कि उसके यह बच्चे नाना की औलाद हैं. सीतू गोरी थी, सुंदर थी. उसका ब्याह हो गया. उसी तरह गंगू की शादी भी मांग कर हुई थी. नाना खुद दोनों शादियों में मौजूद थे. यही नहीं, काकीबाय् भी पहुंच गयी थीं बेटियों को आशीर्वाद देने. पढ़े-लिखे पति मिले थे. पूना-बंबई में सरकारी नौकर थे.

—नाना, अब तो आवडा ही रह गयी. . . अमा लाड़ से कहती.

—वह भी ठिकाने लग जायेगी. . . . नाना यकीन के साथ कहते.

—हूं! यूं ही कह रहे हो. . . अमा कहती.

—तब तक मैं बचा रहा तो. . . नाना सहसा गंभीर होकर कहते. . . . और सचमुच नाना कुछ करें, इससे पहले ही चल बसे.

उनको इस तरह नहीं जाना चाहिए था. इतनी जल्दी, अचानक. . . अमा सोचती रहती. अपने आपसे कहती रहती. काश, बेटे पढ़-लिख लेते! अभी उनके ब्याह होने हैं. अमा तो बहू देखने के लिए कितनी उत्सुक है.

★ ★

प्रदक्षिणा समाप्त हो जाती तो अमा के कदम बैताल मंदिर के पीछेवाले ब्राह्मणों के घरों की तरफ मुड़ते. वहां वामन पुजारी का रुतबा बड़ा था. अच्छा-खासा बड़ा-सा घर. दो-दो ब्याहताएं. पहली पत्नी से कोई बच्चा नहीं हुआ इसलिए दूसरी शादी की. दूसरी के

एक के बाद एक बच्चे पैदा होते रहे. उम्र तो वामन की वही थी जो अमा की थी पर अभी उसके घर में पालना झूल रहा था. चौदह-पंद्रह बच्चों में आठ-दस तो लड़कियां ही थीं. बाप की तरह कुछ-कुछ गोरी, मां की तरह कुछ-कुछ काली. सुख-समृद्धि में पलती हुईं. इसके अलावा वामन ने दो देवदासियां रखी थीं, उनके बच्चे थे. इससे गांव के आवारा, गुंडागर्दी करने वालों को मजाक के लिए अच्छा-खासा लक्ष्य मिल गया था. शाम के समय देवालय के पास मिलकर वे मखौल उड़ाकर हंसते रहते, शर्तें बदते रहते. शाम को जवान लड़कियों के झुंड भी देवालय में आते रहते; उनमें वामन की कुछ जायज, कुछ नाजायज बेटियां हुआ करतीं. उस भीड़ में वामन की संतति को खोज निकालने की शर्तें लगतीं. लेकिन वामन को इस बात का रंज कभी रहा नहीं. सबसे बड़ा लड़का वासू. वासू अब जवान हो चला था. हर कक्षा में दो-दो साल करते-करते सातवीं तक पहुंच गया और वहीं फंसकर रह गया. वामन पुजारी उसे पुजारी बनाने में लगे थे, पर यह है कि सारा समय जुआ अड्डे पर ही गुजार आता. जुआरी उनकी तारीफ किया करते—वासू, चाहे जो हो, तुम तो वामन की असली नस्ल हो. उसकी बहनों की छेड़खानी होती तो वासू उसमें भी बेशर्मी से शामिल होता. कहता— वे ही बस मेरी असली बहनें हैं. बाकी तो. . . और हंसी-ठट्ठे फव्वारे फूटते रहते.

अमा वामन पुजारी के यहां भविष्य-ज्योतिष पूछने जाती. शगुन पूछने जाती, तावीज बंधवाने जाती. वामन पुजारी का असली धंधा यही था. काला सांवला भारी-भरकम शरीर, निकली हुई तोंद, गले में जनेऊ और मैली-कुचैली धोती—'हरि ओम् हरि ओम्' जाप करते हुए वामन पंचांग की राशि लेकर बैठ जाता. एक तरफ एक चौकोर कुंड में भभूत जमा कर रहता. दूसरी तरफ काठ की संदूक में तरह-तरह के तावीज. टोटके निशानों से भरा माथा और सिर पर बीचोंबीच गांठ देकर खड़ी की गयी चुटिया— वामन पुजारी किसी भयावह, रहस्यमय शैतान के दूत-से लगते. जब देखो गांव के दस-पंद्रह आदमी उनके सामने बैठे पाये जाते. चमार, कुम्हार, धेड़, सफेदपोश, देवदासी, ईसाई, मुस्लिम— सभी वहां आते. दो-चार आने से लेकर रुपये तक की फीस होती. बस्ती के बाकी ब्राह्मण तो अपना-अपना पुजापा देखते, भगवान संभालते, खेती-बाड़ी करते. उनके बच्चे स्कूलों में पढ़ते— जिस किसी तरह जी लेते. उन्हें वामन पुजारी से ईर्ष्या होती. लेकिन वामन को किसकी परवाह थी? उसकी आमदनी तो दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही थी.

* *

अमा वामन पुजारी के घर पहुंची तो शाम ढल चुकी थी. लोगबाग जा चुके थे. वामन पुजारी अपने काम को निपटा कर आराम फरमा रहे थे, कमरे में चक्कर लगाते-लगाते राम-रक्षा का पाठ कर रहे थे. कभी-कभार बच्चों को पुकार रहे थे. चरवाहे को डांट रहे थे. अमा देवदासी को इस समय देखकर वह दंग रह गये. पर पल भर के लिए ही क्योंकि अमा की आने की तो यही आदत थी. वे जानते थे.

—क्या काम है? उन्होंने रोब भरे सुर में पूछा.

—यूं ही जरा. . .

—बैठो.

अमा वहीं बैठी रही. मन में ढेर सारे सवाल उमड़ रहे थे. कितने सवाल पूछ पायेगी, कितनों के जवाब वामन पुजारी दे पायेंगे. बड़ी उलझन थी. सांझ की बेला भी मन को कैसा तो मसोस रही थी. आखिरकार वह उठ गयी. बोली—कुछ नहीं पुजारीजी. . . मैं तो आपको देखने भर को आयी थी.

—क्या मतलब?. . .

—अच्छे तो हो?. . .

—मैं क्या मर रहा हूं? फिर वही रोबीली आवाज.

—सोचती हूं, कभी जाऊंगी दोपहरी में. . .

—अच्छा-अच्छा! . . .और पुजारी जी ने जोर-जोर से राम-रक्षा का पाठ शुरू कर दिया. अमा फिर फूंक-फूंक कर कदम रखती हुई देवालय और अपनी बस्ती की तरफ बढ़ चली. आवडा का भविष्य वह पूछने जा रही थी. . . पर होंठों की बात फिर वैसी की वैसी निगल कर लौट पड़ी थी.

नाम था आवडा— 'सबको अच्छी लगनेवाली.' पर देखा जाय तो आवडा सब की 'नावडा' थी— किसी को अच्छी न लगनेवाली. लेकिन अमा की बात ही दूसरी थी. आवडा उसने अपनी कोख से जनी थी. अनंत नाना की वह अंतिम स्मृति थी, धरोहर थी. . . और वैसे देखा जाय तो आवडा निरी अनाड़ी भी तो न थी. दिमाग ठीक था. आवडा समझदार थी, लोगों के स्वभाव से बेखबर भी न थी. वह सब कुछ महसूस कर सकती थी, सब कुछ समझ सकती थी. कैसे बोलना चाहिए, कैसे चलना चाहिए इसलिए इसकी समझ भी उसे थी. बचपन से ही उसके शारीरिक व्यंग्य को लेकर आसपास उसका मखौल उड़ाया जाता. बच्चे-बूढ़े सभी मखौल उड़ाते. अमा से जलनेवाली कुछ देवदासियां तो यहां तक कहतीं कि अमा की आवडा अनंत नाना से हुई ही नहीं थी; और अमा चाहे अनंत नाना के मर जाने के बाद विधवा का स्वांग रचे, पर इससे बात छिपनेवाली नहीं थी. कई बार आवडा से पूछा जाता— आवडा, तुम्हारा बाप कौन है? और फिर एक सड़ा-सा ठहाका लगता. फिर दूसरा सवाल, आवडा, ब्याह कब कर रही हो? एक गलीज फेहरिस्त बनायी जाती अमा के दूल्हों की, लूला गजावतारी, पागल कुबड़ा जन्या सुतार, लार टपकाते हुए नंगा गांव भर में चक्कर काटता फिरनेवाला गूंगा. . . और आवडा सब चुपचाप सुन लेती. आंखों से सब कुछ समेट लेती. घर में दोनों भाई भी उससे अच्छा बर्ताव नहीं करते. कई बार मुकुंद ने उसे छड़ी से पीटा था. उसका बनाया खाना घर में नहीं चलता. अमा ही को रसोई बनानी पड़ती.

मुकुंद आजकल वासू भट की 'कंपनी' में शामिल हो गया था और वासू के साथ और भी कई आवारा दोस्त

लोग अमा के घर पर ही बैठक लगा कर बैठने लगे थे. आवडा को सामने आने की मनाही थी, वह पिछवाड़े वाली, मुर्गियों-कुत्तोंवाली अंधियारी कोठी में पड़ी रहती. वहीं अपना बिस्तर लगा देती. एक फटी दरी, कंबल, फटी-पुरानी आवडा की ही साड़ी के चिथड़े! मुकुंद उसे अक्सर चुड़ैल कह कर बुलाता. उसको लेकर अमा को भी जली-कटी सुनाता रहता. आवड़ा से कहता— मर क्यों नहीं जाती चुड़ैल?. . .ताल में जाकर डूब क्यों नहीं मरती?. . . . मर जायेगी तब कहीं चैन की सांस ले पायेंगे हम लोग. ऐसे अमानुष बोल उसके मुंह से निकलने लगते तो आवडा बेचारी चुपचाप अपनी कोठी में जा बैठती. कभी जब लगता कि अब मार पड़नेवाली है, वह मन से, शरीर से भी इसके लिए तैयार रहती. अमा को भी जबान बंद रख कर यह सारा दर्द सहना पड़ता. मुकुंद को लगता, आवडा की ही वजह से उसकी शादी नहीं हो पा रही है. इसीलिए जैसे मुकुंद घर में घुसता, आवडा चुपके से बाहर निकल जाती, बस्ती में घूमती-घामती समय काटती रहती. घर की इस मर्म-यंत्रणा से तो बेहतर था लोगों द्वारा उड़ाये गये मखौल को बरदाश्त कर लेना.

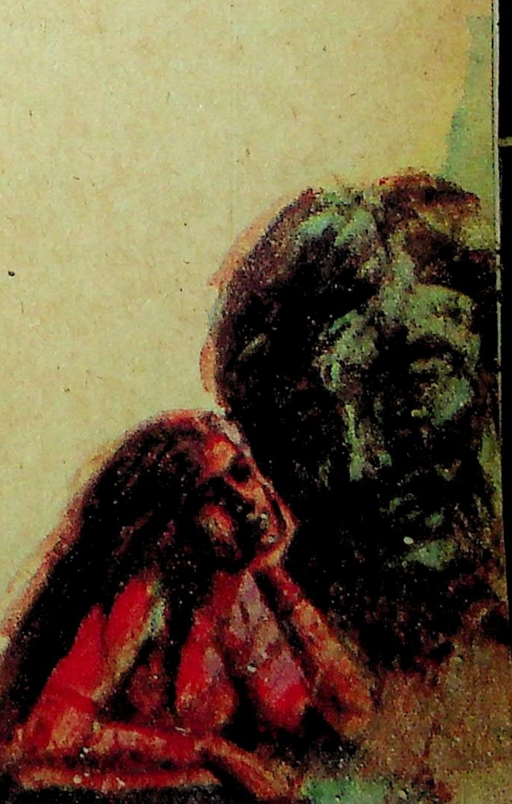
छोटी थी तभी से वह अमा के साथ-साथ भगवान की सेवा में जाती. झाड़ना, बुहारना, बत्ती जलाना, कालीन बिछाना, पालकी के पीछे-पीछे चलना, खलनाथ, बैताल, गावडोबा, सातेरी जैसे छोटे-छोटे मंदिरों को गोबर से लीपा-पोती करना. त्योहार पर, मेले के अवसर पर सराय को लीप-पोत कर साफ रखना, पानी भरना, छोटे-बड़े भक्तगणों की सेवा करना, उनके बर्तन मांजना, कपड़े धोना, मंदिर-मंदिर घुमा लाना, उनके लिए बाजार से चीजें ले आना. . . अमा भी अपने काम आवडा को सौंप देती. कई बार आवडा को वामन पुजारी के यहां जाना पड़ता. वामन पुजारी उसकी तरफ भूखी निगाहों से ताकता रहता. छोटे काम के लिए भी देर तक उसे उलझाये रहता.

* *

शाम का धुंधलका हो चला था. नगाड़ा बज रहा था. आवडा ने बैताल के मंदिर में ज्योत जलायी और अमा के किसी काम से वह वामन पुजारी की तरफ जाने लगी. . . घुप्प अंधेरा तेजी से उतर रहा था. किर्र-किर्र शुरू हुई. ऐसे समय पैरोंतले सांप-नाग के आ जाने का भी कितना डर रहता है. पर आवडा आदतन, अपनी ही धुन में निडर बनी चली जा रही थी. मन ही मन सोच रही थी, अपन तो ठहरे देवदासी की लौंडिया. हल्की जात. सूरत से तो और भी गयी बीती; और वामन पुजारी, वह तो ठहरे ब्राह्मण, सबसे ऊंची जात के. लोग कितना मानते हैं ब्राह्मण को, वे शुद्ध होते हैं. उनके घर जा रही हूं, कहीं कोई भ्रष्टाकार न होने पाये. अदब से रहना चाहिए, कहीं किसी चीज को छूना भी नहीं चाहिए. वह अशुद्ध हो गया तो. . . और फिर वामन पुजारी तो ठहरे मांत्रिक. भगवान से नाता उनका, वह तो दूसरे के मन की बात जान लेते हैं. होनी को जानते हैं, भूत-प्रेत को वश में रखते हैं, वह तो किसी भगवान से कम नहीं. भगवान का आदमी. अपने राम ले देकर देवदासी. . . . हमें तो दासी बनकर ही रहना होता है. अमा भी जिंदगी-भर दासी बनकर रही. अमा भगवान की दासी और वामन पुजारी भगवान का मालिक. उसके साथ बात भी बड़े अदब से, झुक कर करनी चाहिए. उसका गुस्सा बड़ा बुरा है. और गुस्सैल भी तो बड़ा है वह . . . ठीक वैसा, जैसा वह वालावलकर वाली कृष्णजन्म की झांकी में विश्वामित्र को देखा था एक बार. . . ठीक वैसा ही . . . कभी आवडा के दिल में इच्छा उभड़ती रहती, अपना भविष्य पूछ ही लें, वामन पुजारी से. . . .

अपनी ही धुन में मगन अपनी लंगड़ाती चाल से आवडा भूत-प्रेत की तरह चली जा रही थी. घुप्प अंधेरे में इस प्रकार कोई उसे अचानक सामने पाता तो वह डर के मारे जरूर बेहोश हो गिरता. . . लेकिन देवालय की बस्ती में आवडा की आदत से सभी लोग अच्छी तरह वाकिफ थे. . . और आवडा का वह काला घना केशसंभार, उस अंधेरे में भी झूल-झूल अपनी हस्ती का एहसास करा रहा था.

आवडा पुजारी के घर के पास आ गयी तो उसने अपने आप को जरा संभाला. पहले तो वह पिछवाड़े में जानेवाली थी, पुजारिन को पुकारने वाली थी पर पुजारीजी से मिलती. अमा ने पुजारीजी से तावीज मांगा था. तावीज वह अपने नातियों के लिए पूना-बंबई भेजनेवाली थी. घर के नजदीक ही कोने में विशालकाय पीपल सर सरा रहा था. पीपल के चारों ओर पेड़ों-झंखाड़ों ने घना जंगल-सा बना दिया था. उस तरफ निचले बाजू से घाडी बस्ती की तरफ नहर बहती चली जा रही थी. किसी किसान का बनाया कोठीनुमा टूटा हुआ झोपड़ा भी खड़ा



था. घास का छप्पर था. चारों ओर सुनसान. रात के समय तो उस तरफ कोई झांकता तक न था. जरा उस तरफ को देवालय बस्ती का श्मशान बेढंगी शांति से लिपट कर काली-कलूटी भीषणता उगल रहा था. आवडा अभी अहाते में पैर रखने ही वाली थी कि. . . किसी की गर्म सांस आवडा को अपनी गर्दन पर महसूस हुई. . . उसकी स्थूल, सुस्त कल्पना फिर भी सोयी रही. . . दूसरे ही क्षण किसी ने उसकी बगल में हाथ डाल उसे पीछे की तरफ खींचा. वह खड़ी नहीं रह पायी, न ही चिल्ला पायी. मुंह पर कोई बलिष्ठ पंजा पड़ा था . उसकी तोतली जबान को उसने बंद रखा.

—क. . . क. . . क. . . कौ. . ऽ ऽ न ? बस इतना ही बोल पायी आवडा.

—बाद में पता चलेगा. चल. . .

—क. . . क. . . कहां?. . .

—मैं जहां ले जाऊं. . .

—क. . . क. . . क्यों?. . .

अभी पता चलता है. . .

उसके जूड़े को पकड़कर घसीट-घसीट कर पीपल के पास से होते हुए वासू भट उसे उस टूटी कोठीनुमा झोंपड़ी में लाया. अंधेरा घुप्प था. वह कराहती रही. अपने बाप ही की तरह वासू भट काला-कलूटा था. काले कारनामों में उसी की तरह माहिर. अपने तगड़े शरीर की एक ही ठोकर में उसने झोपड़ी का दरवाजा तोड़-मरोड़ कर खोल दिया और आवडा को अंदर धकेल दिया. आवडा तो सन्न रह गयी. सिर कहीं जा टकराया. झनझनाहट-सी हुई. बाहरी रूप से अभागिन का हर दुख-दर्द वह झेल रही थी, झेल चुकी थी. उपहास के बोल, शारीरिक यंत्रणा—मारपीट. अब की बार का यह दर्द कुछ अजीब था. उस संवेदनाहीन स्थिति में भी उसके अंदर कोई अबोध बोध-सा जगा. फिर संवेदना तीव्र होती गयी. . . वह समझ गयी. . . लेकिन यह आदमी कौन था? . . . वह तो देवदासी थी. उसे भोगने की इच्छा थी, तो पहला अधिकार तो भगवान खलनाथ का था. सबसे पहले वह भगवान की थी. उसके बाद इनसान की. लेकिन यह भोग. . . यह किसलिए. . . क्यों. . . आखिर यह किसकी वासना इस-कदर अंधी हो गयी थी? . . . इतनी लंगड़ी हो गयी थी? . . . इतनी लूली हो गयी थी. . . किसकी. . . कौन . . .कैसे कहां. . . क्यों. . . कुछ समझ नहीं आ रहा था. समझ कर भी नहीं समझ पा रही थी. जिस्मानी दर्द और तेज हुआ. कहीं कोई उसके शरीर से आ टकराया. चिपक गया, खेलने लगा, और दर्द, दर्द, दर्द — वेदना की संवेदना, एक के बाद दूसरी, एक से तेज दूसरी. कुछ अजीब-सा लग रहा था. सारा बदन निचोड़ा जा रहा था. वेदना की हजारों-लाखों निठुर सुइयां एकबारगी उसके शरीर में घुसी जा रही थीं रह-रह कर! फटे-पुराने, गंदे कपड़ों को कोई फाड़-झाड़ कर और चिथड़े बना रहा था. होंठों को काट रहा था. न ही वह बोल पा रही थी, न ही कोई उससे बोल रहा था.. . . एक राक्षसी, तगड़ा, उतावला, अमानुष हाथ बार-बार उसके अंगों पर फिसल रहा था. मसल रहा था. बाल खींच रहा था. . . और घुप्प अंधेरा आंखें मूंदकर देख रहा था. उसकी साक्षी में कोई अप[illegible] काम किये जा रहा था. काल मानो रुक गया था. . और फिर सब कुछ रुक गया. आवडा खड़ी नहीं हो [illegible] रही थी. न ही बैठ पा रही थी. न तो समझ पा रही थी [illegible] हुआ क्या ? . . . उसके अस्त-व्यस्त कपड़ों को अब को[illegible] हाथ ठीकठाक कर रहा था. कोई अपने कपड़े ठीकठाक कर रहा था.

—आवडा. . . कोई एक भारी-सी, मोटी-सी आवाज आयी.

—हूं. . . हुं. . . आवडा महज कराह पायी.

—आवडा. . . उठो. . .

—क. . . क. . . कांपती हुई आवडा की आवाज महज इतना ही बोल पायी.

—आवडा. . . उसने उसे जूड़े से पकड़ कर खड़ा कर दिया. आंखें फाड़-फाड़ कर कोशिश करने के बावजूद आवडा को कुछ नहीं दिख रहा था. कोई पहचानने में नहीं आ रहा था.

—मैं. . . मैं वासू भट. . .

—क. . . क. . . क्या ऽ ऽ ?

—मैं वासू भट . . .

—भट. . . आप. . . ? अचरज में भरी अब की बार वह बोल पायी.

—हां . . . मैं. . . वासू भट. . .

—यह क्या कर दिया?

—ठीक किया. . . मजा आया. . .

—भट. . .

—क्या ?. . .

—मैं अब घर कैसे जाऊं?

—जैसे आयी थी. . .

—क. . . क. . . कैसे?

—आवडा. . .

—क्या है?

—सुन लो, ध्यान से. आज से तुम मेरी देवदासी हो.

—देवदासी. . . ?

—हां. . . देवदासी. . . वासू भट की देवदासी. . . मेरी. . .

—लोग हंसेंगे आप पर!

—दांत तोड़ दूंगा उनके.

—मुझ पर भी हंसेंगे.

—कह तो रहा हूं, दांत तोड़ के रख दूंगा.

—मैं. . . मैं. . . आवडा हूं. . .

—मैं जानता हूं. . .

—भूल से आपने. . .

—भूल से नहीं, जानबूझकर. . .

—लेकिन . . .

—क्या है. . . ?

—देवदासी तो. . . भगवान को साक्षी रख कर रखते हैं.

—सब कुछ करूंगा मैं. . . चलो. . .

—कैसे जाऊं. . .!?

—मैं कहता हूं निकल जाओ, चली जाओ. और सुनो,

...तुम्हारे घर नहीं आऊंगा... कल रात को खलनाथ के मंदिर में इंतजार करूंगा...

--मं... दि... र.. में...

--हां ... वहीं आओ.

फिर कोई किसी से नहीं बोला. जूते चटखाता हुआ वासू झट घर की तरफ चल पड़ा. उसकी नस नस में मस्ती खेल रही थी. खून उबल रहा था. 'जितं मया' की मस्ती में झूमता हुआ वह दानवी ब्रह्मपुरुष चल रहा था. मंदिर में लोग जाग रहे थे. छोटी-बड़ी घंटियां एक साथ अलग अलग सुरों की मिठास में गूंज रही थीं. भैरव गीत गा रही थीं. रात काफी हो चली थी. देवालय-बसरी में खाना वाना हो गया था, बत्तियां बुझ चली थीं. देवताल के बांध से गुजरने वालों के कदमों की आहट आ रही थी, उनके हाथों में झूलती लालटेनों की हलकी किटपिट सुनायी दे रही थीं. लट्ठ के जमीन पर मारने की आवाजें आ रही थीं. मौलसिरी तले पत्थर खाली खाली-सा-पड़ा हुआ ताल की प्रसन्न शांति का साथ दे रहा था. अम्मा बेचारी, अकेली जाग रही थी. आंगन में आ आ कर चीख रही थी...

--आवडा री ऽऽ, अरी ओ आवडा ऽऽ...

आवडा का एक एक कदम मनों का बोझ ढोता हुआ गलियारे के कंकड़-पत्थरों से अंधी टक्करें खा रहा था. धूल में घिसट-घिसट रहा था... □□□

(अनुवाद : रेखा देशपांडे)

१३ फुलरानी, साहित्य सहवास, बांद्रा (पूर्व), बंबई-५१

देवदासी समाज : कुछ संस्मरण

भिमाबाई

६ जून के 'राष्ट्रमत' में एक जिज्ञासु गृहस्थ ने 'तुम्हारी यह साथिन भिमाबाई कौन है,' के विषय में पूछा है... बचपन से ही हम दोनों एक दूसरे के हमजोली थे, एक दूसरे के बिना शायद रह नहीं सकते थे ऐसे ही काफी अरसा व्यतीत हो गया. चौदह वर्ष में मेरी शादी हो गयी. शादी में भिमा भी थी यह मुझे अच्छी तरह याद है. उस समय तक शादी क्या चीज है, वेश्या व्यवसाय अच्छा है या बुरा, इसकी समझ मुझे नहीं थी. मेरा तथा भिमा का प्रेम दिन प्रतिदिन गहरा होता चला गया, उसका परिणाम वही हुआ जो होता है.

...भिमा जब अपनी उम्र के उभरते हुए मोड़ पर आयी, उसकी मां ने उसे वेश्या के धंधे पर लगा दिया. अच्छे कपड़े तथा आभूषणों की लालच दे कर मां ने उसे उकसाया किंतु जब भिमा को यथार्थ अनुभव हुआ तब उसका मन उचट गया. उसके मन को ढाढस मेरे सामीप्य में था किंतु ऐसे समय में गायिका चंद्रा बाई के साथ तबले की संगत हेतु पूना चला गया था...

एक वर्ष पश्चात् जब मैं घर लौटा, मैं सबसे पहले उससे मिलने गया. वह हर्ष-विभोर हो उठी. बोली--मुझे छोड़ कर अब तुम कभी कहीं मत जाना. भिमा के पास मेरे बढ़ते हुए आने-जाने को देख कर मेरी आजी ने मुझे टोका--अब तुम्हारी शादी हो गयी है, ध्यान रखना.

...मैंने जब यह बात भिमा को बताई, उसे अत्यंत बुरा लगा, वह बोली--मुझे कहीं कुछ सीखने के लिए रख दो मैं अब यहां एक क्षण भी नहीं रह सकती, और वह फफक कर रो पड़ी. एक दिन किसी बात पर उसका अपनी मां के साथ झगड़ा हो गया और वह बिना बताये 'येसो' नाम के अपने पड़ोसी को ले कर अकोला चली गयी फिर मेरे आग्रहवश वापस आ गयी किंतु उसका मन अत्यंत अनमना हो उठा था. उसके पिता 'शाबा प्रभु' ने उसे स्वामी इंदिरा कांत के विषय में अनेक घटनाएं सुनायीं, जिससे प्रभावित हो वह उनके मठ में भेंट करने गयी. स्वामी जी औरतों से कभी भेंट नहीं करते थे किंतु भिमा को उन्होंने स्वयं का चित्र भी दिया तथा आशीर्वाद भी. सारे लोग आंखों में अश्रु लिये अचंभित थे, स्वामी जी जसे व्रतस्थ ब्रह्मचारी अपने हाथों से अपना ही चित्र एक वेश्या को दे रहे हैं. गांव में दूसरे दिन चर्चा थी 'राम ने शबरी के बेर खाये थे'. ऐसे ही ...

इसी तरह अनेक दिन निकल गये. पणजी में भिमा शिक्षा लेने गयी. एक वर्ष तक उसकी पढ़ाई अच्छी चलती रही. इसी बीच उसके साथ वहां बहुत ही गलत व्यवहार हुआ, भिमा छोड़ कर वापस चली आयी. मैं स्वयं को भिमा के लिए अपराधी महसूस कर रहा था, मैंने उससे 'गंधर्व विवाह' का प्रस्ताव रखा. वह बोली--तुम वेश्या व्यवसाय खतम करने के आंदोलन से जूझ रहे हो, सारे लोग कहेंगे इसने तो खुद वेश्या से विवाह किया है...

और अंत में हम लोगों ने शादी कर के अपने बचपन के प्रेम को सामाजिक मर्यादा भी दे दी. घर में सब जानते थे, किसी ने विरोध नहीं किया. मेरी पहली पत्नी शांत-सौम्य थी, वह परिवार देखती थी, भिमा मेरी जीवनपर्यंत सच्ची सहचरी थी... भिमा अत्यंत कुशाग्र बुद्धि, कर्त्तव्य परायण तथा दानशीला थी... यही थी मेरी भिमा! □□□



कालाय तस्मै नम :

जीवन में देवदासी पुत्र होने का अपमान कभी-कभी अत्यंत घृणित रूप में भोगना पड़ा है. सामाजिक उपेक्षा ने मेरे संपूर्ण अंतरतम को हिला कर रख दिया था, ऐसी ही एक अपमान जनक घटना मैं आपको बताने जा रहा हूं—किसी कार्यवश मैं काणकोण की मामलतदार कचहरी में गया हुआ था, बाहर कुछ बेंचें पड़ी हुई थीं जो कचहरी में आने-जाने वाले लोगों के बैठने के लिए थीं. उन्हीं पर मैं भी बैठ गया. इतने में कचहरी में क्लर्क का काम करने वाले एक पोके प्रभू चोडणकर नामक सज्जन का लक्ष्य मेरी तरफ गया. वे मुझे बेंच पर बैठे देख कर सिर से पैर तक जल उठे और बोले—तुम कौन हो, किस जाति के हो, यह बिना सोचे-समझे ही यहां बैठ गये? यहां बैठने के काबिल हो क्या तुम? यह तुम्हारे बैठने के लिए नहीं है.

मैंने कहा—सारे लोगों को बैठा देख कर मैं भी यहां बैठ गया. इतने लोगों के बीच अपमानित हो कर मुझे गुस्सा आ गया, मैंने जिद्द भरे स्वर में कहा—जो चाहे कर लो मैं उठने वाला नहीं हूं. सारा हंगामा जान कर बहुत से लोगों ने पोके प्रभु को समझाया तथा मुझसे बोले, आप बैठिए, मैं क्रोध से भरा हुआ उठ खड़ा हुआ तथा पोके प्रभू से बोला, अगर मेरी नसों में मानव-रक्त प्रवाहित हो रहा है तो एक दिन तुम लोगों की कुर्सी के समक्ष ही कुर्सी डाल कर हमारी आने वाली पीढ़ी बैठेगी.

वह बिद्रूप हंसी हंसे, बोले— इस युग में यह कभी संभव नहीं होगा.

शुरुआत अपने घर से मैंने की. मैंने अपनी मौसी से कहा, तुम्हारा नाती 'नरहरी' बड़ा बुद्धिमान बालक है, उसे पोर्तुगीज की शिक्षा देनी चाहिए, गाळजीबाग में प्रबंध हो सकता है.

वह बोली—वह छोटा है अगर उसे साथी मिल जाये तो आने-जाने में असुविधा न होगी. मैंने एक दत्तू नामके पड़ोसी बच्चे को इस बाबत मना लिया. दोनों दोपहर का खाना ले कर पढ़ने के लिए जाने लगे. मेरी प्रसन्नता का पारावार न था. उन बच्चों ने मुंह जबानी तथा लिखित दोनों परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त किये. यह देख कर मादू शेणवी नाम के व्यक्ति ने व्यंग्य भरे शब्दों में बच्चों से कहा—मृदंग बजाना छोड़ कर यह शिक्षा प्राप्त करने की सलाह तुमको किस भले मानस ने दी? बच्चों को अत्यंत बुरा लगा, किंतु उनकी क्रिश्चियन शिक्षिका ने मुह तोड़ जवाब दिया—ये बच्चे बहुत होशियार हैं परीक्षा इन्होंने अच्छे नंबरों से पास की है. . .

यही बच्चे आगे चल कर बड़े होनहार बने. हमारी जाति में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले ये दो बच्चे सबसे प्रथम हैं. नरहरी कोर्ट में अनुवादक तथा दत्तू फारेस्ट डिपार्टमेंट में लग गये. परीक्षा के समय इन बच्चों पर 'मृदंग बजाना छोड़ कर पढ़ाई क्यों कर रहे हो,' व्यंग्य कसने वाले मादू शेणवी को जब मडगांव कोर्ट में किसी सरकारी काम की वजह से जाना पड़ा, तब उन्हें नरहरी से ही अपने काम के लिए याचना करनी पड़ी. मैंने कहा—कालाय तस्मै नम: ☐

राजा और चिड़िया

एक दिन मेरे पड़ोस की पुत्तू मौसी मेरे घर आयी तथा बोली—गांव के लोग कहते हैं, पहले अपनी लड़की की शादी करो फिर लोगों को उपदेश दो. मैंने पुत्तू मौसी से कहा, उन लोगों से कहना मेरी लड़की की शादी शीघ्र होगी और यह काम मैं आप लोगों को निमंत्रण दे कर ही करूंगा. थोड़े दिनों के पश्चात मेरी लड़की की शादी बंबई में हो गयी.

इस घटना के काफी अरसे बाद, मैं गाव में गणपति पूजा के उत्सव में गया हुआ था. काफी संख्या में स्त्रियां वहां एकत्र थीं, मुझे देख कर वे आपस में कहने लगीं—लड़कियां काली हैं, इसीलिए शादी कर रहे हैं गोरी होतीं तो नाच-गाना सिखाते, शादी क्यों करते?

सुन कर मुझे हंसी आयी. मैंने उन लोगों से कहा—आप लोगों का कहना ठीक है. एक चिड़िया के मुंह से एक पैसा नीचे गिर पड़ा. उसी पेड़ के नीचे शिकार में भटकते-भटकते सुस्ताने हेतु राजा आ कर बैठ गया. उसने वह पैसा उठा लिया. चिड़िया बोली—राजा को गरीबी आ गयी है, मेरा पैसा ले लिया. राजा ने सुना तो पैसा नीचे फेंक दिया. यह देख कर चिड़िया बोली—राजा मुझ से डर गया है इसीलिए पैसा फेंक दिया. ऐसी ही स्थिति आप लोगों की है. ☐

महापतिव्रता

जब १९११ में देवदासी प्रथा को समाप्त करने के लिए प्रस्ताव पास हुआ तब आस पास के गांवों में काफी हलचल मच गयी. कुछ लोगों ने, अनादि काल से, शास्त्रानुसार चली आ रही इस परंपरा को समाप्त करने के संदर्भ में मेरा बहिष्कार करना शुरू कर दिया. किंतु उनकी लड़कियों की चेतना जागी थी, वे मेरे विचारों से अत्यंत प्रभावित थीं तथा नाच-गाना छोड़ कर शादी करना चाहती थीं. कुछ लोगों ने अपनी लड़कियों को अंग्रेजी शिक्षा देनी शुरू कर दी थी, कई लोगों ने इस तरह सोचा कि नाच-गाना उस पर शिक्षा होने से लड़कियों की कीमत बढ़ जायेगी. . . .

. . .ऐसे समय किसी कार्यवश मैं गांव के एक परिवार में गया हुआ था, वहां देखा, औरतों का भारी जमघट गप्पबाजी में जुटा हुआ है. मुझे देख कर एक औरत ने सबको संबोधित किया —अगर किसीने मुझे पति ढूंढ़ दिया होता, तो मैं इस उम्र में भी शादी कर लेती. सुन कर मुझसे रहा नहीं गया, मैं बोला—चंदा मौसी, द्रौपदी के पांच पति थे तब भी वे पतिव्रता थीं, तुम्हारे पति तो दस से भी ज्यादा हैं, तुम तो महापतिव्रता हो.

. . . सुन कर सारी औरतें हंसने लगीं. □

तीन अभागी बहनों की कैफियत

तारीख १८ जून १९६९ के 'राष्ट्रमता' में तीन बहनों की कैफियत प्रकाशित हुई है, वह मैंने पढ़ी. मराठा समाज में वेश्या-व्यवसाय में रत स्त्रियों द्वारा ही विवाहित घरेलू महिलाओं का सुखी संसार नष्ट करने के अनेक उदाहरण हैं, ऐसे विचार उन्होंने अपने लेख में व्यक्त किये हैं. उन बहनों को मेरा उत्तर इस प्रकार है:—

मैं आप लोगों के विचारों से पूर्ण सहमत हूं. इस वेश्या-व्यवसाय की वजह से ही आपकी भरी-पूरी गृहस्थी उजड़ती है तथा हमारे नाम पर भी बट्टा लगता है, जब से यह बात मेरी समझ में आयी है पिछले साठ वर्षों से मैं वेश्या-व्यवसाय को नष्ट करने का सतत् प्रयत्न करता रहा हूं, और इस उद्देश्य के पीछे मैंने अपना समस्त जीवन बेच दिया यह आप लोगों ने मेरी पुस्तक 'मी कोण' पढ़ कर महसूस नहीं किया? अगर यकीन न आता हो तो इसी पुस्तक में मेरी तथा



स्वामी इंदिरा कांत की भेंट-वार्ता है, वह पढ़ देखिए. उस भेंट-वार्ता में मैंने अपने उद्देश्य को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है. आप बहनों का संसार सुखमय रहे इस हेतु हमने वेश्या-व्यवसाय संपूर्ण रूप से खत्म करने के लिए सरकार से कानून पास करवाया. संस्था स्थापित कर लड़कियों की शादी के लिए रुपये देने की व्यवस्था की. वेश्या व्यवसाय से अलग हो सकें ऐसी स्त्रियों को नर्सिंग प्रशिक्षण दिलाने की तजवीज की. यह सब आप लोगों को मालूम है फिर यह कहां का न्याय है कि मुझ पर ही आरोप लगाया जा रहा है!

आपका तथा आने वाली पीढ़ी का संसार सुरक्षित रहे, आप लोग ऐसा चाहते हैं. यही वजह है देवालय जैसे पवित्र स्थान पर होने वाले इन वेश्याओं के नृत्य-समारोह में जब आपके पति उनके वासनात्मक हाव-भाव के जाल में फंस जाते हैं ऐसा न हो इसीलिए मैंने आप जैसी कुलीन सुशिक्षित महिलाओं को आगे आने के लिए प्रेरित किया तथा यह नृत्य बंद हो इसका महत् प्रयत्न किया. मैंने इन मठाधीशों से भी इस प्रकार के नृत्यों को बंद करने की विनती की किंतु उनका उत्तर था 'यह परंपरागत चला आ रहा रिवाज है'.

वास्तव में वेश्याओं का नृत्य सारस्वतों को ही बंद करना चाहिए था क्योंकि गोवा के अधिकांश देवालय उनके ही आधीन हैं. दूर प्रांतों से लोग भक्ति-भाव से नमित यहां आते हैं तथा पवित्र देवालय में इन वेश्याओं का वासनात्मक नृत्य देख कर यही महसूस करते हैं कि गोवा की संस्कृति है क्या? पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी कहा है 'गोवा तो अजब है.' इसका अर्थ यह है कि एक तरफ तो महान उच्च संस्कृति तथा दूसरी तरफ स्त्रियों द्वारा ही लज्जास्पद कृत्य. पवित्र देवालय के प्रांगण में अपवित्र वेश्याओं का नृत्य. किंतु विरोध व्यक्त करने पर यही उत्तर होता है—यह प्रथा परंपरागत है हमने शुरू नहीं की. □

सुधार प्रिय शामा बाई पैंगीणकर

शामा बाई को दत्ती नाम की एक पुत्री थी. जब वह छोटी थी तभी आस-पड़ोस के तथा परिवार से संबंधित लोगों ने मिल कर उन्हें डराया-धमकाया कि 'शेसविधि" (देवदासी बनाने का एक प्रकार का नियम) संपन्न कर दीजिए नहीं तो देवी का कोप-भाजन बनना पड़ेगा. मुझे जब इस बात का पता चला तब मैं शामा बाई से भेंट करने गया तथा उनको समझाया यह तथ्य निर्मूल है, हमारे सतत् प्रयत्नों तथा आंदोलन की सफलता तुम जैसी समझदार स्त्रियों पर ही निर्भर है. यह सुन कर वे बोलीं—आप निश्चित रहें! भगवान की कृपा से मुझे हिम्मत है, मैं जो जो उचित है वही करूंगी....और उन्होंने अपनी पुत्री को अच्छे इंग्लिश स्कूल में पढ़ा कर डा. रामकृष्ण नार्वेकर के साथ विधिवत् विवाह संपन्न किया. १९४१ में 'गोमन्तक मराठा समाज' की ओर से 'नागेशी' में जिस प्रचंड सभा का आयोजन हुआ था, उस सभा की अध्यक्षा वही दत्ती उर्फ इंदिरा बाई नार्वेकर थीं. □

राणे लोगों का दंगा तथा घर में आग

यह भी मेरे बचपन की एक भयानक घटना है. राणे लोगों का दंगा-फसाद शुरू हो गया था. उस टोली का सरदार राजाराम सावंत था तथा उसका एक जोड़ीदार था पावटो शेणवी. उसने गांव में फसाद करने शुरू कर दिये. 'कुसके' नाम के एक जंगली गांव के ऊंचे घने जंगल में उनका डेरा था. एक दिन रात्रि के करीब बारह बजे किसीने हमारे घर के दरवाजे पर जोरों से ठक-ठक की. कौन है, यह देखने के लिए जब दरवाजा खोला गया तब भड़भड़ाते हुए वही राणे लोग अंदर घुस आये, घर में सबको सांप-सूंघ गया. यह देख कर राजाराम सावंत ने कहा—घबराइये नहीं, हमें 'दत्ती' का गाना सुनना है. यह सुन कर सबके मन में ढाढ़स हुआ. राणे लोगों को सम्मान सहित बैठा कर दत्ती बाई ने गाने गाये. गाने सुन कर वे अत्यंत खुश हुए तथा पांच रुपये दे कर चले गये. सबने राहत की सांस ली. किसीने कल्पना भी न की थी कि आगे जा कर यह घटना क्या रंग लायेगी. दूसरे ही दिन 'कुसके' गांव से एक परिचित उनका पत्र ले कर आया. पत्र में यह संदेस था कि कल शाम को दत्तीबाई को उनके साजिंदों समेत तथा दो नाचने वाली लड़कियों सहित कुसके के जंगल में बुलाया है. तथा—हमारा यह आदमी तुम्हारे साथ रहेगा. सारे लोगों की हालत ऐसी कि काटो तो खून नहीं. न जायें तो प्राणों का भय, और जायें तो सरकार का. आये हुए व्यक्ति से उनके भीतर की कुछ बातें मालूम पड़ीं. यहां से जाने के पश्चात राजाराम सावंत ने अपने साथी पावटो शेणवी, जो नशे में धुत पड़ा था, से गर्वित हो कर कहा—तू यहां दारू पी कर पड़ा है और हम दत्ती बाई का गाना सुन कर आ रहे हैं. पावटो शेणवी ने मजाक उड़ाते हुए कहा—तुम तो गाना सुनने उसके घर गये हुए थे. मैं उसे यही बुला कर गाना सुन लूंगा. बकरे तथा दारू के प्रबंध की भी बात थी. यह सब सुन कर हम सब के होश फाख्ता हो गये. अंत में हम लोगों ने ब्रिटिश सीमा के अंतर्गत आने वाले 'मजाली' गांव में जा कर कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया. दूसरे दिन तड़के पूरा कुटुंब घर में ताला लगा कर 'मजाली' के लिए निकल पड़ा. लकड़ी चीरने वाले व्यंकटी नाम के एक गृहस्थ के यहां हम रहे, यह मुझे अब तक याद है. हम लोग नहीं, यह देख कर दूसरे ही दिन पावटो शेणवी ने बिना आगा-पीछा सोचे अपने साथियों को घर में आग लगाने की आज्ञा दे दी. घर कवलों का था अतः आग लगाने में उन्हें करीब दो घंटे लग गये. उन लोगों के चले जाने के पश्चात मेरे पिता ने लोगों को एकत्र कर आग बुझायी. जब यह सूचना हम लोगों को मिली तो घर की सारी स्त्रियों में रोना-पीटना मच गया. काफी अरसे पश्चात जब दंगे समाप्त हो गये तब हम लोग घर आये व घर को दुरुस्त किया. □

चिनू बाई

चिनू बाई नाईक समाज में से थीं. वे अत्यंत कुशाग्र बुद्धि की महिला थीं. जब मैं उनसे भेंट करने गया तब उनका निवासस्थान कुंकल्ली था. तीखे नयन-नक्श की स्वामिनी चिनू बड़ी ही सौंदर्यमयी थीं तथा उनका रहन-सहन अन्य ब्राह्मण परिवार की पत्नियों के समान था. वे उसी तरह की पोशाक धारण करती थीं.

तथा माथे पर बड़ी-सी बिंदी लगातीं. उस समय उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि वे एक देवदासी हैं. जब मैं उनसे मिला तब मैंने उन्हें इस सामाजिक आंदोलन के विषय में जानकारी दी. उन्होंने कहा––आपके विचार बहुत ही अच्छे हैं. हमारी तरह ही यदि आप लोग भी लड़की की शादी करेंगे तो गलत नहीं सोचेंगे. मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछूं क्या?

—हां, हां ! खुशी से पूछिए.

मैंने पूछा––क्या आपकी शादी हो गयी है?

मेरे पूछते ही उनका चेहरा फक पड़ गया. वह बोलीं––नहीं.

मैंने कहा––यह तो मुझे मालूम था ही. यह प्रश्न आपसे यों ही पूछ लिया क्योंकि लड़कियों की शादी करने के लिए आप मुझे कह रही हैं और आप स्वयं वेश्या व्यवसाय में रत हैं. इतना ही नहीं, जब शादी का प्रश्न सामने आता है तो आप उन सुंदर नाक-नक्श वाली लड़कियों को वेश्या वृत्ति के लिए रख लेती हैं, ऐसा मैं सुनता हूं. आप गुस्सा न हों, आप मुझे अपने भाई की तरह ही समझिए. वेश्या व्यवसाय बंद हो तथा इस व्यवसाय में रत लोगों को सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिले तथा शिक्षा प्राप्त कर जीवन में वे आगे आ सकें, ऊंच-नीच का भेद समाप्त हो, यही मेरी हार्दिक इच्छा है. ब्राह्मण तुम्हारा भोग तो कर सकते हैं किंतु वे तुम्हें सामाजिक मर्यादा देने के लिए तैयार नहीं हैं जिसकी तुम पूर्ण रूप से अधिकारिणी हो. वे धूर्त हैं. मेरी मां देवदासी हैं और जन्म से ही एक ब्राह्मण के साथ रह रही है. उन्हींका पुत्र हो कर भी, मैं न उन्हें पिता कहने का अधिकारी हूं तथा ना ही वे मेरे द्वारा पिता कहलाना पसंद करते हैं.

यह सुन कर वे बोलीं––तुम्हारे विचार से मैं सहमत हूं, मैं भविष्य में प्रयत्न करूंगी कि तुम्हारे विचारों को प्रतिफलित कर सकूं. □

भोजन के उपरांत जूठन भी साफ करना

वेश्या व्यवसाय करने वाली, 'देवदासी भाविणी' नाईक, बंदे, पेणी आदि सब समाज में एक है यह घूम-घूम कर समझाने का प्रयत्न कर रहा था. नाईक समाज के पुन्हा नामके एक गृहस्थ कुंकली में रहते थे. उनसे मेरी जान पहचान थी. मैं प्रचार कार्य के लिए घूम रहा था कि एक दिन रात को मैं उनके घर पहुंचा. मुझे देख कर वे अत्यंत प्रसन्न हुए. समाज के एकीकरण और शिक्षण के विषय पर उनसे काफी तर्क-



वितर्क हुआ. मेरे विचारों पर उन्होंने सहमति प्रकट की, इतने में ही अंदर से भोजन का आमंत्रण आया. हाथ-पैर धो कर हम भोजन वाले कमरे में गये. घर के सभी सदस्यों को एक साथ तथा मेरे लिए अलग से एक पीढ़ा और पत्तल था. जैसे ही मैं अंदर आया मुझे मेरा पीढ़ा दिखा दिया गया. मैं पीढ़े पर बैठ गया. पुरुष मंडली सहित पुन्हा भी अपने आसन पर बैठ गये. भोजन समाप्त हो जाने के पश्चात पुन्हा मुझसे बोले ––पत्तल उठा कर बाहर की तरफ फेंक दीजिए. मैंने वैसा ही किया. जहां मेरा जूठन गिरा था, उस स्थान को लीप देने के लिए उन्होंने मुझे गोबर ला कर दिया. मैंने उनके आदेशानुसार गोबर से उस स्थान को लीप दिया तथा हाथ धोने के पश्चात मैं बैठक खाने में उनके साथ आ कर बैठ गया.

मैंने उनसे कहा––आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, क्योंकि ब्राह्मण के घर भोजन करने के पश्चात जिस तरह अपना जूठन स्वयं को साफ करना पड़ता है, वैसा ही व्यवहार आपने मेरे साथ किया. मात्र ब्राह्मण होने में आपके अंदर थोड़ी सी ही कमी रह गयी है वह ऐसी है कि जब हम जैसे क्षुद्र जीव ब्राह्मणों के यहां आमंत्रित होते हैं तो वे पानी पीने के लिए पत्तल के पास शौच वाला लोटा रख देते हैं. आपने बस इतना ही कम किया.

यह सब सुन कर वे झेंप गये.

मैंने फिर कहा––इसमें बुरा लगने का कोई कारण नहीं है. अगर मैं ब्राह्मण के घर में भोजन करके जूठन साफ करता हूं तो अपने घर में जूठन साफ करने में लाज कैसी ! हम और आप एक ही व्यवसाय के बंधु हैं, दोनों के ही घर में कुछ कमी-वेसी वेश्या-व्यवसाय चलता है. लड़कियों की शादी तो आपके समाज में भी होती है किंतु देवी का आधार बना कर आप लोग भी किसी मासूम लड़की को देवदासी बनने पर मजबूर करते हैं. ब्राह्मण आपको अपनाते तो जरूर हैं, मगर वे आपकी लड़की के साथ शादी तो नहीं करते? बराबरी पर बैठाते तो नहीं हैं! अपनी पिछली पीढ़ी की इस रूढ़ि को खत्म कीजिए और स्वयं को सुधारिए. □

महानंदा

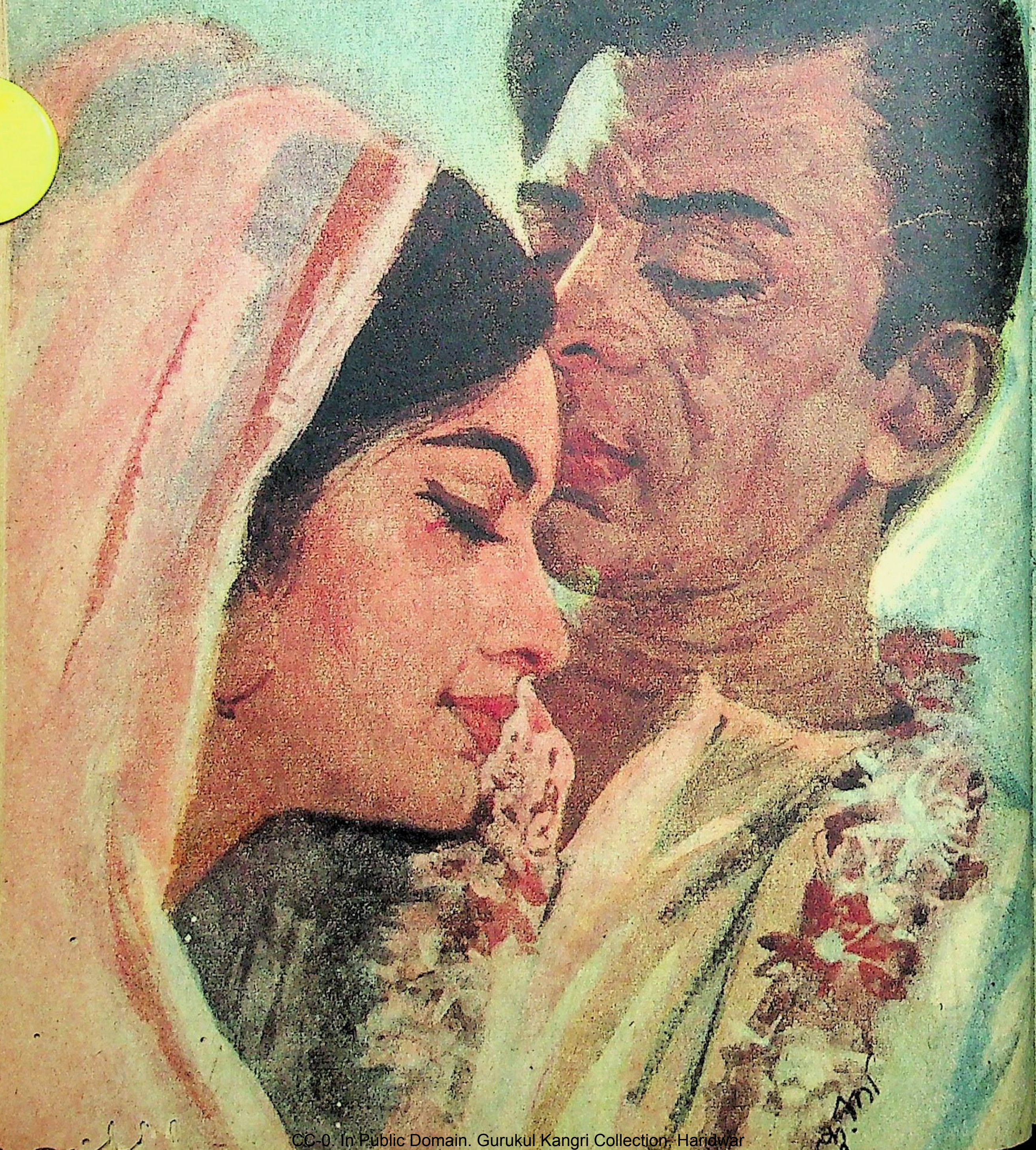
• जयवंत दलवी

मराठी के प्रसिद्ध लेखक जयवंत दलवी का लघु उपन्यास 'महानंदा' कोंकण (महाराष्ट्र) की लुप्तप्राय देवदासी प्रथा की पृष्ठभूमि में लिखित अत्यंत लोकप्रिय एवं सशक्त कृति है. 'महानंदा' में लेखक ने इस चिरंतन प्रश्न का सहज-स्वाभाविक उत्तर दिया है कि वारांगनाओं में ऐसा क्या आकर्षण होता है जिससे पुरुष अपनी गृहिणी के साये से परे हट कर कहीं अन्य भटक जाता है. प्रस्तुत हैं—'महानंदा' के कतिपय रोचक अंश... •

मंदिर की परिक्रमा में घुप अंधेरा था, भीतर गर्भ गृह में भी अंधियारा था—दो दीवटें जल रही थीं जिनके प्रकाश में ठाकुरजी की चांदी की आंखें और मूंछें बड़ी अजीब-सी दिखाई दे रही थीं.

—'मां ठीक है न!...उस अंधेरे से किसी स्त्री की आवाज आयी.

—हां,...मैंने भी कह दिया लेकिन पता न चला



अंतर-कक्ष से कौन बोल रहा है. मैंने टार्च के प्रकाश में देखा, छत से लटकती दीवट तले ढलती-सी उम्र की एक स्त्री नीराजन जला रही थी.

—कौन? मैंने नारायण पुजारी से पूछा.

—कल्याणी—ठाकुरजी की देवदासी...कल्याणी हंसी और हंसी की ध्वनि मंदिर की घंटियों जैसी गूंज कर रह गयी.

—तुम्हारा नाम बाबुलनाथ है न?

—हां.

—तुम मुझे नहीं पहचान सकते. लेकिन तुम्हारी मां जानती है, केवल कल्याणी देवदासी कहना, वह फौरन जान जायेगी.

सीढ़ियां उतर कर कल्याणी मंडप द्वार के पास आयी. उसके हाथों में चांदी की थाली थी जिसमें पान तथा इलायचियां थीं. उसने थाली मेरे सामने बढ़ा कर कहा—यह हमारा धरम है जो हम जीते जी निभायेंगे. आजकल की लड़कियां कहां क्या करती हैं? अब तो वे विवाह तक कर लेती हैं—नरक जाने के लच्छन! ...अब देवदासी की बेटी ठाकुरजी के चरन छोड़ कर अगर विवाह कर ले तो ठाकुर जी हमारी आंखें न फोड़ देंगे? सच है कि नहीं?

मैंने सकपकाकर उसकी थाली में अठन्नी डाल दी वह हंसी, जैसे उसने आशीर्वाद दिया हो.

* *

मंदिर की सीमा से ही कल्याणी का घर लगा था. कच्चे आंगन में जूही का मंडप था. मंडप के उस ओर कोई लड़की फूल चुन रही थी. हरे पत्तों के बीच से उसकी अस्पष्ट रूपरेखा भर दिखाई दे रही थी. कल्याणी ने बताया वह उसकी लड़की मानू अर्थात 'महानंदा' है.

...गयी रात तक ठीक से नींद न आयी. दूर पहाड़ों पर सियार चिल्ला रहे थे. आंख लगने को ही थी कि कहीं जूतों के 'कर्र-कर्र' की आवाज आयी. आंगन में नजर दौड़ाई तो मद्धिम लालटेन का पीला धब्बा आंगन के द्वार से बाहर सरकता जा रहा था—पीछे से दरवाजे के खुलने और मामी की चूड़ियों की महीन खनक तथा ठंडी निःश्वास की मिली-जुली आवाजें आयीं....इतनी रात मामा कहां गये होंगे?...मैं आश्वस्त हो गया. एक ओर मामी और दूसरी ओर कल्याणी. कल्याणी से मेरी जरा-सी पहचान लेकिन लगा जैसे पुरानी पहचान हो... कितने अपनेपन का स्वर! कितनी स्पष्टता! उसकी जरा-सी बातों से ही पता चलता था कि वह आकंठ सुखों में डूबी है...और मामी, मामा से विवाह हो कर भी...सब कुछ उदास, ऊसर, और उजाड़...

वास्तव में सुख-संतोष किसमें है? विवाह में? गृहस्थी में? बाल-बच्चों में? मामा शायद कल्याणी के यहां गये होंगे. ढलती उम्र में वे घर की गृहिणी को छोड़ कर वहां क्यों गये? मामी से क्यों कोई लगाव नहीं? कल्याणी से क्यों इतना आकर्षण है?...मन में ऐसे प्रश्न आने पर न जाने क्यों मुझे कल्याणी से इतना अपनापन लगने लगा! विवाह किये बगैर भी वह किसी पुरुष को अपनी ओर खींचे रहती है...अगर यह मामा की पत्नी होती तो क्या मामा आधी-रात उठ कर बाहर जाते!

* *

उस सांझ मानू तुलसी वृंदा के सामने नीराजन जला कर अधझिपी आंखों से 'शुभम् करोति कल्याणम्, का सस्वर पाठ कर रही थी और नीराजन की शीतल मंद ज्योति मानू के चेहरे का सौंदर्य बढ़ा रही थी. आज पहली बार इतनी भावुक लड़की देख रहा था...तुलसी, जूही का मंडप, गीत की मंजुल ध्वनि. लगता था घर के आसपास ऐसा ही वातावरण होना चाहिए. भले ही घर देवदासी का सही परंतु मामा के घर से कहीं अधिक मधुरता थी.

कल्याणी ने मुझे बिठा कर कहा—'यह मानू है—पूरा नाम महानंदा है पर हम मानू ही कहते हैं.'...और परिचय बढ़ता गया.

...रात ठंड से अकड़ी जा रही थी और इधर मेरी आंखें जली जा रही थीं...जूही के छप्पर तले कोई न था, सीधा मानू के कमरे में गया. वह खिड़की के पास बैठी जूही का गजरा बना रही थी. वह मेरी ओर एकटक देखे जा रही थी, उसकी मुद्रा में क्रोध था; न जाने असली या नकली. फिर उसने धीमे से पूछा—यहां कितने दिन रहना तय किया?

—गांव के उत्सव और जत्रा (मेले) के बाद ही जाऊंगा.

—ठीक, तब तक मेरा बंदनवार तैयार हो जायेगा. कहते हुए उसने गजरा मेरी कलाई पर बांध दिया.

—लेकिन बंदनवार अपने ही पास रखना मानू.

—क्यों?

—सब तुम्हारे साथ ही ले जाऊंगा.

—सच?

—क्यों, संशय क्यों?

—मेरी मां विरोध करेगी. उसका कहना है हम देवता के हैं. अगर देवता के चरण छोड़ कर हमने विवाह किया तो हमारा कभी कल्याण न होगा....लेकिन तुम्हारे घर के लोग?

—मैं स्वतंत्र हूं. बंबई जाते ही बाहर तबादला करा लूंगा; फिर हम अपने मन के राजा-रानी. मैंने अन-जाने उसकी गोदी में सिर रख कर कहा—मानू कितना

सुख, कितना समाधान!

—ओ, मेरे भगवान! माथे पर हाथ मार कर कल्याणी हसी. पता नहीं उस हंसी में सम्मति थी या विरोध.

—क्यों?

—देवदासी की बच्ची और विवाह? क्या हमने विवाह किया?

—वह जमाना और था, मैंने कहा.

—तुम्हें पता है उस जमुनिया का क्या हुआ?

—कौन जमुना?

—वही, चंद्रा की लड़की. पांचवीं तक पढ़ी तो बड़ी अकल आ गयी. सबने मना किया तो भाग गयी और उस भांगो के बच्चे से विवाह कर लिया. नास हो गया. जब देवदासी ब्याह रचायेगी तो देवताओं का कोप न होगा. जागृत देवता! उसको साल भर भी न बीता था कि पागल हो गयी और एड़ियां रगड़-रगड़ कर मरी... और भाऊ भट्ट की सुनी? उसका घराना भी बड़ा नामी है. एकादशी को भगवान की पालकी उसके घर जाती है. उसके देवघर में भगवान विठोबा हैं. लेकिन ससुरे की मत मारी गयी. ब्राह्मण की लड़की छोड़ गंगा देवदासी की सुंदरी ब्याह ली... ...तुम्हारी मां जानती है, सारा गांव विरुद्ध लेकिन भट्ट काहे को मानने लगा! एकादशी को देवी के मंदिर तक जा कर ही लौट आयी. छह महीने में ही भट्ट का शरीर फूल कर सड़ गया. दसों गांवों के बैद आये, बीमारी न घटी. आखिर भट्ट होश में आया. ठाकुरजी के सामने नाक घिसी, सुंदरी को छोड़ दिया! शुद्धि की गयी. गोबर में गंगाजल मिला कर घर लीपा गया. तब कहीं उसकी दशा सुधरी.

—और सुंदरी का क्या हुआ? मैंने सहज भाव से पूछा.

—अरे, वह कहां मरघट में जायेगी. देवी की सेवा करती है. भट्ट उसके यहां आता जाता है. देवदासी को रखने से देवता कुपित नहीं होते, लेकिन ब्याह... मेरी आंखों में मानू की कल्पना से पानी आ गया पर मैं दृढ़ था.

★ ★

उत्सव के दिन की सांझ. हजारों लोग गांव के मेले में जुटे थे. कोलाहल बढ़ता जा रहा था. दूकानें सजी थीं. मध्यरात्रि में देवता की पालकी उठी. आगे ताशे और ढोल वाले, फिर असंख्य नर-नारी, आबाल वृद्ध. पालकी के पास जरतारी पट्टों वाले चौबदार. फिर कौशेय में लिपटे पुजारी लोग. पालकी के दोनों ओर पंचारतियां लिये सिंगार किये देवदासियां. पीछे कल्याणी किसी महारानी-सी चल रही थी. उसके साथ शैवाल के रंग की जरतारी साड़ी में थी—महानंदा! कितने ही आभूषणों में सजी—महानंदा! मैं कल्याणी का विरोध भूल गया.

मैं स्तंभित खड़ा था कि कंधे को छू कर एक आंचल निकल गया. मैंने घूम कर देखा, मानू ने पीछे-पीछे आने के संकेत में गर्दन घुमायी. मैं मंत्रमुग्ध-सा नीरव पगडंडी पर घुले अंधयारे में चल दिया. हम दोनों अंधेरे में टटोलते पिछले दरवाजे पर पहुंचे. मानू ने ताला खोल कर दीवट जलायी... मैं उसे देखता रहा और सब कुछ भूल गया.

उसने फूलों का एक बड़ा हार मेरे गले में डाल दिया. हार गले में पड़ने पर न जाने क्यों पहला उन्माद कम हो गया. विवाह हो जाने का आभास हुआ. कुछ पवित्रता झांक उठी. छाती पर टिके उसके सिर को सहलाता रहा. मानू ने हाथ बढ़ा कर दीवट बुझा दी. पता नहीं जागते-जागते सवेरा कब हुआ... दिन चढ़ने को था, जल्दी-जल्दी कमीज के बटन लगाता बाहर निकला.

★ ★

मैंने उमर के चालीस वर्ष पार कर लिये थे. किसी ईषत आघात से असमय वृद्ध हो चुका था. बीमारी ने छाती को जर्जर छलनी बना दिया था. तभी अकस्मात मां का पत्र आया कि मामा की मृत्यु हो गयी है—मामी से मिल आऊं.... जहाज बंदर से लगा. अब कुछ भी पहचाना-सा न लगा. अगली शाम देवमंदिर गया तो हांफता-सा सीढ़ियों पर बैठ गया. पायल बजाती लगभग बीस वर्ष की एक तरुणी पास आ कर बोली—आपको मां बुला रही हैं.

—कौन? मैंने क्षीण आवाज में पूछा.

—महानंदा.

मन में तो आया था चीख कर कहूं—जाओ, रास्ता देखो! बिल्कुल कल्याणी और महानंदा जैसी आवाज थी...आंखों में आंचल लगाये मानू रो रही थी. उसका मुंह खुला था—जैसे मृत्यु के समय खुलता है. ..सारा इतिहास स्पष्ट हुआ. मानू बोली—तुमने जब मुझे आ कर ले जाने का पत्र लिखा, वह मां के हाथ लगा. उस डाइन ने मुझे सीतू मृदंगिये के साथ पिंगुलि गांव भेज दिया और तुम्हें झूठ बताया कि मुझे पांच महीने का गर्भ रहा है. मुझे पता भी न चला कि तुम आ गये हो. मैं वर्षों जलती रही, तीन साल पहले यह रहस्य मालूम पड़ा... अब वह बैरिन पागल हो कर सड़ रही है—मेरा विनाश करके...

उस स्थिति में भी लोकलाज को तिलांजलि दे मैंने मानू को बेटी के साथ ही चलने का प्रस्ताव किया.

★ ★

—दमयंती इनके पैर छू.. मानू युवती से बोली. फिर मुझसे कहा—कम-से-कम इसका तो विवाह हो जाये. इसे ले जाओ. मैं कहां इस योग्य पवित्र रही... पेट के लिए सब देवदासी धर्म निभाना पड़ा.

दमयंती हाथ में बैग लिये बंदर पर आयी. मानू ऊंची चट्टान पर खड़ी विदा दे रही थी. मानू ने बैग खोला तो महानंदा के बनाये बीस साल पहले के बंदनवार और तकिये के गिलाफ दिखाई दिये... एक बिंदु की भांति, किनारे पर खड़ी मानू की आकृति घुलती जा रही थी.

आंखों से आंसू बह चले. □□□

(अनुवाद : विष्णु निवसरकर)

४, मलिक बिल्डिंग, शिवाजी पार्क, रोड नं. ४, बंबई–२८



देवदासी समाज : कुछ संस्मरण

डा. शामराव मुलगांवकर के साथ मुलाकात

गोमंतक मराठा समाज गोवा, इस संस्था का कार्य-भार मेरे द्वारा ग्रहण करने के कुछ ही समयोपरांत मैं बंबई गया. उस समय डा. मुलगांवकर साहब ने मुझे भेंट करने के लिए निमंत्रित किया. मैं तुरंत श्री मुरारी शिरोडकर को साथ ले कर रात्रि के आठ बजे उनके निवास स्थान पर गया. डा. साहब बैठकखाने में आ कर बैठ गये तथा मेरी ओर मुखातिब हो कर बोले—शिक्षण के विषय में आपके क्या विचार हैं?

मैंने कहा—स्त्रियों के लिए माध्यमिक शिक्षा अनिवार्य तथा पुरुषों के लिए उच्च शिक्षा होनी चाहिए.

यह सुन कर वे मुसकराये तथा बोले—स्त्रियों को चूल्हे के पास ही रहना चाहिए ऐसे मत के लगते हैं आप?

मैंने कहा—नहीं, साहब, यह बात नहीं है. सभी को उच्च शिक्षा मुहैया करने के लिए अभी न तो हमारे समाज के पास पैसा है न पूर्ण रूप से उचित साधन. अन्यथा स्त्रियों को भी उच्च शिक्षा मिलनी ही चाहिए.

मुरारी शिरोडकर बोले—स्त्रियों की पूर्ण स्वतंत्रता के पक्षपाती हैं श्री पैंगीणकर. □

दत्ता दलाल

मडगांव के दत्ता पांडुरंग नायक दलाल मेरे निकट के परिचित हैं. बहुत वर्ष पूर्व मैं उनके यहां गया था, वे बड़े ही सुधारप्रिय व्यक्ति थे. सहज स्वर में बोले—आपके इस आंदोलन का मुख्य उद्देश्य क्या है?

मैंने उन्हें पांचों प्रस्तावों का अर्थ विस्तृत रूप से समझाया. ब्राह्मण समाज में हुंडी लेने तथा पुनर्विवाह न करने से कितनी बुराइयां उत्पन्न हुई हैं. इस तरह की रूढ़िवादी विचारधारा के अंध-अनुयायी होने की वजह से ही यह समाज गर्त में पड़ा. यह सब देख-सुन कर ही हुंडी न लेने तथा पुनर्विवाह करने के लिए दोनों प्रस्ताव हमने पास करवाये. स्त्रियों को पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए. इतना ही नहीं, पारिवारिक लेन-देन की जानकारी उनको होनी ही चाहिए. घर-संसार में लगने वाली वस्तुओं की खरीद-फरोख्त उनके द्वारा अगर होगी तो पुरुषों के कंधों का भार कम होगा तथा स्त्रियों को व्यवहार ज्ञान प्राप्त होगा, उनकी अज्ञानता भी दूर होगी, मेरे विचारों को सुन कर वे अत्यंत प्रसन्न हुए तथा बोले—हिंदू समाज में पुरुषों द्वारा स्त्रियों को सामाजिक व्यावहारिकता से अनभिज्ञ रखने की वजह से ही कितने कुटुम्ब रसातल में मिल गये. □

नागली बाई से भेंट

सामाजिक आंदोलन शुरू होने के बहुत वर्ष पूर्व, गोपाल मामा जांबावलीकर मुझे ले कर 'शिरोड' की श्रीमती नागली बाई के यहां गये. वे गाने में तथा देवदासी समाज सुधार के कार्यों में अत्यंत प्रसिद्ध थीं. उनके पुत्र चि. विट्ठल राव शिरोडकर उस समय डाक्टरी की शिक्षा ग्रहण कर रहे थे. मेरा परिचय उनसे कराते हुए गोपाल मामा बोले—यह राजाराम पैंगीणकर हैं. इन्होंने समाज (देवदासी समाज) सुधार का आंदोलन विशाल पैमाने पर शुरू किया है. 'पंच महाल' तथा 'बंबई' में जा कर वहां सभाओं का आयोजन किया है तथा समाज सुधार के लिए पांच प्रस्ताव पारित किये हैं, जो इस प्रकार हैं: (१) वेश्या व्यवसाय (देवदासियों के संदर्भ में) करने वालों का हिंदू समाज में एकीकरण (२) शिक्षण प्रसार (३) लड़कियों का विवाह (४) हुंडी न लेना (५) पुनर्विवाह करना.

सुन कर वे बोलीं—आपके चार प्रस्तावों से मैं अत्यंत सहमत हूं किंतु मुझे पांचवां प्रस्ताव उचित नहीं लगा, वह 'गंगा नहाने के पश्चात गू पर पैर देना' जैसा है. इतना बोलते हुए उन्होंने 'बाबा' पुकार कर बिट्ठल राव को अवाज लगायी. विठ्ठल राव अपने कमरे से बाहर आये, उनकी ओर मुखतिब हो कर नागली बाई ने परिचय करवाया—ये पैंगीणकर क्या कह रहे हैं देखो? मैंने इनको सुझाव दिया है कि आंदोलन के चार उद्देश्य ही रखें. पांचवां किसलिए नहीं, वह भी समझा दिया है. यह सब सुन कर वे कुछ न बोले, मात्र हंसते हुए अपने कमरे में चले गये. पिछले तीन वर्ष के पहले मैं बंबई गया हुआ था. उस समय सहज बोलते हुए मैंने उन्हें उस गोष्ठी की याद दिलायी थी. □

अंतराल

• मधुकर गंगाधर

वे दोनों आमने-सामने थे. बीच में एक टेबल थी—कांच से ढंकी. बासी फूलों का एक गुलदस्ता टेबल पर बेतरतीबी से रखा था. कमरे में मोटे-गहरे हरे पर्दे थे. पूरे कमरे में सूनापन और उदासी भरी थी.

नौजवान ने, जो उत्तर की ओर बैठा था, बड़े ही दार्शनिक ढंग से कहा—इस कमरे में यद्यपि उदासी और सूनापन भरा है, फिर भी लगता है, आपके मन में गुलाब की कलियां चटक रही हैं. जैसे किसी मीठे सपनों की प्रतीक्षा की जा रही हो!

उस प्रौढ़ ने, जो नौजवान के आमने-सामने बैठा था, आंखें उठा कर नौजवान को देखा. अधरों में जरा-सा मुसकराया और व्यंग्य-भरे लहजे में बोला—तुम कब आये?

—मैं?

—हां.

—मेरा एक प्रश्न था?

—बचकाना.

—उसे आप प्रौढ़ संदर्भ दे सकते हैं. प्रश्नों की उम्र नहीं होती.

—मगर तुमने जो प्रश्न किया है, उसकी उम्र है. ठीक तुम्हारी जितनी. चेहरे पर लाली, आंखों में उमंग...

—महाशय, मैंने जब प्रश्न किया था, तब आपकी आंखों और चेहरे की वही स्थिति थी. आपके इर्द-गिर्द सपने तैर रहे हैं!

—बहुत खूब! तुम्हारी आंखें बड़ी पैनी हैं!

—क्या मैंने झूठ कहा?

—नहीं.

—क्या आप प्रेमिका की प्रतीक्षा में बैठे हैं?

प्रौढ़ व्यक्ति हंस पड़ा. भरी-पूरी हंसी. उसने आसन बदला. जरा सावधान हो कर बैठा—तुम्हारा प्रश्न नौजवानी का प्रतीक है. सीधा. सपाट. दो टूक. मैं इसका उत्तर भी दूंगा. लेकिन मैं यह जानना चाहता हूं कि जिसे उत्तर दूंगा, वह कहां तक मुझे ग्रहण कर सकेगा?

—क्या मतलब?

—आज की दुनिया की सारी क्राइसिस ग्रहणशीलता की है. आपसी संवाद की ग्रहणशीलता समाप्त है. मैं चाहता हूं कि जो कहूं, उसे तुम ग्रहण करो.

—करूंगा.

—फिर मैं एक सवाल पूछूंगा.

—आप बड़े सधे हुए हैं—सीजंड. ठंडे राजनीतिज्ञ. उत्तर देने की बजाय प्रश्न करने लगे.

—यह आवश्यक है.

—फिर पूछिए.

—तुमने कभी प्रेम किया है? जानते हो, प्रेमि[illegible] क्या होती है?

युवक की उद्दीप्त आंखें बुझती-सी लगीं. वह गंभी[illegible] हो उठा. दूसरी ओर, प्रौढ़ व्यक्ति की उदास आंखों [illegible] चमक आ गयी. वह जरा तन कर बैठ गया.

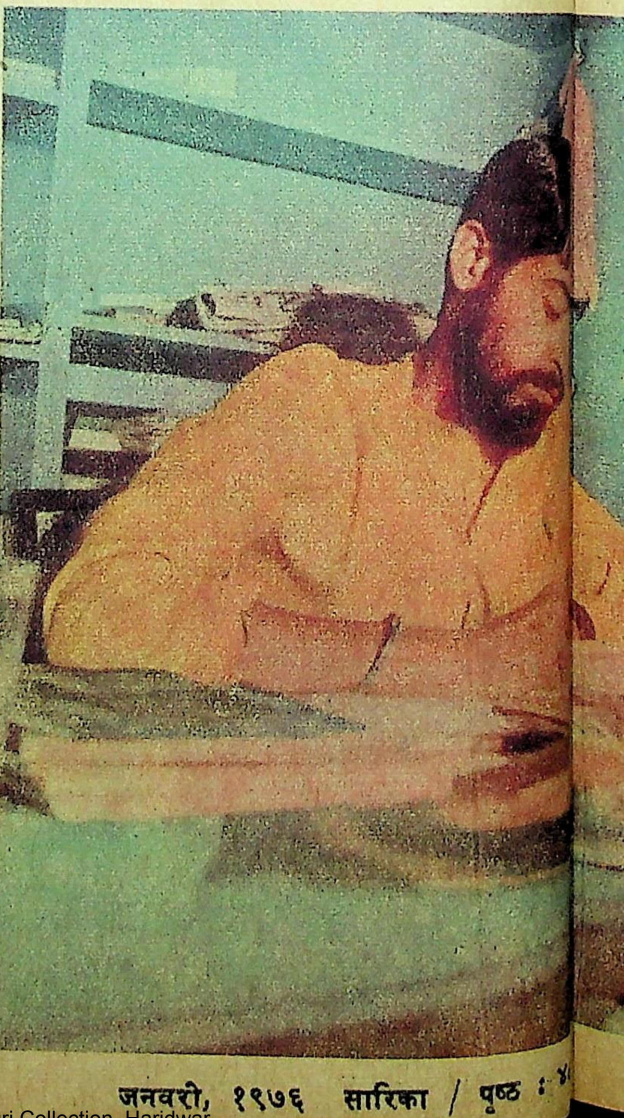
—प्रेम मैंने किया है, नौजवान ने कहा.

—तुमने जो किया है, वह प्रेम ही है, ऐसा [illegible] कहा जा सकता है? औरत-मर्दों के आपसी संबंधों [illegible] प्रेम ही कहा जाये, यह जरूरी नहीं.

—मैं परिभाषा नहीं जानता. शायद प्रेम [illegible] कोई परिभाषा नहीं होती. मजनू ने अपनी कुर्बानी दे [illegible] और आथेलो ने डेस्डिमोना की हत्या कर दी. राधा [illegible] प्रेम के लिए मर्यादा का खयाल नहीं किया और राम [illegible] मर्यादा की रक्षा के लिए प्रेम को ठुकरा दिया. सभी [illegible] प्रेम था. मैं किसी परिभाषा द्वारा प्रेम को साबित न[illegible] कर पाऊंगा. किंतु, इतना जरूर कहूंगा कि मैंने [illegible] किया, वह प्रेम ही था.

—क्या किया तुमने?

• उमेश व्यास



—बतलाता हूं.

नौजवान जरा और उदास हो गया. उसकी आंखों में अतीत तैरने लगा. वह भर्रायी आवाज में बताने लगा :

—मुझसे उसका परिचय कैसे हुआ, नहीं जानता. सच पूछिए तो हम किसी के भी बारे में नहीं कह सकते कि कब और कैसे परिचय हुआ? हम जीवन में रोज नये लोगों से मिलते हैं, किंतु कहां परिचित हो पाते हैं? परिचय एक मानसिक संयोजन है. कब, कहां, कैसे होगा, कोई नहीं कह सकता!

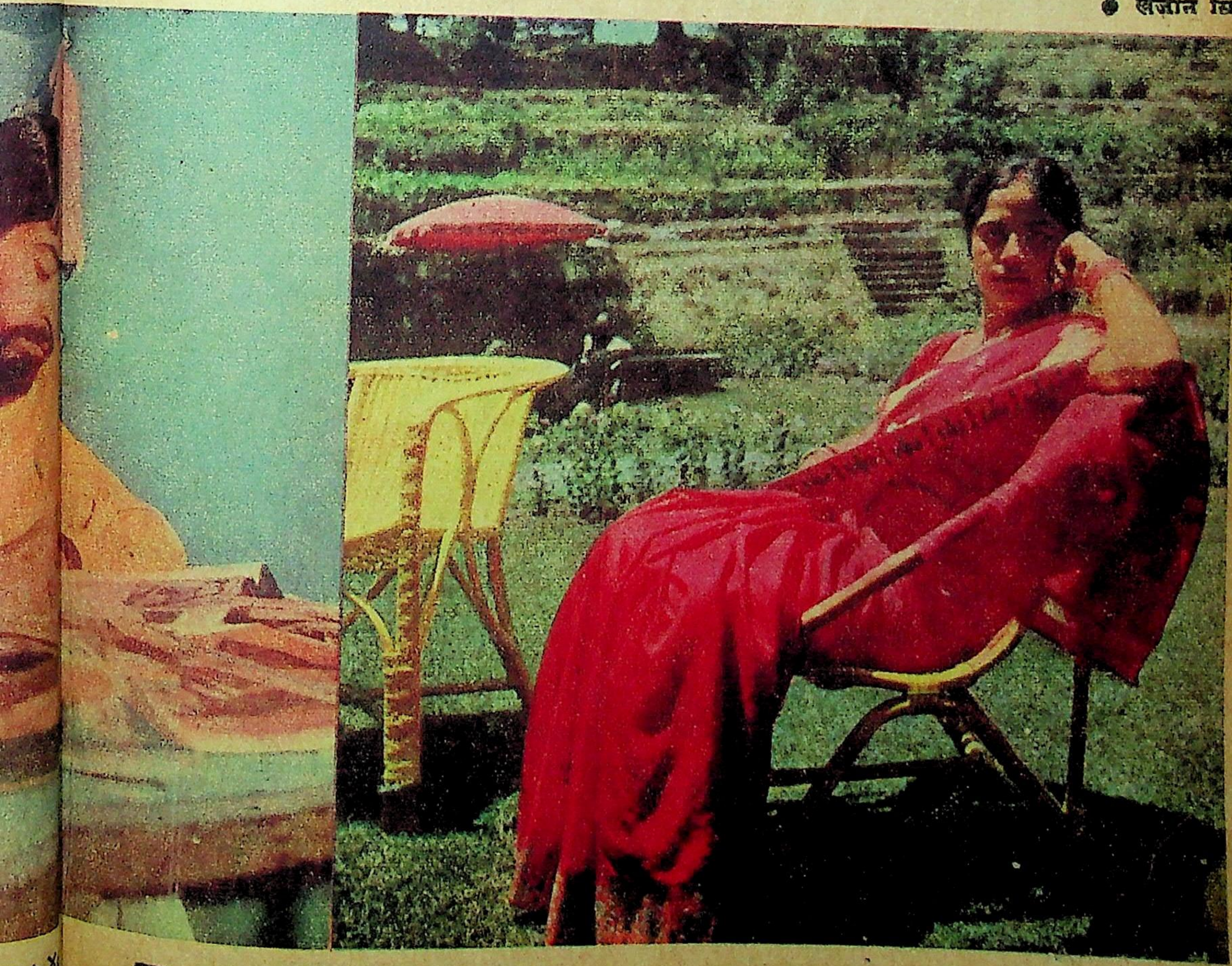
—वह दुबली-पतली, भोली-भाली लड़की थी. मेरे मन पर उसकी अजीब किस्म की छबि अंकित है—जाड़े की भोर में किसी कस्बे की एक पुरानी खपड़ैल... छत पर ओस धुली काशीफल लता में पहला फूल—नन्हीं-नन्हीं पीली पत्तियों वाला अर्द्ध-विकसित फूल! मैंने उसे पहली बार पीले स्वेटर में देखा था... उसके मकान के बगल में किराये के कमरे में रहता था. उसके भाई से कॉलेज की दोस्ती हुई. मैं परदेश में था. उसके घर पर मां की ममता और पिता का स्नेह मिला.

—फिर ऐसा हुआ कि मैं सपना देखने लगा. अजीबो-गरीब सपना. कभी गृहस्थ बनने का सपना, कभी जंगल-बियावान में भटकने का सपना. फिर ऐसा होने लगा कि मैं अपने को कई रूपों में उभारने लगा—उद साहसी, दुर्दांत लालसामय, निश्छल, फकीर...

—हम ब्याह कर गृहस्थी बसायेंगे और समाज लड़ेंगे. हम विश्वविद्यालय की अंतिम पढ़ाई करेंगे- पी- एच. डी. और लोगों के सामने नजीर रखेंगे. गांव चले जायेंगे अपने को अनाम बना कर मान महासमुद्र में विलीन कर देंगे. हम ऐसी कल्पन करने लगे, जिनका एक दूसरे से कोई मेल नहीं था.

—हमने कुछ ऐसे भी क्षण गुजारे जो खतरे सीमांत रेखा से भी आगे चल कर गुजारे जा सकते मसलन एक बार, बरसात की आधी रात, मैंने उस मिलने की इच्छा की. उसका कमरा घर के पिछव था. सामने के कमरों में परिवार के अन्य लोग सो थे और मुख्य-द्वार बंद रहता था. पीछे की ओर ग थी. पानी बरस रहा था. घोर अंधकार. आहिस् आहिस्ते पैर रखते हुए बढ़ रहा था. सहसा बगल पानी में तीव्र हलचल हुई. एक सांप जोर से फुंका उठा. मेरे पास टार्च नहीं थी. चुपचाप खड़ा रह गय अंधेरे में हर ओर सांप ही सांप लग रहे थे. मन आया कि शायद यह इम्तहान है. पीछे लौटने पर भी त सांप का खतरा था ही. थोड़ी देर रुक कर मैंने आ

● सजान सि



बढ़ाया. पता नहीं, सांप कहां चला गया? मैं के कमरे तक पहुंचा.

—प्रेम एक अवांछित सम्मोहन है. हम नहीं चाहते, तु वहीं जाते हैं, हम नहीं चाहते, किंतु वही करते यह एक प्रक्रिया बन जाती है...

—फिर हम लोग एक ऐसे मोड़ पर पहुंचे, जहां सानियत हमारे इम्तहान को बैठी थी. उस लड़की अपने पिता से हमारे प्रेम की चर्चा कर दी. शादी अाज्ञा मांगी. ऐसे अवसरों पर माता-पिता अक- बौखला उठते हैं. उन्होंने वैसा कुछ नहीं किया. दोनों को एक साथ अपने पास बुलाया. प्यार से ाया. बड़े ही सहज ढंग से कहा—तुम लोग एक रे को प्यार करते हो और सुखमय जीवन की मना करते हो. मैं विरोध नहीं करता! इस लड़के मैंने अपने बेटे जैसा प्यार दिया है. जैसे एक बाप जिम्मेदारी होती है, वैसी ही एक बेटे की भी होती तुम्हारा भी कुछ कर्त्तव्य होता है. तुम लोगों ब्याह से मैं दफ्तर में काम नहीं कर पाऊंगा. मारा यह छोटा-सा शहर इस अंतर्जातीय ब्याह से खिला जायेगा. फिर मेरी और लड़कियां हैं. वे वारी रह जायेंगी. उन बच्चियों को भी पूछ लो. क्या चाहती हैं. मैं एक बाप हूं. कई लोगों की कब्र र एक महल की स्वीकृति देना क्या संभव है?

वह कमरे से बाहर चले गये. मैंने महसूस किया कि एक अजीब किस्म के दबाव के नीचे आ गया हूं. अपने हल की नींव में किसी कब्र पर क्यों रक्खूं? प्यार, री नजर में, फूलों की खुशबू है— इसका इस्तेमाल त्या के लिए नहीं किया जाना चाहिए.

हम दोनों कई दिनों तक अबाध मिलते रहे. बहसें हुईं. झड़पें हुईं. गंभीर चुप्पियों से गुजरे. रोये. और, अंत में हम विदा हो गये—एक दूसरे से सदा के लिए.

नौजवान चुप हो गया. जैसे वह बहुत अधिक थक गया, जैसे कोई तूफान उसके लहू से गुजर गया. उसकी आंखों में अपूर्व ज्योति थी. वह शांत था...

प्रौढ़ मुसकरा रहा था. उसने सहज ढंग से कहा—ऐसा ही होता है. लैला-मजनू, शीरीं-फरहाद, सेम्पसन-डिलेला की फीडिंग-बोतल उनके पापाओं ने इसी प्रकार गुम करायी थी.

—क्या मतलब?

—नाबालिगों का प्यार खुशबू होता है, उत्सर्ग होता है, सुगंध होता है... जाने क्या-क्या होता है!

—और बालिगों का प्यार?

—बालिगों का प्यार अभावों की पूर्ति है.

—यानी आपका प्यार?

—तुम इसे प्यार ही कहोगे— क्योंकि साहित्य ने आज तक औरत-मर्दों के संबंध के लिए मात्र एक शब्द गढ़ा है— प्यार.

—आप प्यार नहीं करते क्या?

प्रौढ़ चुप था. कुटिल मुसकान उसके चेहरे पर थी.

—आप यहां क्यों बैठे हैं?

—मैं जानता हूं कि तुम्हारे मन में एक धारणा घर कर गयी है.

—क्या मेरी धारणा गलत है?

—धारणा गलत या सही नहीं होती है. वह निर्मल तरल जल है, जिस पात्र में पड़ती है वैसा ही रंग, उसी का आकार ग्रहण करती है. तुम्हें एक आदमी कबूतर ले कर जाते देखता है कि तुम शांति के नाम पर इसे उड़ाने जा रहे हो, दूसरा आदमी देखता है और सोचता है कि कबूतर को घर ले जा कर जिबह करोगे.

—आप क्यों नहीं बताते—यहां क्यों बैठे हैं?

—अब जरूरी हो गया कि मैं तुम्हें बतला दूं कि क्यों बैठा हूं. भीतर एक महिला है. स्नान कर रही है. स्नान के बाद शृंगार करेगी. फिर बाहर आयेगी और मेरे साथ घूमने चलेगी.

—वह आपकी प्रेमिका है?

—प्रेमिका? भाषा भी अजीब चीज है? शब्दों की सीमाएं कितनी सकुंचित हैं? प्रेमिका शब्द को ही लो. तुम्हारी एक प्रेमिका थी. उसकी भावनाओं का एक नक्शा तुम्हारे दिमाग में है. जिसे तुम मेरी प्रेमिका कह रहे हो, उसकी भावनाओं का एक दूसरा ही नक्शा मेरे दिमाग में हो सकता है, आसमान और जमीन का फर्क. मगर संबोधन का एक ही शब्द!

—क्या फर्क है?

—फिर तो पूरी दास्तान सुनानी होगी!

—कोई एतराज?

—नहीं.

* *

प्रौढ़ पलभर चुप रहा. अपने भीतर कुछ जुटाता रहा. फिर धीमे स्वर में बोलने लगा:

—अक्तूबर का महीना था. दार्जिलिंग का माल-रोड. आदमियों से खचाखच भरा. हम दोनों गप्पें करते नीचे उतर आये. फिर चंडीप्रसाद के मन में जाने क्या आया कि बोल उठा— यहां बड़ी भीड़ है. चलो, रेस-कोर्स चलें.

—यह बतला देना जरूरी है कि चंडीप्रसाद से मेरा क्या ताल्लुक था. वह गोरखपुर के आसपास का रहनेवाला था. बचपन में भाग कर कलकत्ता आया था—अनाथ. द्वितीय विश्वयुद्ध के समय ठेकेदारी में मालामाल हो गया. आयरन कास्टिंग का बड़ा-सा कारखाना खोल बैठा. कई चाय बागान और कोयले की खानें खरीद बैठा. मुझसे एक ट्रेन-यात्रा में भेंट हुई थी. मैं काफी भटकने के बाद जीविका की खोज में कलकत्ता आया और एक छोटे-से अखबार में नौकरी करने लगा. चंडी प्रसाद से दूसरी बार गवर्नमेंट हाउस की एक पार्टी में भेंट हुई. फिर मुलाकातें होने लगीं. कई बार होटलों में चाय पिलाने के बाद अपने घर पर बुलाया.

—चंडी प्रसाद के घर पहुंच कर मैं अवाक रह गया. उसकी उम्र लगभग अठ्ठावन वर्ष की थी, किंतु घर पर एक तीस-बत्तीस वर्षीया खूबसूरत पत्नी थी. पूरी तरह शहरी. पत्नी को लिखने-पढ़ने से रुचि थी. चंडीप्रसाद ने अपनी पत्नी को मुझे लिखने-पढ़ने में

सहायता लेने को प्रोत्साहित किया. मैं उसके घर अबाध रूप में जाने लगा.

—एक अजीब किस्म का त्रिभुज बन गया. चंडी प्रसाद को मेरी तरह पढ़ा-लिखा, चुपचाप सुनते रहने वाला, एक चमचा चाहिए था. उनकी पत्नी, मध्यमा को मुझमें एक दूसरे की संभावनाएं दिखलाई पड़ीं. निरंतर भटकाव से थके हुए मेरे जैसे आदमी को विभवशालिनी मध्यमा में अपनी मंजिल का संकेत मिला.

—यह त्रिभुज क्रमश: मजबूत होता गया. इसी बीच चंडी प्रसाद ने दार्जिलिंग घूमने का कार्यक्रम रखा. मुझे भी साथ लिया. हम लोग कुंडू होटल में आस-पास दो कमरे ले कर ठहरे.

—हम रेस-कोर्स में काफी देर तक घूमते रहे. अंत में चंडी प्रसाद ने वापस चलने का प्रस्ताव किया. हम लोग टैक्सी छोड़ चुके थे. रेस-कोर्स के किनारे, जहां टैक्सियां रहती हैं, एक भी टैक्सी नहीं थी, पैदल ही धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे.

—हम काफी देर तक चलते रहे. मुझे गत रात की बातें याद पड़ रही थीं. खाना खाने के बाद हम अपने-अपने कमरे में जा रहे थे. मध्यमा ने मेरी ओर देखा— सिर्फ देखने में इतनी बातें कही जा सकती हैं— यह मैंने पहली बार जाना था.

—हम डायनिंग हाल से बाहर निकल कर अपने कमरों की ओर मुड़ गये.

—गुड नाईट!

—गुड नाईट!

—तेनसिंग -राक तक पहुंचते-पहुंचते हम थक गये थे. इस राक के बगल में विशाल खड्ड है. खड्ड के किनारे सड़क से गुजरते लोगों की हिफाजत के लिए घुटनों तक की दीवाल उठा दी गयी है. हम दोनों उसी दीवाल पर बैठ गये. थोड़ा सुस्ताने के बाद चंडीप्रसाद ने सिगरेट-केश निकाला. उनके पास दियासलाई नहीं थी. मैंने झट से जेब से लाइटर निकाला कर उनके सिगरेट को सुलगा दिया. सहसा मेरे मन में एक अजीब किस्म की भावना आयी. पलक गिरने जितना समय लगा. मैंने चंडीप्रसाद को पीछे की ओर ढकेल दिया. चीख भी नहीं निकली. सूखे पत्ते की तरह चंडीप्रसाद हवा में चक्कर काटते गहराइयों में खो गये!

—मैं वहां से जल्दी-जल्दी आगे बढ़ गया. मेरे पांव कांप रहे थे. शरीर थरथरा रहा था. लगभग दस मिनट चलने पर पैर स्थिर हुए. मन थोड़ा शांत हुआ. कुछ दूर आगे जाने पर पैसेंजर ढोने वाली एक जीप मिली, जिसके द्वारा मैं मुख्य बाजार आ गया. एक होटल में बैठ कर चाय पी. मन स्थिर हुआ. फिर भी काफी देर तक इधर-उधर चक्कर काटता रहा. शहर की चहल-पहल में पूरी तरह भूल गया कि क्या किया है. प्राकृतिक मन:स्थिति में आ गया.

—अपने होटल पहुंचा. मध्यमा कंबलों में लिपटी पुस्तक पढ़ रही थी. उसे सर्दी लग गयी थी, सो शाम में वह घूमने नहीं निकली थी.

—साहब कहां हैं? मैंने पूछा.

—वे तो आप ही के साथ गये थे न?

—नहीं. गेट के बाहर निकल कर वे एक ऊन की दूकान में घुस गये और बोले कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है, सो वे घूमने नहीं जायेंगे, मैं अकेले चला जाऊं. मैं जाना नहीं चाहता था, मगर उन्होंने जबरन भेजा.

—लेकिन वे तो तभी से नहीं आये?

—फिर एक तनापूर्ण और दुखद नाटक का प्रारंभ हुआ. रातभर लोग उन्हें खोजते रहे. दूसरे दिन मैंने मध्यमा को समझाया कि चंडीप्रसाद मेरे और उसके बारे में बुरे संबंधों की बातें सोचने लगे थे. एक बार इस आशय का मजाक भी किया था. अपने बाहुबल और चालाकियों से विशाल संपत्ति अर्जित करने वाला धनपति ढलती उम्र में खूबसूरत पत्नी करता है, तो वह नि:शंक कभी नहीं रह सकता! हो सकता है, वे चिढ़ गये हों और चुपचाप कलकत्ता चले गये हों. मैंने इसी आधार पर मध्यमा को काफी समझाया और दूसरे दिन मध्यमा को ले कर कलकत्ता चला आया.

—लगभग सात महीने हुए. मैं मध्यमा पर छाया हुआ हूं. मध्यमा— याने एक खूबसूरत जिस्म और अथाह संपत्ति! मैं यह भाव मध्यमा में जाग्रत करने पर लगा हूं कि चंडीप्रसाद उसके लिए अनिवार्य नहीं थे— अनिवार्य मैं हूं!

नौजवान उठ कर खड़ा हो गया. उसके चेहरे पर तनाव आ गया. वह लगभग चीख-सा उठा— हत्यारा!

प्रौढ़ व्यक्ति मुसकराने लगा. आहिस्ते-आहिस्ते बोला— मैं अगर हत्यारा हूं तो तुम आत्म-हंता. इंडियन पेनलकोड में दोनों एक जुर्म है. खैर, छोड़ो इन बातों को तुम्हारे जैसे भावुक दुध-मुहों की मुलाकात जुगाकर रखने की चीज है.

—और तुम्हारे जैसे घुटे हुए हत्यारे का परिचय पुलिस को दे आना चाहिए. तुम्हारा नाम क्या है?

—सदानंद!

—सदानंद तो मेरा भी नाम है. तुम्हारे बाप का नाम?

—चिंतामणि.

—चिंतामणि? यह तो मेरे पिताजी का नाम है. तुम्हारा घर कहां है?

—फ्लैट नंबर सात-सात-तीन-दो जीरो, वेस्ट ब्लाक, आर. के. पुरम्, दिल्ली.

नौजवान तेज आवाज में बोला—मक्कार! तुम वे ही बातें बोल रहे हो, जो मैं हूं. यह तो मेरा पता है.

इस बार प्रौढ़ थोड़ा ज्यादा गंभीर हो कर बोला— ज्यादा चीखो मत! मध्यमा के कानों तक आवाज नहीं जानी चाहिए. मैंने जो कहा है, वह सत्य है. मुझमें और तुममें सारी समानताओं के बावजूद एक बड़ा फर्क है?

—क्या है यह फर्क?

—पच्चीस वर्षों का अंतराल.

फिर, जैसे पूरे कमरे में कांपता हुआ ठंडा ईथर भर जाता है. ड्राइंगरूम का पीछे वाला पर्दा जरा-सा हिलता है. शायद मध्यमा बाहर निकल रही है. □□□

३८।२७६, राजेंद्र नगर, पटना-१६. बिहार.

किसी भी भाषा की पहली कहानी की खोज अपने आप में एक महत्वपूर्ण और रोचक कार्य है. इस महत्वपूर्ण खोज के लिए 'सारिका' ही पहल कर रही है. पूर्व के अंकों में मलयालम, गुजराती, बंगला, तेलुगु, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी, उड़िया और पंजाबी की प्रथम मौलिक कहानियां आप पढ़ चुके हैं. इस अंक में दी जा रही हैं--मराठी की तीन कहानियां 'प्रवासी', 'किस्मत', और 'मैकेनो' जिनमें से प्रत्येक को मराठी की पहली कहानी होने का दावा किया जा सकता है. जब यह क्रम समाप्त होगा, तब आप स्वयं ही निर्णय ले सकेंगे--एक; कि भारतीय भाषाओं में से पहली आधुनिक कहानी किस भाषा के पास है और दो; कि क्या कहानियां सचमुच पश्चिम से आयी थीं?

मराठी मौलिक कथा का उदय

• गंगाधर गाडगील

मराठी की प्रथम कथा कौन-सी है? यह प्रश्न वास्तव में क्लिष्ट है, यह मुझे पहले से ही ज्ञात था, परंतु जब 'सारिका' संपादक कमलेश्वरजी ने यही प्रश्न किया तो मुझे मजबूरन इसकी छानबीन करनी पड़ी. पर अंततः यही निष्कर्ष निकला कि इस प्रश्न का समुचित और संतोषपूर्ण उत्तर देना असंभव है.

वैसे इस निष्कर्ष पर पहुंचने में मुझे काफी समय लगा और इस दौरान मस्तिष्क पर काफी बोझ पड़ा. पर अब मैं निश्चित हूं कि चिंताओं का पहाड़ मेरे सिर से उतर गया लेकिन अब यह नैतिक जिम्मेदारी मेरे सिर पर आ पड़ी है कि अगर समाधानकारक उत्तर देना संभव नहीं तो कम से कम असमाधानकारक उत्तर तो अवश्य देना है. और यह भी कोई आसान काम नहीं है.

इस प्रश्न का उत्तर देने में दो अड़चनें मेरे समक्ष खड़ी हैं. प्रथम, इतिहासवेत्ताओं के बारे में. उन्नीसवीं शताब्दी में कभी मराठी में कथाओं का श्रीगणेश हुआ और ये कथाएं तत्कालीन प्राचीन पत्रों में प्रकाशित हुई बिखरी पड़ी हैं. अब उन सारी कथाओं का मंथन करना और उसमें से कथा का चयन करना और यह भी प्रथम कथा का चयन, यह वास्तव में एक बड़ा ही दुष्कर कार्य है. इस काम का जिसे शौक है, वही यह काम कर सकता है. 'सारिका' संपादक श्री कमलेश्वर के कहने मात्र से ही कोई लेख लिखने पर राजी नहीं हो सकता. इससे कोई इनकार नहीं कर सकता कि 'सारिका' एक प्रसिद्ध और उत्कृष्ट पत्रिका है और दूसरे इसके संपादक कमलेश्वरजी मेरे मित्र हैं जो उससे भी महान हैं. मित्रता निभाने के लिए मनुष्य ज्यादा से ज्यादा जान दे सकता है. पर इतिहास-संशोधन के लिए वह क्यों उद्यत होगा?

लेकिन सौभाग्य से यह दुष्कर कार्य अभी हाल ही में एक सज्जन ने किया है. और वह हैं स्वनामधन्य श्री राम कोलारकर. इन्होंने संग्रहालयों में धूल जमी हुई सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं की छानबीन की और मराठी कथा को जड़ से लेकर पल्लव तक सब छान मारा. इतना ही नहीं, इन्होंने अपना यह प्रयास सन् १९६८ में पुस्तक रूप में प्रकाशित कर पाठक वर्ग के समक्ष रखा. गृहस्थ का मतलब पागल! और हम पागल हैं, यह तथ्य उन्होंने पुस्तक की प्रस्तावना में ही स्पष्ट कर दिया है. वैसे यह सब लिखने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि पुस्तक देखने पर सभी ने इसका मूल्यांकन किया. लेकिन इस "पागल" मनुष्य ने जो कागज का अपव्यय किया, उससे मुझे बड़ी सहूलियत हो गयी. पागलपन भरा प्रयास किया कोलारकर ने और अब मैं उस पर शेखी बघारने चला हूं!

लेकिन इसमें भी तो अड़चन है. कथा कथा कब बन गयी, इसका स्पष्टीकरण भी तो मुश्किल है. कथा, कथा आखिर यह है क्या बला? उसका स्वत्व किसमें है? उसके विषय में, रचना में, प्रस्तुतीकरण में,



मराठी कथाकार :
कैप्टन गो. ग. लिमये

जन्म : २५ सितंबर १९९१, पूना में में हुआ. शिक्षा –बेलगांव, पूना तथा बंबई में हुई. ग्रांट मेडिकल कालेज, बंबई से १९१६ में एम. बी. बी. एस. की पदवी मिली. इसके उपरांत १९१८ से १९२९ तक पूर्व अफ्रीका तथा ईराक में सेना में कैप्टन के पद पर कार्य किया.

सन १९२२ में विवाहबद्ध हुए. सन १९२७ में उन्हें एक कन्यारत्न की प्राप्ति हुई. १९२७ में उनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास हो गया. इसके बाद जीवन भर उन्होंने विवाह नहीं किया.

इन्होंने लगभग १२५ कथाएं लिखीं हैं. इनकी साहित्यक कृतियों में ५ कथा-संग्रह, ६ विनोदी कथा-संग्रह, २ नाटक तथा इसके अतिरिक्त औषध व आरोग्य पर इन्होंने बारह ग्रंथ लिखे. सैनिक जीवन के संस्मरण को मिला कर इनके २६ ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं. इन्हें चित्रकला, फोटोग्राफी, हस्तकला, बेबी सिनेमा से विशेष लगाव था.

१८ नवंबर १९७२ को ८२ वर्ष की उम्र में पूना में इनकी इहलीला समाप्त हो गयी.

भाषाशैली में, आत्मलेखन में, आखिर किसमें है? कदाचित इसका समुचित उत्तर प्राध्यापक दे सकें क्योंकि उन्हें इसका उत्तर देना ही पड़ता है. अगर नहीं तो विद्यार्थियों को क्या बतायेंगे? परीक्षाओं में कौन-से प्रश्न अपेक्षित हैं और उनका उत्तर कैसे सोचना है? शिक्षण, यह एक बड़ा व्यापार है और इसे सुचारुरूप से चलाने के लिए बुद्धि होनी चाहिए. परंतु ऐसी कोई जिम्मेदारी मुझ पर नहीं है. यह सच है कि मैंने जन्म भर कथाएं लिखीं अर्थात जो कुछ भी लिखा उसे कथा की संज्ञा दी. अब मुझे इस बात का पता होना चाहिए कि आखिर कथा है क्या? यही सारे सिरदर्द की जड़ है. लेकिन किसे परवाह है? यह कथा नहीं है, यह मैं स्पष्ट कह सकता हूं. आगरकर के लेख में एवं बालकवि की कविताओं में भी कथाएं नहीं हैं. इतना ही नहीं, खाडिलकर की 'भाऊबंदकी' और काणेकर की 'पलव्याची कला' (भागने की कला) ये भी कथाएं नहीं हैं, यह मैं सीना ठोंक कर कह सकता हूं. लेकिन कथा को व्याख्या के जाल में डाल कर पकड़ना चाहूं तो वह जाल में सत्रह छेद करके निकल जायेगी.

कोई कह सकता है कि मैं नया कथाकार हूं. कथा के क्षेत्र-विस्तार पर मैंने गप्प लगायी है. और अब परिणाम भुगतना है! मुझे मान्य है. सर्वथा मान्य है. लेकिन नयी कथा के भूत के जन्म के पहले भी कथा की व्याख्या करने का साहस किसने किया है. लघुकथा छोटी होती है, ठीक है पर प्रश्न यह है कि कितनी छोटी? आखिर यह 'कितनी छोटी' नापने के लिए फीता है किसके पास?

हम चार कोने बता सकते हैं अर्थात गाय के सींग होते हैं. लेकिन बिना सींग की गाय होती ही नहीं, इसकी कोई हामी नहीं भर सकता. और तो और, हर गाय दूध देगी ही, ऐसा भी कोई निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता.

कथा के लिए कथानक होना ही चाहिए, यह दुराग्रह करने का कोई साहस नहीं करेगा. लेकिन पहली कथा की शोध करते वक्त ऐसा मान कर ही चलना पड़ेगा कि कथा का कथानक होना ही चाहिए. लेकिन कहानी में भी कथानक होता है. ऐसी स्थिति में कहानी और कथा के कथानक में अंतर क्या? प्रश्न जटिल है. इतना कहा जा सकता है कि कहानी का कथानक मजबूत बांधे हुए गट्ठर के समान है. प्रवाह में बहते जाते हुए एक लकड़ी की सिल्ली की तरह. कहानी के कथानक में एक स्वच्छंदता होती है. उसका आरंभ शुरू में ही नहीं होता है और उसका अंत एकदम बाद में हो, ऐसी लेखक की मनोवृत्ति होती है. कथा के पहले कुछ और ही घटित हो रहा था और इसे अगर कथा में समाविष्ट किया जाता तो वही कथा कुछ दूसरी ही हो जाती. और कथा जहां समाप्त हो रही थी, उससे और आगे भी बढ़ सकती थी. इसी तरह कथाओं के कथानक के अलग-अलग भाग आपस में नट बोल्ट की तरह फिट ही बैठे रहते.

कहानियों में भी विषय और प्रकृति की विविधता होती है. ईसप की कहानियां, बोक शिओ की कहानियां, ढकसेन राजपुत्र की कहानी, बीरबल बादशाह की कहानी, कहानी की कहानी और पुराणों की कहानियां, ये सभी कहानियां हैं. परंतु सभी के विषय और स्वभाव में अंतर है.

फिर भी कहीं कोई समानता है. उन सभी के विषयों एवं स्वरूप का एक खास ढांचा होता है. अरबी भाषा की मजेदार कहानियों में वर्णित राक्षस और पुराणों के राक्षस, इन दोनों में फर्क है. इनके जाति-धर्म अलग हैं. उनकी दुनिया अलग है और इस अलगाव को बनाये रखना और उसे उसी सीमित परिधि में बांधे रखना स्वाभाविक ही है. ठीक यही स्थिति हमारे हिंदू समाज की है, कुलगोत्र अलग, आचार-विचार अलग, अन्न अलग, परिधान अलग, और यहां तक कि भाषा में भी विभिन्नता है. इन विभिन्न जातियों को मिलाकर एकाकार करना वास्तव में बड़ा दुष्कर कार्य है.

★ ★

कहानी की एक विशिष्टता यह भी सर्वविदित है कि वह हमारी रोजमर्रा की जिंदगी से कुछ हटकर ही होती है. अधिकतर भूतकाल की ओर ज्यादा आकर्षण, अद्भुतपने की तीव्र उत्कंठा, विलक्षणता लिये हुए हो, यही उस से अपेक्षित है. लेकिन आजकल के लेखकों की जब कलम उठी तो उन्होंने उसमें थोड़ा हेर-फेर कर डाला. विषय का अलगाव तो नहीं रहा लेकिन उनकी प्रकृति में, स्वभाव में, अलगाव अवश्य दिखाई दिया. अगर हम सूक्ष्म दृष्टिपात करें तो आजकल हरिभाऊ की कहानियों में इस अलगाव के कुछ अवशेष अवश्य हमें प्राप्त होते हैं.

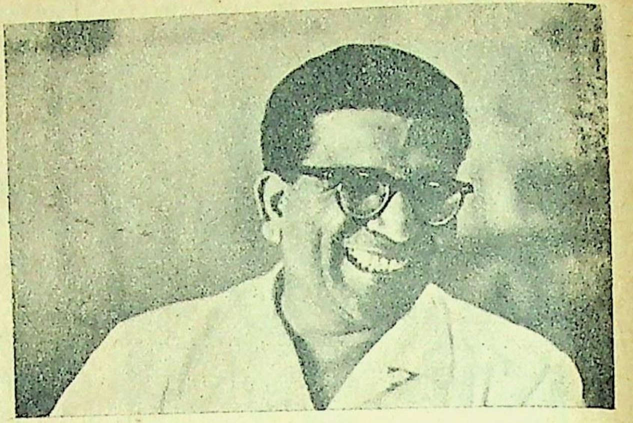
कहानी की एक और विशेषता यह होती है कि लेखक उसमें कहीं न कहीं लेखक रूप में अवश्य उपस्थित रहता है और इसमें उसे किंचित मात्र भी संकोच नहीं होता. और नतीजा यह होता है कि कहानी और पाठकों के बीच एक व्यवधान पड़ जाता है जिससे प्रस्तुतीकरण पर भी असर पड़े बिना नहीं रहता.

प्रस्तुतीकरण और भाषाशैली में एक सूक्ष्म परंतु महत्वपूर्ण अंतर है. प्रस्तुतीकरण का स्वरूप कायम रखते हुए भी भाषाशैली में विभिन्नता हो जाती है. कहानी की भाषाशैली वास्तव में क्लिष्ट होती है, अपना अस्तित्व बनाये रखने का भरसक प्रयत्न करती है, अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करते हुए कार्यरत रहती है. सारे शिष्टाचार का उसे ध्यान रहता है.

कहानी के पात्र भी प्रभावशाली तथा मंजे हुए हैं. उनके विभिन्न चरित्र एक चौहद्दी में ही सीमित रहते हैं. और यह चौहद्दी भी चौकोन ही होती है.

लेकिन कथा इन सब विवादों से अलग होती है. उसमें कोई जातिधर्म का भेद नहीं होता. अरबी भाषा की कहानियों और गोविंदराव की कहानियों में कोई अंतर नहीं है. दोनों एक दूसरे से मेल खाती हैं. इनमें समान अनुभव के दर्शन होते हैं जो भिन्न प्रकार के रूप ग्रहण करते हैं.

जीवन से अलग रहना कथा को मान्य नहीं है. उसे भूतकाल भी वर्जित नहीं है. रोमांचपूर्ण वर्णन से भी उसका संबंध अभी टूटा नहीं है. लेकिन इसके उपरांत भी जीवन से जो उसका अटूट संबंध रहा है, वह ज्यों का त्यों अक्षुण्ण है. इतना ही नहीं, उससे रस-तृप्ति भी होती रही है. जीवन के प्रति उसकी यह निकटता, उसके



गंगाधर गाडगील (जन्म १९२३) : मराठी की 'नई कहानी' के सर्जक और प्रवर्तक. अब तक १६ कहानी संग्रह, १ उपन्यास तथा २ आलोचना संबंधी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं.

अनेक साहित्यिक परिषदों के पदाधिकारी रह चुके हैं तथा कई साहित्यिक पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं. राकफेलर फाउंडेशन फेलोशिप के अंतर्गत १९५७-५८ में यूरोप तथा अमरीका में अध्ययन प्राप्त. लंबे अर्से तक बंबई में अर्थशास्त्र के प्रोफेसर. संप्रति यहीं पर एक उद्योग समूह के परामर्शदाता हैं.

विषय एवं स्वभाव दोनों में दृष्टिगोचर होती है.

कथा में लेखक उपस्थित नहीं रहता अर्थात वह कथा में लेखक के रूप में भी नहीं रहता. पात्र के रूप में भी वह उपस्थित ही रहता है, ऐसा भी नहीं है. प्रस्तुतीकरण के लिए पात्र हो, यह भी आवश्यक नहीं, ऐसी कथा-लेखकों की मान्यता है. कथा-वस्तु स्वयं ही गतिशील रहती है. उसकी भाषा स्वाभाविक एवं सहज ही बोधगम्य होती है. कथा की भाषा व्याकरण तथा बंधन स्वीकार नहीं करती. भाषा कथा से अलग अस्तित्व रखती है, यह उसे ज्ञात रहता ही है.

कथा का स्वरूप कैसा होता है, यह समझाने की मूर्खता तो मैंने कर ही दी है और मैं भलीभांति जानता हूं कि इसके लिए मुझ पर प्रहार अवश्य ही होंगे. मैंने जो भी विधान दर्शाये हैं, उनके अपवाद निश्चित रूप से ही मौजूद हैं. इसलिए ये 'प्रहार' मुझे बिना किसी विरोध के सहने ही होंगे. और यह सब कमलेश्वरजी की कृपा का ही प्रसाद है. इसके सिवा अब दूसरा चारा ही क्या रह गया है! लेकिन इतना मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि ये प्रहार कथा के विशदरूप के वर्णन करने की अपेक्षा कम त्रास-दायक हैं. अच्छा ही हुआ जो मैं अधिक त्रासभार से बच गया.

लेकिन बड़ी मुश्किल है, इसके बाद भी एक बड़ा पहाड़ पार करना है और वह है मराठी की पहली कथा का निर्णय लेना. आधुनिक काल की मराठी की पहली कहानी सन् १८५४ में छपी. उसके पश्चात १९२४ तक छपी कहानियों की सूची राम कोलारकर ने अपनी सर्वोत्कृष्ट मराठी कथा, खंड १ में दी है. लेकिन कहानी कब कथा रूप में परिवर्तित हुई,

मराठी कथाकार :
शंकर काशीनाथ गर्गे : दिवाकर

जन्म---१८ जनवरी १८८९. प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा नूतन मराठी विद्यालय, पूना. सन् १९०८ में, स्कूल से फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण.

विवाह–२४ जून १९१०. व्यवसाय–नौकरी, कई वर्षों तक शिक्षक रहे.

अध्ययन का शौक बहुत पहले से रहा. सन १९१० में प्राध्यापक वासुदेवराव पटवर्धन जैसे रसिक व्यक्ति से स्नेह हुआ. उसके बाद केशवसुत, हरिभाऊ आपटे, न. चि. केलकर, गिरीश, यशवंत माधवराव पटवर्धन इत्यादि अनेक महान मराठी साहित्यकारों से परिचय. साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य के उत्तम ग्रंथों का अध्ययन.

१८ सितंबर १९११ को प्रथम एकपात्री नाटक लिखा. इस शैली के नाटक का आरंभ दिवाकरजी ने ही किया. अतएव इनके लिखे एकपात्री नाटक को मराठी साहित्य का भूषण माना जाता है. इसके अतिरिक्त इन्होंने कई नाटिकाएं एवं भावकथाएं लिखीं.

इनकी पत्नी का १९१७ में स्वर्गवास हो गया. सन् १९३१ के अक्तूबर महीने में ४२ वर्ष की उम्र में इनका स्वर्गवास हो गया. दिवाकरजी का भावनात्मक सर्जन विलक्षण था. इनके एकपात्री नाटकों में करुणा, आलोचना, विसंगति एवं अंतर्द्वंद्व का बड़ा संयमित और सहज प्रवाह है. इनके छोटे-छोटे नाटकों में जीवन के विराट एवं हृदयस्पर्शी क्षणों का सशक्त सम्मिश्रण है.

यह मूल प्रश्न तो ज्यों का त्यों कायम है. वास्तविकता तो यह है कि कहानी का रूप धीरे-धीरे बदलता गया और कथा का प्रादुर्भाव हुआ. परिवर्तन के कई पड़ाव आए और किस पड़ाव पर कहानी का रूप कथा रूप में परिवर्तित हुआ, इस बारे में निश्चयपूर्वक कहना कठिन है. वजह यह है कि कथा की तथाकथित विशिष्टता उस परिवर्तन काल की कहानियों में भी कुछ हद तक विद्यमान है. और यह विशिष्टता अमुक एक कहानी में है इसलिए यही पहली कथा है, इसका निर्णय हमें ही करना है. पर इस निर्णय से हमें संतोष मिलेगा, यह संदेहास्पद ही है और लोगों का भी इसे समर्थन मिलेगा, यह तो सर्वथा असंभव है.

बस इतना ही सही है कि मराठी साहित्य में कथा ने धीरे-धीरे अपना आकार बनाया. उसके विकास की एक सीधी रेखा निर्धारित करना हमारे बस की बात नहीं. हरिभाऊ आपटे ने 'डिस्पेशिया' जैसी कथा लिखी और फिर उनके साथ और लेखक भी पुराने ढर्रे पर चलते रहे तथा कहानियां लिखते रहे, यह कई बार दुहराया जा चुका है. आखिरकार 'डिस्पेशिया' की कथा लिख कर हरिभाऊ जैसे अन्य लेखकों को यह एहसास नहीं हुआ कि उन्होंने क्या लिख डाला पर इसके लिए हरिभाऊ को दोषी ठहराना उचित नहीं.

कहानी की लघुकथा में जब परिवर्तन हुआ, इसका मंगलाचरण हरिभाऊ ने ही किया. सन १८९२ में 'डिस्पेशिया' और दो चित्र और दो कथाएं लिख कर कहानी के कथानक और उसके विषय मे जो भी पारंपरिक कल्पनाएं थीं, उन्होंने तोड़ा. हल्के-फुल्के कथानक के साथ उन्होंने आशय-संपन्न विषयों का भी चुनाव किया, परंतु ठोस कथानक के बदले यत्रतत्र बिखरी घटनाओं का संकलन कर के उसे कलात्मक परिधान से सजाया. उसी तरह उन्होंने एकपात्री सांकेतिक पद्धति का भी परित्याग कर दिया. 'डिस्पेशिया' की कथा में विनोद भी भिन्न प्रकार का है. इसके साथ-साथ वह अधिक व्यापक आशय का अविभाज्य अंग बन गया इन सब तथ्यों को हृदयगत रखते हुए हरिभाऊ की पहली कहानी मराठी की कथा की श्रेणी में सर्वप्रथम है और इसकी पुष्टि करने वाले से विवाद करना सर्वथा असंभव है. "माझी आगगाड़ी कसी चुकली" (मेरी आग गाड़ी किस तरह चूक गयी) तात्यासाहब केलकर की कहानी भी उपरोक्त श्रेणी में आती है. उसमें आये हुए विनोद में स्वच्छंद गति है, स्वाभाविक प्रवाह है. वह ठोस कथानक के भार से मुक्त है. उसकी रचना में एक प्रकार का प्रवाह है तथा साथ ही साथ कलात्मक गुंफन भी है. इस कथा में तथा हरिभाऊ की कथा दोनों में हो लेखक की उपस्थिति परिलक्षित होती है. उसका प्रस्तुतीकरण भी कठिन एवं दुर्बोधगम्य है. तो भी "माझी आग गाड़ी कसी चुकली" को अगर कोई कथा की श्रेणी में मानता है तो उसे अमान्य करना कठिन है. और अगर इस बाद-विबाद के विषय को छोड़ भी दिया जाय तो कथा के प्रयास में यह एक महत्वपूर्ण पड़ाव है, इसे तो स्वीकार करना ही होगा. मुझे तो ऐसा आभास होता है कि तात्यासाहेब यह सोच कर लिखने बैठे कि उन्हें रुचिकर सत्य को प्रतिपादित करना है और उन्होंने कथा लिख डाली. और यही प्रयास लघुकथा के विकास में एक और उपलब्धि थी.

सच्चाई तो यह है कि केलकर की कहानी के पहले की "हरिण्यां ची झुंडा" कथा भी कथाओं के विकास में एक महत्वपूर्ण कीर्तिमान है. यह एक हरिण की कथा है. प्राणीजीवन की वास्तविकता को दर्शानेवाला चित्रण इस कथा का विषय हो सकता है. इस तथ्य से भलीभांति परिचित होने पर लघुकथा के विषय की एक विस्तृत परिधि का आकलन हुआ, एक नयी दिशा मिली. परंतु फिर भी कथावस्तु उसी पुरानी लीक पर चल रही थी. हां, उसमें कुछ क्लिष्टता एवं सीमित बंधन थे. इसके अलावा उसका जिस तरह से उपसंहार किया है, उससे लगता है कि कथा के बीज उसमें अवश्य विद्यमान हैं. 'लोकमित्र' में इनकी 'भिवार सूचना' नाम की कथा भी रहस्यमय वातावरणों में से हो कर गुजरती है लेकिन वह अपने दायरे में ही सीमित है, सीमोल्लंघन नहीं करती. कथा का यह खास

गुण उसमें विद्यमान है. इसी तरह हम गौर करें तो 'तोरंच हास्य' जो श्री बा. रानाडे ने लिखी है, वह अपने लक्ष्य में असफल रही है. शास्त्रीय चमत्कारों को कथा संसार में प्रवेश दिलाने का यह प्रथम प्रयास था—महत्वपूर्ण भी था परंतु उसमें से कथा नाम की कोई वस्तु नहीं मिली. रानाडे जैसे महान लेखक को इस प्रयास में यश नहीं मिला. वि. सो. गुर्जर, सरस्वतीकुमार, ना. के. बेहरे, ना. ह. आपटे इत्यादि साहित्यकारों ने इस काल में काफी-कुछ लिखा. मराठी साहित्य में कथा परिवर्धन करने तथा उसे लोकप्रिय करने में बहुत प्रयास किया लेकिन कथा को स्वयं अपना रूप निर्धारित करने एवं पहचानने में किंचित भी सहकार्य मिला, इसमें संदेह है.

इसके विपरीत एकपात्री नाटककार दिवाकर की "प्रवासी" नामक एक ही कथा का कोलारकर ने संग्रह किया और उनकी दी हुई सूची में भी दिवाकर के नाम पर कोई दूसरी कथा का उल्लेख नहीं मिलता. लेकिन इतना कहना पड़ेगा कि और लेखक ढेर सारी कथाएं लिख कर जो प्राप्त न कर सके, वह उन्होंने अपनी एक ही रचना "प्रवासी" में प्राप्त कर लिया. प्रवास पर निकले एक मनुष्य के छोटे-छोटे उद्गार पर ही यह कथा आधारित है. परंतु यह प्रयास भी साधारण नहीं है. उसके वर्णन के लिए तथा उसके बड़प्पन की डींग मारने की उनमें उत्कंठा नहीं, वे तत्वचिंतन भी नहीं करते तथा काव्यात्मक भाषा का भी उपयोग नहीं करते—आम लोगों की बोलचाल की भाषा ही वर्णित है. भावनाओं की भी उद्दाम तरंगों का कोई वेग नहीं. केवल सीधे-सादे शब्दों का ही प्रभावपूर्ण विलक्षण संकलन है. शब्द जितना बोलते है, उससे अधिक कहीं इंगित करते हैं. इतना ही नहीं, इन उद्गारों का जो परस्पर संबंध है, वह कथन जितना ही महत्वपूर्ण है.

इस कथा में पात्र हैं लेकिन चेहरे नहीं हैं. कौन-सा कथन किसका है, इसका लेखक ने कहीं उल्लेख नहीं किया है और उससे पाठकवर्ग को परिचित कराना लेखक ने उचित नहीं समझा. इसमें पात्रीयता है ही नहीं. कथा में पात्र हैं ही नहीं, मानो लेखक इस कथा में अपरोक्ष रूप से भी प्रवेश नहीं करता: सारे अवांछित वार्तालाप उन्होंने बड़ी खूबी से दूर रखे हैं.

कथा, कथानक से वंचित है. पारंपरिक समाधानकारक जैसा उसका अंत भी नहीं है. फिर भी उसका अंत किसी और प्रकार का होना चाहिए, ऐसा भी कोई नहीं कह सकता. इस कथा का आरंभ अकस्मात होता है और अचानक ही कहीं अंत होता है. इतना होने पर भी आरंभ से अंत तक उसका एक सार्थक रूप है. एक निश्चित वातावरण है. ऐसा आभास होता है कि श्री दिवाकर को ही मराठी का आदि कथाकार माना जाय. लेकिन कोलारकर इससे सहमत नहीं हैं. शायद, "प्रवासी" नाटक के अधिक समीप है, ऐसी उनकी मान्यता है. यह सही है कि वह नाटक के अधिक समीप है परंतु नाटक नहीं है. वह क्या है? उनकी दूसरी नाट्यकथाएं इस नाटक जैसी नहीं हैं. उसी तरह यह नाट्य-छटा भी नाटक नहीं कथा है. डोरोथी पार्कर ने भी इसी प्रकार से एक कथा लिखी है जिसे एक उत्कृष्ट कलाकृति का दर्जा मिला है. इसीलिए मेरा आग्रह है कि "प्रवासी" भी प्रकाशित की जाय.

एकपात्री नाटककार दिवाकर, मराठी साहित्य के एक मूर्धन्य लेखक ने हमसे कई साल पहले जन्म लिया. परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि उनके लेखनकार्य पर अन्य साहित्यकारों एवं उनके समकालीन लेखकों की दृष्टि नहीं पड़ी. उस समय श्री दिवाकर के अल्प लेखन कार्य पर भी अन्य लेखक भी भरसक टीका-टिप्पणी करने से बाज नहीं आए. लेकिन दिवाकर जैसे मूर्धन्य लेखक उस वक्त क्या कर रहे थे, कितना महान कार्य उन्होंने हाथ में लिया था, इसका सही मूल्यांकन उनके समकालीन नहीं कर सके. उसका नतीजा यह हुआ कि उनके लेखनशैली का, पद्धति का उनके समकालीन विभूतियों पर उनका कोई असर नहीं पड़ा.

दिवाकर की मराठी साहित्यिक कृतियों पर दूसरे लोगों ने भी प्रतिक्रिया व्यक्त की लेकिन कैप्टेन गो. गं. लिमये नामक लेखक ने जो थोड़ी लेकिन अप्रतिम कथाएं लिखीं, उनमें से कई कथाएं प्राय: विस्मृति के गर्त में खो चुकी थीं. अगर कोलारकर अपने अथक परिश्रम से इन रचनाओं को प्रकाश में न लाते तो मराठी साहित्य हमेशा के लिए उससे महरूम रह जाता और यह कैप्टन लिमये के प्रति थोड़ा-सा अन्याय हो जाता. श्री कोलारकर का इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है.

इस तरह लिमये के साथ जो अन्याय हुआ, उसके लिए श्री लिमये भी कुछ हद तक जिम्मेदार हैं. इस बीच दिवाकर का लेखनकार्य अबाध गति से चलता रहा परंतु प्रतिकूल वातावरण के कारण उनकी साहित्यिक प्रतिभा का उतना विकास नहीं हो सका. लेखनी छोटे एकपात्रीय नाटकों में ही उलझी रही हालांकि उन्हें अपनी क्षमता एवं अपनी प्रतिभा के बारे में कभी संदेह नहीं हुआ. अपने व्यक्तित्व के साथ उन्होंने पूरी ईमानदारी बरती. लिमये ने जानते हुए भी अपनी ईमानदारी नहीं छोड़ी. "मैकॅनो" जैसी उत्कृष्ट कथा लिखने पर "अंतरपाटापासून सप्तपदीपर्यंत" उस दृष्टि से एक मामूली कथा थी. उसके उपरांत उन्होंने अनेक कथाओं में न चाहते हुए भी कुछ अपनी इच्छा के प्रतिकूल लिखा. इसके पश्चात उन्होंने कथालेखन का कार्य छोड़ दिया तथा साधारण स्तर पर हास्य रचनायें करने लगे. ऐसा करते हुए उन्हें अपने कर्तत्व का आभास नहीं हुआ लेकिन निश्चय ही उन्होंने अपनी साहित्यिक प्रतिभा से ईमानदारी नहीं बरती. कलावंत नामक नाटक में इनकी यह कमी खुलकर सामने आयी और इसी कमी के कारण वे कथा के क्षेत्र में बहुमूल्य योगदान देने के बावजूद भी अन्य साहित्यकारों की दृष्टि में उपेक्षित रहे.

लेकिन अब आज हमें इस बात से कोई सारोकार नहीं है. हमें उनकी बहुमूल्य साहित्यिक प्रतिभा का जायजा लेना है. उनकी जो उपेक्षा हुई, उसका मूल्य चुकाना है. हालांकि उन्होंने हमसे कभी ऐसी अपेक्षा नहीं की लेकिन हमारा कर्तव्य है कि हम अभी भी उनसे

उऋण हो सकें. उनकी उपेक्षा से उनका जो कुछ नुकसान हुआ, वह तो हुआ ही पर अप्रत्यक्ष रूप में यह नुकसान उनकी अपेक्षा अधिक मराठी साहित्य-रसिकों का हुआ. मराठी की 'मैकॅनो' लघुकथा सबसे पहली कथा है कि नहीं, इस विषय पर कोलारकर से हमें एक प्यारभरा झगड़ा करना है. लेकिन मराठी कथा के मूलस्रोत के रूप में उस कथा की गणना हो, यह इस प्रेमद्वंद्व का विषय नहीं हो सकता. इसीलिए मेरी उत्कट इच्छा है कि इस लेख के साथ वह कथा भी प्रकाशित हो.

लिमये ने जब यह कथा लिखी, उस समय मराठी कथा पूर्णरूपेण कथा हो चुकी थी. उसका शीर्षक ही देखिये—कथा से उसका कोई संबंध ही नहीं है, कोई नाता ही नहीं है. शीर्षक का औचित्य कितना है, इस बारे में अप्रत्यक्ष रूप में भी उसकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है. अपरिपक्व कन्या द्वारा प्रस्तुत आत्मकथा से उस अंग्रेजी शीर्षक का कोई ताल-मेल नहीं है. और यही खामी सब कुछ खोल कर रख देती है. साथ ही साथ "मैकॅनो" शब्द से जिस प्रतिमा का जो रूप हमारे समक्ष आता है, उससे कथ्य को और भी बल मिला है. प्रस्तुतीकरण से जो कुछ भी व्यक्त हो सका है, उसे एक अलग चौहद्दी प्राप्त हुई है. सारी कथा को एक अलग ही कलेवर मिला ह. कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सारी विशेषताएं कथा की ही हैं.

इस कथा के प्रस्तुतीकरण में एक स्वाभाविक सहजता का उल्लेख विशेषकर इसलिए किया है कि सहजता भी कृत्रिम हो सकती है. मराठी के अच्छे कथाकारों ने यह दुःसाहस किया है. इसका प्रस्तुतीकरण सहज ही आरंभ हो जाता है. प्रस्तावना का अवांछित विस्तार नहीं है. बहते हुए प्रवाह में जैसे पत्ता बहते-बहते आखों से ओझल हो जाता है, लगभग कुछ हद तक इस कथा का भी यही रूप है. यह इसलिए कि इसका अंत नाटकीय है. बेजोड़ कपबसी का दरी में उलझ जाना जब तीसरी बार कथा में आता है तो हमें भी थोड़ा खटकता है. परंतु थोड़ी-सी खटकन पर यह भी विचार उठता है कि कहीं यह कथा की कलात्मकता का ही भाग तो नहीं है! शेष प्रस्तुतीकरण में सहजता है. कथा की पृष्ठभूमि आत्मनिवेदन पर है इसीलिए लेखक को कथा में अनायास प्रवेश का अवसर नहीं मिल पाया है, यह सही है. लेकिन लेखक बड़े कुशाग्र हुआ करते हैं. आत्मनिवेदन की स्थिति में भी कथा में प्रवेश कर जाते हैं. पर ऐसा कोई अप्रत्याशित चमत्कार नहीं घटित होता है जैसे, कथानायिका बीच में ही काव्य प्रतिमा दिखाने लगे. वह तत्वचिंतन नहीं करती, भावनाओं के फूल खिलाने नहीं पड़ते, कथानक की कड़ियां सूत्रबद्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती. वह अपनी स्वाभाविक एवं स्वच्छंद गति से चलती रहती है. अपनी भाषा बोलती है. अपने मन के उद्गार प्रकट करती जाती है. जो कुछ उसे कहना है, उसके लिए उसे कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता, वह स्वयं ही उद्धृत हो जाता है और वह कहती जाती है. इसके अतिरिक्त उसे और कितना दुख है, क्लेश है, वह कहती ही नहीं. उसका यह दूसरा पहलू हमें कहीं न कहीं चुभने लगता है, सा लगता है. अवांछित विस्तार उस प्रस्तुतीकरण में स्वयं दब जाता है. वह गृहस्थ उसकी पत्नी, नायिका का प ये सभी पात्र बिना चेहरे के हैं. वह गृहस्थ मतलब, पैकेट जिसमें कुछ खाने को रखा है, और उसकी प मतलब वह कलाई-घड़ी. बस इतना ही!

और वे दो वर्णन, नायिका पति से कैसे व्यवह करती है तथा दूसरा वह जिसमें गृहस्थ से किस तरह व्यवहार करती, ये दोनों कितने सहज और सरल कितने प्रभावशाली हैं. प्रतिभाशाली कवि भी जिस ब को कहने में सक्षम नहीं, वह सब इतनी सहजता औ सरलता से कह दिया. इसमें कितनी बारीकी है, खूबी जिससे नारी वर्ग परिचित है. और उन बारीकियों से छानकर निकाली गयी और बारीकियां. . . .

इतना ही नहीं, इन दो वर्णनों में आपस में कितन सहज तारतम्य है और यह तारतम्य कितना आर्थपूर्ण है पहला वर्णन पढ़ते हुए हम कुछ गाफिल-से रहते पर दूसरा वर्णन आरंभ होते ही पहले वर्णन से कितन भिन्न अर्थ मिलता है! और अगर पहला न होता तो दूस को ऐसा उन्माद कैसे मिलता? मतलब यह कि इस दूस वर्णन को पढ़ते ही थोड़ा-सा अस्वाभाविक-सा लग लगता ह. उलटी-सुलटी सिलाई जैसी थोड़ी यांत्रि गड़बड़ी और किंचित नाटकीयता खटकने लगती है. परं मन में यह शंका उठती है कि यह थोड़ी-सी नाटकीयता उ कथा के कलात्मक परिणाम का आवश्यक भाग तो नहीं है?

उपमा, प्रतिभा इत्यादि तो है ही नहीं. खाने का व पैकेट, कलाईघड़ी और छाता, दरी में उलझना, बेजो कपबसी, बस इतनी ही सारी सामग्री, लेकिन वह कलाई घड़ी कितनी जंचती है, वह खाने का पैकेट कितना मीठा होता है—इसीलिए आगे आए वर्णन में मिठास ही मिठास है.

दूसरा वर्णन पढ़ते समय हंसी नहीं आती. उस का प्रेम कितना मधुर है, मधुर होने के साथ कितना हठी है, नाटकीय और चपल—और न मालूम क्या-क्या है! कितने रंग हैं उसके व्यक्तित्व के—यह सब देखने के बाद ऐसा आभास होता है कि इन सब में कितना तारतम्य है. इस व्यक्तित्व में आज्ञाकारी पत्नी का एक ही रंग है. और अब एक दूसरा रंग. अगर यह सब कहने का पागलपन करते हुए कहा जा सकता तो इस कथा को लिखने के लिए श्री लिमये की क्या आवश्यकता थी? "मैकॅनो" ही पर्याप्त था जिसमें से मनचाही कथाएं गढ़ी जा सकती थीं. मराठी के आदि कथाकार में दिवाकर कृष्ण का भी नाम लिया जाता है. उनकी कथा, "पिंजरे का तोता" बड़ी ही सुंदर कथा है. अगर उसका भी यहां उल्लेख करना आरंभ करूं तो निश्चय ही कमलेश्वरजी मेरी पिटाई किये बिना नहीं रहेंगे. इसलिए उसका उल्लेख कर रहा हूं! अंततः कमलेश्वरजी के प्रश्नों का उत्तर तो मैं नहीं ही दे पाया पर मैं उत्तर देने के लिए बंधा हुआ थोड़े ही था—मैंने तो पहले ही अपने कान बंद कर लिये थे! □□□

(अनुवाद : चंद्रमौलि शर्मा)

किस्मत: एक विवेचन

माधव मोहोलकर

. यू. महाविद्यालय में प्राध्यापक तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग. हिंदी तथा मराठी में गंभीर तथा ठोस लेखन-कार्य. मराठी लेखन 'सत्यकथा', 'मौज' में प्रकाशित तथा हिंदी लेखन 'धर्मयुग' और 'सारिका' में. भारतीय ज्ञानपीठ तथा हिंदी में अनूदित पुस्तकें––रणांगण, तीन सहेलियां (मनू तथा सावित्री) और सुप्रिया. 'रणांगण' के लिए भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत. फिल्मों, नाटकों तथा संगीत में रुचि.



यूं तो सन् १८५४ से लेकर १९२१ तक मराठी में सैकड़ों मौलिक कहानियां लिखी गयीं लेकिन आधुनिक कहानी के आसार १९२२ में नजर आए. पहली महत्त्वपूर्ण आधुनिक कहानी कैप्टन गो. गं. लिमये की 'किस्मत' थी जो १९२२ में 'नवयुग' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी. उसके बाद उनकी 'मेकॅनो', 'विठूचें भविष्य' आदि अच्छी कहानियां एक के बाद एक प्रकाशित होती गयीं. ऐतिहासिक दृष्टि से मील का पत्थर बनने का सौभाग्य 'किस्मत' को प्राप्त हुआ और बकौल प्रख्यात मराठी कथा-समीक्षक राम कोलारकर के, सन् १९२२ से कैप्टन लिमये के कथा-लेखन ने जो नया मोड़ लिया, वह मराठी कहानी की 'किस्मत' बदल देनेवाला था.

'किस्मत' से पहले लिखी गयी मराठी कहानियां आधुनिक कहानी की कसौटियों पर खरी नहीं उतरतीं. बहुत-सी कहानियां उपन्यास के सारांश जैसी लगती थीं. शायद कहानी-लेखकों के दिमाग में उपन्यास और कहानी का अंतर भी स्पष्ट नहीं था. लंबे-लंबे ब्यौरेवार वर्णन, बीच-बीच में अनावश्यक स्पष्टीकरण, व्याख्या आदि उस समय की कहानियों के प्रमुख दोष थे. उन कहानियों में वस्तुपरक यथार्थता का संपूर्ण अभाव था. सन् १९०७ के बाद आश्चर्यकथा, प्राणिकथा जैसी कल्पनानिष्ठ स्वच्छंद कहानियां लिखी गयीं. उनका भी अपना एक महत्व है ही. लेकिन 'किस्मत' और उसके बाद लिखी गयी कैप्टन लिमये की कहानियां, न केवल कहानी-कला की दृष्टि से उच्च कोटि की थीं, बल्कि उनमें पहली बार समकालीन जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया था. वस्तुतः कैप्टन लिमये ने अपनी 'किस्मत' से आधुनिक कहानी की नींव डाली जिस पर बाद में गंगाधर गाडगील, अरविंद गोखले, दि. बा. मोकाशी और पु. भा. भावे जैसे सशक्त कहानीकारों ने नयी कहानी की पुख्ता इमारत खड़ी की. कथा-समीक्षक राम कोलारकर के अनुसार 'इंद्रियगोचर यथार्थ के माध्यम तथा भ्रम तोड़ देने की दुःसह प्रक्रिया के द्वारा जीवन की अपरिहार्यता का निर्मम दर्शन करानेवाली यथार्थवादी कहानी लिखने के लिए गो. गं. लिमये सामने आए, कैप्टन लिमये को कॉमेडी से त्रासदी अधिक प्रिय थी. 'किस्मत' भी एक दुःखांत कहानी है. मृत्यु का भय न केवल मनुष्य, बल्कि प्राणि मात्र की मूलभूत भावना है. हर कोई मौत से बचना चाहता है लेकिन वह नहीं जानता कि बहुत बार मृत्यु से बचने की हर संभव कोशिश उसे मृत्यु के और ज्यादा करीब ले जाती है. मौत से दूर भागने के लिए जो रास्ता वह अख्तियार कर लेता है, वह दर असल मौत के पास पहुंचने का पास का रास्ता होता है. नियति के इस क्रूर खेल का शिकार है रामदयाल––'किस्मत' का नायक.

'किस्मत' घटना-प्रधान कहानी नहीं है. उसमें बल दिया गया है रामदयाल की मानसिक दशा के चित्रण पर. वह एक मामूली 'डोलीवाला' है जिसे युद्धभूमि पर मृत्यु का भय लगातार सताता रहता है. भय और आशंका से ग्रसित रामदयाल सदा अनिश्चय के अधर में लटकता रहता है. उसमें न निश्चित निर्णय लेने की क्षमता है, न अपने निर्णय पर दृढ़ता से अमल करने की. यही उसके दुःखमय अंत का कारण है. 'किस्मत' में रामदयाल के अंतर्द्वंद्व पर बल देने के कारण वह जितना अपने आप से बातचीत करता हुआ दिखाया गया है, उतना दूसरों से नहीं. फिर भी रामदयाल और 'ड्रेसी बाबू!' के संभाषण में स्वाभाविकता है और रामदयाल का स्वगत-कथन उसके मानसिक संघर्ष को उजागर करता है.

युद्धभूमि का जीवंत वातावरण पैदा करने में कैप्टन लिमये की सफलता ताज्जुब की बात नहीं है क्योंकि युद्ध उनके लिए 'भोगा हुआ यथार्थ' था. पहले विश्वयुद्ध में वे मोर्चे पर गए थे और मौत के साये में पलती जिंदगी देखी थी और अप्रत्याशित रूप से आनेवाली सस्ती से सस्ती मौत भी. और जो कुछ भी देखा था, तटस्थता से देखा था और अपनी कहानियों में चित्रित किया था. युद्धभूमि का चित्रण करने के लिए कल्पना का सहारा लेने की उन्हें कतई जरूरत नहीं थी. कॉलम, किट बॅग, फॉल इन, नोटिस, रिटायर इत्यादि फौजी जीवन से संबंधित अंगरेजी शब्द 'किस्मत' में सहज रूप में आए हैं. यही नहीं, ध्वनि-प्रभाव पैदा करनेवाले शब्दों ने वातावरण के निर्माण में सहायता की है. प्रवाहमयी शैली आखिर तक पाठक की औत्सुक्य भावना को बनाये रखती है. रामदयाल का अंतर्द्वंद्व जब पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है, तब कहानी ही समाप्त हो जाती है. ओ. हेनरी की कहानियों की तरह 'किस्मत' का अंत सिर्फ झटका देनेवाला ही नहीं, बेचैन कर देनेवाला भी है क्योंकि 'किस्मत' रामदयाल ही के जीवन की त्रासदी नहीं, समूचे मानव जीवन की त्रासदी है. □□□

प्रवासी

• दिवाकर

एक ऊबड़खाबड़ रास्ता. बहुत-से लोग रास्ते में बातचीत करते हुए खड़े हैं. सूर्य का प्रकाश धूमिल हो जाने के कारण आसपास कुछ दिखाई नहीं दे रहा है. प्रवासियों में से तीन-चार वृद्ध हैं, शेष में से कोई मध्यम आयु का है तो कई युवा हैं. दस-बारह वर्ष के दो-तीन बालक अपने पिता को ताकते हुए खड़े हैं.

दादा अपने को अभी और कितनी दूर जाना है! हमारे पैर दर्द करने लगे हैं.

★

नजदीक ही आ गया है, बच्चों.

★

हां, ऐसा तो आप कितनी बार कहते आये हैं. नजदीक आ गये हैं, नजदीक आ गये हैं. हमेशा यही कहते हो, लेकिन दूरी कभी खत्म नहीं होती. ये क्या है? एक बार बतला दीजिए, कितने नजदीक आ गये हैं? चलने से हम बहुत तंग आ गये हैं.

★

ये क्या पागलपन है! ऐसा कौन-सा धुंधलका हो गया है! मैं ये कैसे बतालाऊं कि नजदीक आ गये हैं.

★

फिर आप यह कैसे कहते हैं कि नजदीक आ गये हैं?

★

चुप बैठ! बदतमीज कहीं का. अभी तक बड़ों से कैसे बात की जाती है, इसकी अकल नहीं है.

★

चुपचाप चलने की बजाय, बकबक लगा रखी है! ठीक है लेकिन हम कहां आ पहुंचे हैं?

★

मुझे लगता है, हम रास्ता भटक गये हैं.

★

नहीं-नहीं, यही वह रास्ता है.

★

कैसे कह सकते हैं कि यह वही रास्ता है.

★

कैसे कह सकता हूं? मुझे ऐसा लगता है इसलिए!

★



सब कुछ गड़बड़ है. रास्ता भटक गये हैं या रास्ते पर हैं, कुछ समझ में नहीं आता है.

★

और उस पर कहां आ पहुंचे हैं, यह भी समझ नहीं आता! हम दो-एक मील तो पहुंच ही गये होंगे

★

इतना ही थोड़े चले होंगे! कम से कम ढाई-त मील तो चले ही हैं.

★

तीन मील? इतनी ही दूरी कैसे हो सकती है? मु तो लगता है कि हम चार-पांच मील तय कर चुके

★

हं:! चार-पांच मील कहां तय किया है? अभी एक मील भी तय नहीं किया है.

★

क्या मील भर नहीं हुआ? उस गांव को छो हुए घंटे, डेढ़-घंटे तो हो ही चुके होंगे.

★

बहुत हुआ होगा तो आधा या पाव घंटा.

★

हां-हां, इतना ही समय हुआ होगा.

★

नहीं-नहीं! अच्छा खासा-समय हो चुका है.

★

हम जिस गांव से आये हैं, उस गांव का नाम मजेदा है कि नहीं? मुझे तो अभी भी रह-रहकर हंसी आ रही है. क्या है? किसी को याद है क्या?

★

नहीं भई, मुझे तो बिल्कुल याद नहीं आ रहा है.

★

क्या था? टरगुन गुड़गुड् गुड् ऐसा ही कुछ था!

★

नहीं-नहीं! यह नहीं. कोई और ही नाम है!

★

जाने दो! उससे करना क्या है! ऐसे कितने ही गांव हमारे प्रवास में आयेंगे. कौन याद रखता है! हमारे ठहरने का स्थान शायद धर्मशाला हो, नहीं तो शायद किसी मंदिर में ठहरकर कुछ अपने हाथों से बनाकर, कुछ देर सोकर, हंसी-खुशी आगे चल देंगे. गांव में क्या रखा है! ठीक है या नहीं? और फिर इतना सब देखने-सुनने की फुर्सत किसे है!

★

हां और क्या! और अब हम किस गांव में जा पहुंचेंगे और किस में नहीं, इसका भी क्या भरोसा.

★

हं! -हं! हम चला ही तो रहे हैं.

★

तो फिर अब चलो न आगे. यहीं पर कितनी देर खड़े रहेंगे?

★

आगे क्या चलें? धुंधलका कितना छा गया है! उस पर कहते हैं, चलो.

(आगे पृष्ठ ७७ पर)

वंदे भगवती

• ए. रमेश चौधरी 'आरिगपूडि'

हम सब कटीले तार पकड़े खड़े थे, उससे परे हम जा नहीं सकते थे. वार्डरों का सख्त पहरा था. तार ड़ भी देते, तो भी उनसे बच कर भाग निकलना संभव था. तैश में थे, उबल रहे थे, लाचार थे.

और तार के परे, वार्डरों से परे, ऊंची दीवार के पीछे से, जोर से आवाज आयी—वंदे मातरम—वंदेमातरम गोपाल कृष्ण को कोड़ों की सजा दी जा रही थी. हर कोड़े के साथ वह 'वंदेमातरम' का नारा लगाता. सात कोड़ों के बाद, उसकी आवाज बंद हो गयी—कोड़ों की आवाज भी. वह बेहोश हो गया होगा.

सन बयालीस की बात है यह. इतने वर्ष गुजर गये हैं. पर इस घटना की याद ऐसी है, जैसे कल ही यह गुजरी हो.

तब भी कई तरह की बहादुरी दिखाई थी. असाधारण साहस, और सहिष्णुता का परिचय दिया था, पर मैं उनको व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता, न मेरा उनसे उस तरह का भावुक संबंध ही था, जिस तरह के गोपाल कृष्ण से था.

वह मेरा मित्र है—अब तो खैर हम बिछुड़े हुए हैं. पर उस समय उससे अधिक घनिष्ठ मित्र मेरा कोई न था. अब दोनों के शायद अलग रास्ते हैं, पर 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय, हम दोनों का रास्ता एक ही था जो जेल की चार दीवारी में खत्म हो गया था.

जेल आने से छह महीने पहिले मैं उसकी शादी पर गया था. उसकी नवेली पत्नी का लजीला चेहरा अब भी मन में तैर रहा है. दोनों ने एक दूसरे को फूलों से लाद दिया था, अलौकिक दृश्य था. दो प्राणी एक ही मंच पर, सदा के लिए एक दूसरे के हो गये थे.

गोपाल कृष्ण बड़ा हट्टा-कट्टा था, गेहुंआ रंग, मुंह पर विचित्र शालीनता, और इस सबको यौवन का सहज अलंकरण. और उस पर कोड़े, खून की नदियां, खुले घाव—फिर भरे दाग, कटु स्मृतियों के चिर चिन्हों की तरह.

वह मेरे बाद जेल आया. वह भी वही काम करते पकड़ा गया था जिसे मैं करता पकड़ा गया था, यानि पुलिस चौकी पर धावा बोलने, और वहां से बंदूक उड़ा ले जाने के कारण. उस पर भी वही इल्जाम थे, जो मुझ पर थे. पर सजा दोनों को अलग-अलग हुई. हम दोनों के न्यायाधिकारी अलग-अलग थे. कहते हैं कानून अंधा है, इसका जीवंत उदाहरण गोपाल कृष्ण है, उसे दो वर्ष की जेल के साथ सोलह कोड़ों की सजा भी दी गयी थी, जो मुझे नहीं दी गयी थी.

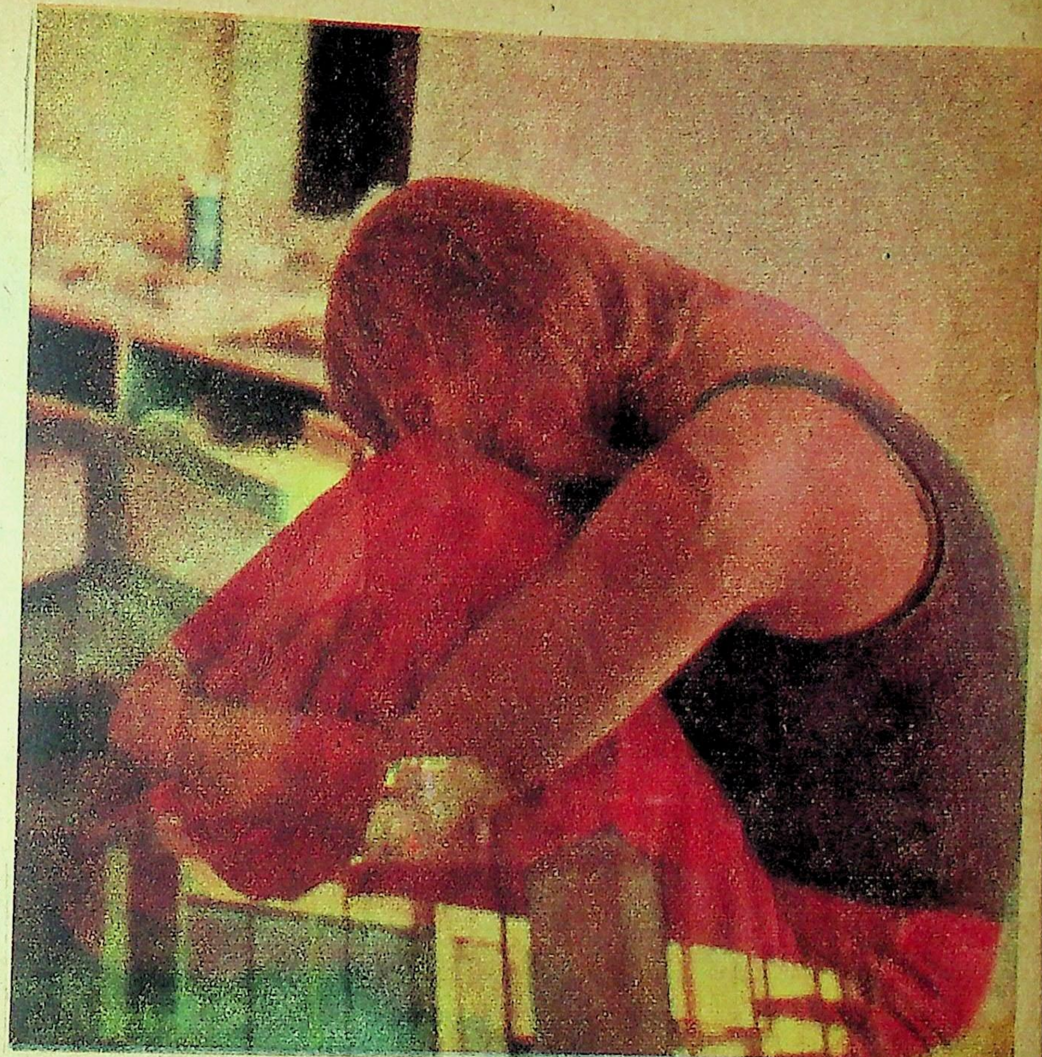
अगर यह सजा मुझे होती तो मैं शायद उस बहादुरी से उसे न झेल पाता, जिस बहादुरी से उसने झेली थी. मैं उससे ज्यादह ताकतवर नहीं हूं, पर मुझे उसकी तरह फूलों पर भी नहीं पाला गया था. मैं कांटों का आदी हूं. वह तो रईस घराने का इकलौता लड़का था. उसके मां-बाप एक साधारण शिक्षणालय में भेज कर उसे संसार की वास्तविकता से परिचित कराना चाहते थे, मेरे लिए उस शिक्षणालय में जाना भी भाग्य की सबसे बड़ी देन थी. वहीं हमारी मैत्री हुई. और धन-दौलत की दीवारें होते हुए भी, वह बेमेल मैत्री न थी. उस शिष्ट, अभिजात परिवार के कोमल तरुण, भावुक युवक को कोड़े की सजा दी गयी. गोपाल कृष्ण ने अपने मां-बाप को इस सजा के विरुद्ध अपील भी न करने दी. अदालत में उसने वकीलों को भी बोलने न दिया, वह उस सरकार को ही अस्वीकार करता था, जो उसे सजा दे रही थी.

मैंने बहुत से सत्याग्रही देखे हैं, मैं स्वयं एक रहा हूं, पर उस जैसा सत्याग्रही नहीं देखा. लेकिन? तभी तो आश्चर्य होता है जब यह सोचता हूं कि वह क्यों कर बैठा, जो उसने बाद में किया. क्यों न वह शहीद हो गया? क्यों शहीद होते-होते उसके पैर कांप उठे, और पीछे हट गये? कैसे उस गले से, जिसमें वंदे मातरम का पुनीत नारा पावन गंगा की तरह निकला था, कोई और बात निकली? खैर.

सजा के बाद उसे जेल के अस्पताल में भेजा गया. वार्डरों की खुशामद कर करा कर, मैं उसे देखने गया! सारी पीठ की चमड़ी उतार दी गयी थी. लाल लाल मांस पर कोड़े के दाग. बड़ा दर्द रहा होगा, पर वह कराह भी न रहा था, मुंह पर एक अजीब दर्दभरी मुसकान थी.

मैं उससे क्या कहता, और क्या पूछता? उसमें सिवाय आंखें फाड़ कर देखने के और कोई ताकत न थी. चेहरा पथरा गया था. वह यह भी न चाहता था कि कोई यह जाने कि उसे अत्यंत दर्द हो रहा था. वह उस समय बेहोश तो न था, पर एक तरह की बेहोशी-सी थी, जिसमें होश के सब दर्द और भी भयंकर हो उठते हैं. जिस मुख से कराहट ही न निकली हो बात क्या निकलती? उसने एक क्षण मेरी ओर देखा, और फिर सिर मोड़ लिया.

उसका जमा जमा, मुरझाया हुआ चेहरा, बड़ी-बड़ी नादान चुप आंखें, अब भी मेरा पीछा करने लगती हैं. कहती-सी लगती हैं, आदर्श आदर्श है, मानवता



● रतन प्रकाश

भी कुछ है. बलवानों में भी दुर्बलताएं होती हैं. वह फिर दुर्बलता भी क्या जो स्वाभाविक हो?

गोपाल कृष्ण के बारे में ही हर कोई जेल में बातचीत कर रहा था. सब उसकी प्रशंसा कर रहे थे. उसके साहस, सहिष्णुता, और शालीनता पर चकित थे. अखबारों के लिए भी जेल के साथियों ने चोरी-चोरी खबर भेज दी थी, देश में उसकी चर्चा हो रही थी, और मैं खुश था कि मेरे साथी ने देश के लिए वह कष्ट खुशी-खुशी सहा जो मैं न सह पाया था. वह मेरी नजर में साथी न रह कर यकायक एक आदर्श पुरुष हो गया था. किंतु?

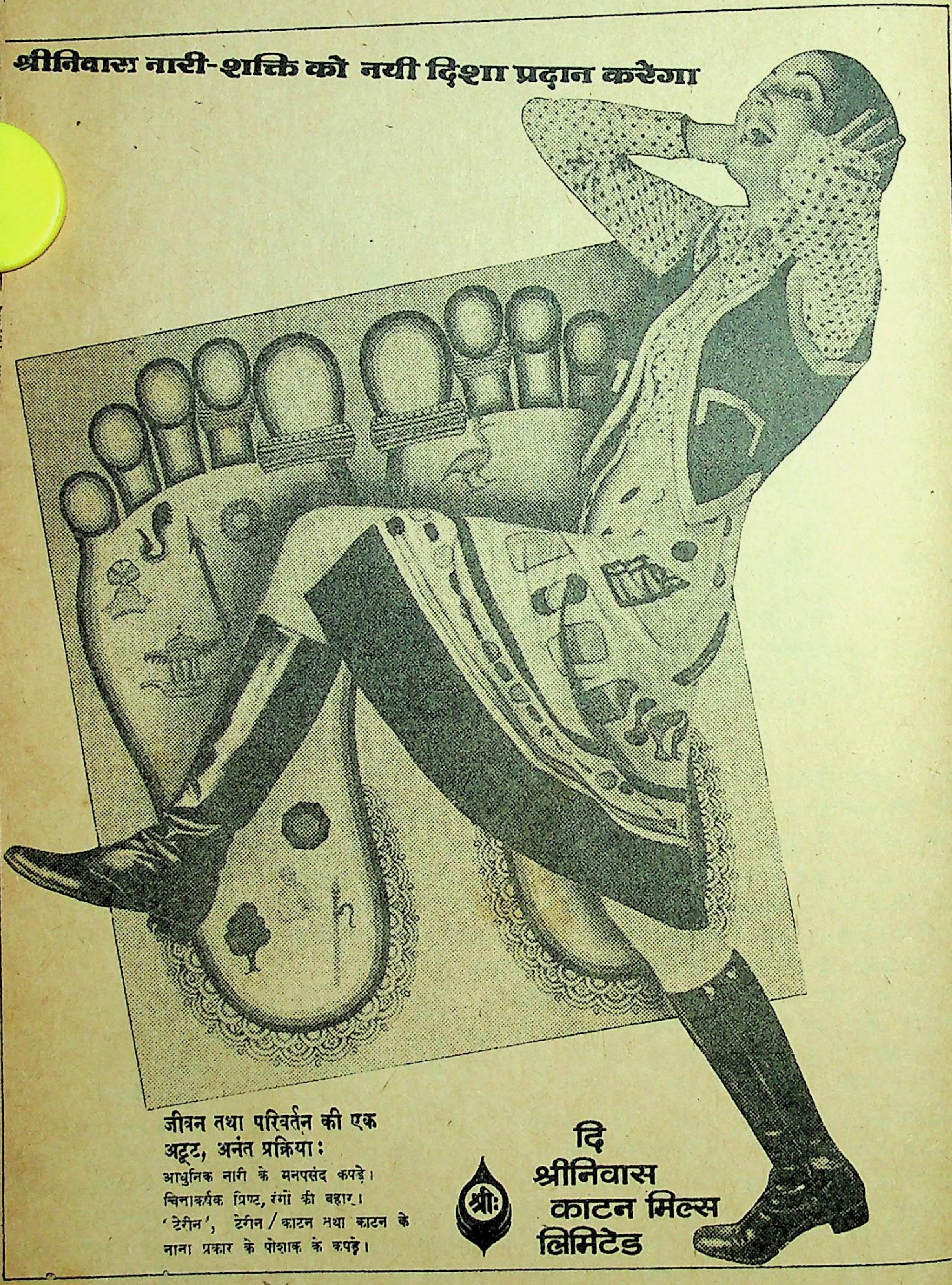
उसके माता पिता आये, पत्नी आयी. सुना गया कि वे जेल के फाटक पर थे. जेल सुपरिंटेंडेंट से गोपाल कृष्ण को देखने की अनुमति पाने का प्रयत्न कर रहे थे, सुपरिंटेंडेंट शायद अनुमति दे भी देता, यदि गोपाल कृष्ण स्वयं उनको देखने से इनकार नहीं कर देता--- यह भी एक विचित्र आभिजात्य व्यवहार था, जिसमें मानवता थी भी और नहीं भी थी.

दो-चार दिन बाद, मुझे फिर गोपाल कृष्ण को देखने का मौका मिला. वार्डर खुद मुझे बुला कर ले गया था. मुझे आश्चर्य हुआ. जेल में यह प्रायः न होता था.

हास्पिटल वार्ड में पहुंचा तो देखता हूं कि गोपाल कृष्ण तकियों के सहारे अपने बिस्तर पर बैठा था, चेहरे पर अजीब मुसकराहट थी, और उसकी बगल में एक विदेशी नवयुवती खड़ी थी. विदेशी वेषभूषा में मुझे उसकी पीठ ही दिखाई दे रही थी. मेरी उत्सुकता उभरी.

बिस्तर के पास पहुंचा तो उस महिला ने स्नेह भरे मंदहास के साथ मेरा स्वागत किया. पर वह वहां क्यों थी? वह हमारे जेल सुपरिंटेंडेंट की लड़की थी. कभी-कभी अपने पिता के साथ हमें देखने जेल में आ जाती थी. उसके आते ही जेल में एक अजीब-सी लहर उठती थी, सहसा दबी हुई, सोई हुई एंद्रिक लालसा मन में फुंकारने लगती थी. राजनीतिक कैदी उसे देखने सीखचों के पास खड़े हो जाते थे, और उसके आंखों से ओझल होने तक उसे देखते रहते. बड़ी खूबसूरत थी वह. बड़ी कशिश थी उसमें. हममें से कई सोचते थे कि सुपरिंटेंडेंट हमें चिढ़ाने के लिए उसे अपने साथ लाता था.

लेकिन वह यहां क्यों है? गोपाल कृष्ण को भी क्या चिढ़ाने की कोशिश की जा रही है? सुपरिंटेंडेंट


श्रीनिवास नारी-शक्ति को नयी दिशा प्रदान करेगा
जीवन तथा परिवर्तन की एक
अटूट, अनंत प्रक्रिया :
आधुनिक नारी के मनपसंद कपड़े।
चित्ताकर्षक प्रिण्ट, रंगों की बहार।
'टेरीन', टेरीन / काटन तथा काटन के
नाना प्रकार के पोशाक के कपड़े।
श्रीः
दि
श्रीनिवास
काटन मिल्स
लिमिटेड

की लड़की हो तो हो किंतु वह जेल के नियमों के खिलाफ एक कैदी को देखने नहीं आ सकती थी. फिर वह यहां क्यों है?

—यह हैं मिस हाऊ, गोपाल कृष्ण ने आभिजात्य शिष्टता के साथ मेरा उनसे परिचय करवाया.

—हां, हां, ये अपने अंग्रेज सुपरिंटेंडेंट की लड़की हैं न?

—अंग्रेज नहीं, आयरिश, मिस हाऊ ने मुसकरा कर कहा.

—हमारे लिए सभी गोरी चमड़ी वाले अंग्रेज ही हैं. मैंने शिष्टता का बिना खयाल किये कह दिया.

—हूं, उस महिला की मीठी मुस्कराहट ने मुझे शांत कर दिया, और मैं महसूस करने लगा कि मैं गलती कर बैठा.

—मैं अपने पिता की लड़की होने के सिवाय क्या कुछ भी नहीं हूं? मैं अठारह साल से बड़ी हूं. उस महिला की मुसकराहट में अब कुछ शरारत खो गयी थी. वही चुलबुलापन जो हमें दूर से ललचा कर चली जाती थी.

—उम्र छुपाने का मर्ज शायद स्त्रियों को ढलती जवानी में ही होता है. आप तो अट्ठारह की भी नहीं लगतीं? यह बात प्रथम परिचय की शिष्टता के प्रतिकूल ही थी, लेकिन मेरे मुख से निकल ही पड़ी.

—खैर, अब आपके मित्र कुछ ठीक हो गये हैं; तकिये के सहारे बैठ सकते हैं, क्यों मि. कृष्ण? उसने बड़े प्यार के साथ गोपाल कृष्ण की ओर इशारा किया.

—सब आपकी मेहरबानी है, मिस हाऊ की मेहरबानी न होती तो शायद मैं ... गोपाल कृष्ण कहता-कहता कुछ सकुचाया.

—नहीं, मैंने तो अपना कर्त्तव्य किया है. मिस हाऊ ने कहा.

—और ऐसी जगह, जहां मामूली मानवीय कर्त्तव्यों का भी पालन नहीं होता है, इसलिए आपने जो कुछ मेरे लिए किया है, उसकी महत्ता और भी बढ़ जाती है. मैं आपका एहसान नहीं भूल सकता. गोपाल कृष्ण ने कहा. उसकी बातों से अनुमान किया जा सकता था कि उसके घाव करीब-करीब भर गये थे.

गोपाल कृष्ण ने बताया कि जब से उसे कोड़े लगवाये गये थे, तभी से वह आ जा रही थी. और उसकी हर तरह से सेवा कर रही थी. पिता कोड़े लगवाये, और लड़की घाव सहलाये—विचित्र बात थी.

आंदोलन चल रहा था, बहुत सी बातें थीं, जो हम पुलिस से छुपाये हुए थे, कहीं यह लड़की सरकारी भेदिया तो न थी, जो इस तरह गोपाल कृष्ण से भेद पाने के लिए उसकी सेवा शुश्रूषा कर रही थी?

आयरिश ही सही, थी तो वह गोरी जाति की ही, फिर वह मिशनरी भी न थी, क्या वह गोपाल कृष्ण की यूं देख भाल कर रही थी? और क्यों गोपाल कृष्ण ने, जो उस हालत में मां-बाप, पत्नी तक को नहीं देखना चाहता था, इसको पास आने दिया?

संपन्न परिवार का लड़का है? गोरी ही सही, है तो एक वेतन पाने वाले सुपरिंटेंडेंट की लड़की ही? हो सकता है, उसे फंसाना चाहती हो!

मेरे मन में यूं संदेहों का बवंडर-सा उठ रहा था, और गोपाल कृष्ण मेरे सामने मुसकराता-मुसकराता लेटा था. वह मुसकराहट, जिसमें विवशता थी, निश्चिंतता थी, कृत्रिमता थी. हम दोनों में कोई खास बातचीत, सिवाय कुशल प्रश्नों के नहीं हुई.

मैं उससे विदा ले कर आ रहा था कि मिस हाऊ उसके लिए एक बड़ी ट्रे पर, अंग्रेजी खाना ले जा रही थीं. वह जेल का खाना न था. वह अवश्य उसे अपने घर से ला रही थीं. ...इतना कुछ मैंने उसके बारे में सोचा था कि मैं और कुछ न सोचना चाहता था.

थोड़े दिनों बाद, गोपाल कृष्ण जेल के हास्पिटल वार्ड से घर चला गया. हमने सुना कि उसने सरकार से माफी मांग ली थी, हमें आश्चर्य हुआ और अफसोस भी. यह भी सुनने में आया कि उसकी पत्नी स्वयं उसको लिवा लेने जेल के फाटक पर आयी थी.

गोपाल कृष्ण का यह कार्य हमें नितांत लज्जाजनक लगा. अगर पत्नी को ही इतना चाहता था, तो जेल क्यों आया था? जेल से माफी मांग कर ही जाना था, तो क्या आदर्शवादी सत्याग्रही का दिखावा करता रहा?

और तो और, मिस हाऊ स्वयं उसके कारण लज्जित थीं, वे सोच रही थीं कि वे "देश भक्त" की सेवा कर रही थीं, पर वह तो एक कामुक कायर निकला.

अगर उस समय मैं कोई नारा लगा पाता तो लगाता —वंदे भगवती.

मिस हाऊ को शायद नहीं मालूम कि एक प्रकार से वह ही गोपाल कृष्ण के इस 'निन्दनीय', कार्य की कारण थीं.

आज जब मैं जीवन की ढलान पर हूं, तो सोचता हूं देश प्रेम से परे भी कुछ ऐसी शक्तियां हैं, जो उससे कहीं अधिक प्रभावशाली और बलवती हैं. तब तो अनुमान नहीं कर पाया था, पर आज अनुमान कर सकता हूं, कि उसके पीछे एक ऐसी स्वाभाविकता थी, जो देश भक्ति के बौद्धिक आदर्श से कहीं अधिक शक्तिशाली है.

और शायद मिस हाऊ नहीं जानतीं कि उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार ने ही अमूर्त देश भक्ति से गोपाल कृष्ण को वास्तविक पारिवारिक प्रेम की ओर प्रेरित किया था. □□□

१३८, शेनोय नगर, मद्रास–३०

कब तक?

• हृदय लानी

एड़ी को खुद ही तग्गे सेठ से मुंह-दर-मुंह बात करने सायन-कोलीवाड़ा जाना पड़ा.—नई मंगता तुम्हारा माल! मंगता ए भाव बदली करो. माल का शिकायत गिराहक नईं करना मांगता.

और झूठ क्यों बोले. . .गयी वह गणपति के दरसन करने भी थी. इसलिए उसने बदरू से आज आने के लिए कह दिया था. बदरू बहुत बेचैन था. शादी भले ही बना ली हो, लेकिन एड़ी की जिद थी कि गणपति के दरसन से पहले वह बदरू को हाथ तक नहीं लगाने देगी.

अलेग्जेंड्रा सिनेमा के बस-स्टॉप पर उतर कर एड़ी ने ठिकाने पर पहुंचने के लिए लंबे-लंबे डग भरे.—देर हो गयी मेरे को. . .आ गिया होएंगा. . .

शाम कोठों पर बैठ चुकी थी. शीः . .शीः की आवाजें और भोंड़े इशारे नीचे उतर रहे थे. चालू मेकप किये हुए कुछ दादा किस्म की छोकरियां, एड़ी के फुटपाथ से सटे खंबे के आसपास, पंडित और जाड्या ईरानी होटल में बैठी पुरानी फिल्मों के गाने सुनतीं, गिराहकों को ताड़ने लगी थीं. बढ़ती हुई आमदरफ्त के साथ-साथ सस्ते इत्र की बू बदबू की तरह फैलती जा रही थी. 'मतलब' के लिए आये हुए लोग नसों की तरह फैली हुई गलियों में खोते जा रहे थे. सिनेमा हॉल से सटी बिल्डिंग की नेपाली छोकरियां, पहले से चौथे माले तक की खिड़कियों की चौखटों में सज चुकी थीं. . .और पंडित चाय वाले होटल के सामने मंगती का धंधा करने वाला मदकची अपने सामने कपड़ा बिछा कर, घुटनों और माथे के बल उकड़ूं लेट चुका था.

पंडित चाय वाले को एक 'पेशल' चाय का ऑर्डर दे कर एड़ी छोटेखान के क्लब के नीचे, बरामदेनुमा फुटपाथ पर पड़ी अपनी खाट की तरफ बढ़ गयी. लड्डन मालिश वाला हमेशा की तरह आंखों में काजल डाले होटल के बाहर चंपी कर रहा था. चालू खोपड़ी छोड़ कर, एड़ी के पास आ कर उसने खबर दी कि उसका मेहमान आया है.

भारी-भरकम बदरू, बोझ की तरह छोटी-सी खाट पर पड़ा खर्राटे ले रहा था. खाट के पायों के नीचे उसकी नयी चप्पलें दबी थीं.

छोकरियों के गुट से चुहलबाजी करता हुआ ड्यूटी का लाखू हवलदार एड़ी को देख कर आया.

—माल आ गिया ए तेरा. . .

—आ गियां?. . .किदर. . .?

जाड्या होटल के सामने उकड़ूं बैठा हुआ एक घिनौना छोकरा थैला लिये हुए सड़क पार करके आया. थैले में से बरगद के पत्ते झांक रहे थे. एड़ी ने धंधे पर काम करने वाले गोल-मटोल छोकरे को आवाज दी. और फिर थैले वाले छोकरे से बोली—ये पत्ता डाल मेरी बन्नो के सामने. छोकरे ने थैले के पत्ते खंबे से बंधी हुई बकरी के सामने डाल दिये. ब्लैडर निकाल कर लकड़ी के एक जर्जर दरवाजे में कलिजर के पीछे-पीछे घुस गया.

* *

बदरू ने करवट ले ली थी. खाट की बची हुई पाटी पर एड़ी बैठ गयी. पंडित चाय वाले होटल का बाहर वाला छोकरा चाय लिये खड़ा था.

आधी चाय प्लेट में उंड़ेल कर एड़ी ने सर पर खड़े हुए लाखू हवलदार को दे दी. कप की बची हुई चाय एक घूंट में पीते हुए उसने कप नीचे रख दिया. कमर में खुसे पनथैले से एक रुपया निकाल कर एड़ी ने लाखू को थमा दिया.

—ये क्या! लाखू ने मुंह बना कर रुपया फेंक दिया.

—ऐ ऽ ए ऽ ए ऽ घाटी! एड़ी बोली. रोकड़ा फेंकता है. काए का रुआब रे. . .वरदी का? उसीका रोकड़ा दे रैली मैं, नईं तो. . .कौन साला तेरे को पुछता था. . . चाऽल उठा रुपया. . .!

लाखू ने रुपया उठा लिया—एक और दे. . .

—चल. . . चल, देंगा. . .बाद में आने का. . . मोनी नीं. .बट्टा नीं. . .चल रे कलिजर, चाऽ बोल एक, छोकरे कूं. . .

उसी फुटपाथ पर थोड़ा हट कर छोटेखान क्लब के 'खेली' छोकरों के साथ दम मारने लगे थे. एड़ी उधर देख कर चिल्लायी—ए. . .! तुम लोग को दूसरी जगा नईं? साला मेरे को भी नस्सा होता ए धुएं से. . . बकरी की तरफ देख कर मुसकरायी— मेरी बन्नो को हो गिया तो. . .फ़ाइडे को बच्चा देंगी वो.

—एड़ी है. . .क्लब की सीढ़ियां उतरता हुआ भगवती गल्ले वाला मुसकरा कर बोला. काए को बूम मार रैली, एड़ीऽ?. . . . मेमान की खातिर-वीतर कर न. . .

—तू रैन दे. . .एड़ी बोली. मेमान को तेरे सर पे नईं बुलाया ए भगवती. . .अपना छोकरा लोक का चंडूखाना हटाव इदर से. . .क्या साला धुआं-धुआं. . .

—तू जलती है! भगवती हंसा. तेरा धंधा दारू का है न. . .!

—जले तेरी जबान, एड़ी ने ऊपर देखा. देने वाला वो. . .मैं काए को जलेगी. . . ?

चाय वाले छोकरे को देख कर एड़ी ने बदरू को हिलाया.

गरदन उचका कर मुंह में भरा हुआ लुआब बदरू ने ठक से सोडा बॉटल के बुच की तरह नाली में उछाल दिया. छोकरे से पानी का गिलास ले कर एड़ी ने बदरू को थमा दिया. बदरू ने पानी की एक पीक मार कर मुंह धोया. कागज का टिप्पा लगे हुए नये रंगीन

रूमाल से उसने मुंह पोंछ कर बालों में कंघी फेरी.

—नईं, नईं. . .मैं अब्बी पिया, एड़ी ने चाय के लिए मना किया.

—आओ. बदरू भगवती के बेडौल चेहरे को देख कर मुसकराया.

—बोलो, कहते हुए भगवती ने बदरू के हाथ से प्लेट ले ली.

—बस कर. . .बस कर. . .झटके से उठ कर एड़ी ने खंबे से बंधी हुई बन्नो के मुंह से बरगद के पत्ते खींच लिये. मां बनने जा रैली ए तू. . .ऐसे टाइम में इतना खाते क्या!. . .में-में नईं. . .थूथन तो डालेगी. . . तेरा चलन अच्छा होता तो अस्पताल में बच्चे होते तेरे!. . .

* *

—ऐ ऽऽ लड्डुन. . .चल इधर. . .एड़ी ने आवाज दी. बदरू की तरफ देख कर बोली—इसका चंपी कर दे, बरोबर, हाथ-पांव दबा के. .बिंदास कर दे. . .

लड्डुन अपनी 'चौरंगी' ले कर बदरू की तरफ जाने लगा. बदरू बोला—अरे नईं रे. . .चंपी-उंपी मेरे को नईं कराने का. . .

—नईं कराने का!. . .एड़ी ने डांटा. . .समझता ए कुछ! जासती फैसन नईं करने का. . .चंपी-मालिस से बदन को कितना कस मिलता. . .

—भोत. लड्डुन बोला. . .अक्सीर बोलो. . .पीछे हमाम में न्हा के आओ. . .फिर देखो कइसा हलका-हलका बदन. . . फूल के माफक. लड्डुन ने गमछा झटक कर बदरू की पीठ पर डाल दिया.

—हां भाई. . .बदरू बोला. . .अपने सिक्सन में बुला के मेरी चंपी करवा रैली ए. . .

लड्डुन बदरू और एड़ी को बारी-बारी से देख कर थोड़ी देर तक हंसता रहा.

अलेग्जेंड्रा सिनेमा वाली बड़ी सड़क से इस तरफ मुड़ती हुई गश्त की गाड़ी दिखायी दी. सड़क पर खड़ी और टहलती हुई छोकरियों में भगदड़ मच गयी. जानवरों की तरह इधर-उधर, जिधर सींग समाये—होटलों, गलियों, खोलियों में भागीं.

गलियों में पड़ी खाटों पर बैठी हुई छोकरियां छिटक कर दहलीज के उस तरफ लपकीं.

इस टाइम छोकरियों का धंधे के लिए सड़क पर टहलना, खड़ा होना कानूनन मना है. खोली में रहो, दरवज्जे के उस तरफ. . .'गिराहक' खोली पे आये तो बैठो—सो बिंदास. . .दूसरे की खोली पर खड़े 'गिराहक' को आंख उठा के भी देखना यहां की रीत के खिलाफ है.

साला खोटा, धंधा. . .! ये भी धंधा है कोई. . .




मेडिमिक्स
दवाई साबून
चर्म रोगों के लिए
डाक्टर लोग
सिफ़ारिश करते हैं
मुंहासे
काले धब्बे, खूट
फुन्सियां
अधौरी
बेवाई
खुजली
रूसी
धोबी फेन
MEDIMIX
AYURVEDIC TOILET SOAP
मेडिमिक्स एक बेहतरीन
नहाने वाला साबुन भी है।
इससे त्वचा की चिकनाहट
और खूबसूरती बढ़ती है।
CHOLAYIL PHARMACEUTICALS,
I, Palayakara Street, Madras-600 023
SUBHODAYA

पावली-आठ आने पे मुंह मारने वाले हवलदार को देख के भागो डर के. . .कोई भी आके पांच-दस का नोट फेंके और बिछा दे. . . ! छिः छिः!. . .

वह भी अपनी मां की बात मान कर यहां की इसी रीत पर चलती तो वह भी भागती होती इधर-उधर. वरना मां ने इस नरक में ढकेल देने में कोई कसर छोड़ी थी क्या? वह तो चलो, झगड़ा-लफड़ा करके बच गयी किसी तरह, पर सुंदरी फंस गयी 'गोदाम' के चक्कर में. . .जिसका एड़ी को अब भी अफसोस होता है. . .

सुंदरी को उसकी मां कहीं से बचपन में उठा लायी थी. 'कामचलाऊ' होते-होते सुंदरी के सर पर कर्जा ले कर एड़ी की मां ने 'गोदाम' में तैयार करके डाल दिया था. सुंदरी मान गयी, वरना किसी की क्या मजाल कि मरजी के खिलाफ छोकरी से धंधा करवा ले! नईं तो क्या. . . अपने माफक मैं सुंदरी को भी इज्जतदार धंधा करवा देती कोई.

सुंदरी के यहां एड़ी आती-जाती नहीं. . .कभी-कभी मन होता है देखने का. . .खोटी बहन ही सही. . . पर बहन बोला तो बहन. . .और फिर बचपन तो साथ-साथ निकाला है दोनों ने, मां के घर. . .एड़ी को धंधे वाली छोकरियों के साथ उठना-बैठना, चा-पानी पसंद नहीं. . .इसलिए उसकी किसी के साथ उठक-बैठक नहीं. एक फूला कमाठिन है और छोटकी. . .दोनों के यहां भी तो खानदानी धंधा था. नईं किया खोटा धंधा. कारखाने में मेहनत-मजूरी का काम किया. इज्जत वाली औरत मेरे सर पे आके बैठे, वांदा नईं. मगर आज सुंदरी से मिलने जायेगी, बदरू को ले कर. . .कि ले, देख ले. . .क्या करे, बिचारी खोटे धंधे में फंस गयी. . . है तो भैन. . .अब कौन धरमिंदर मिलेंगा उसकूं धंधा छुड़वाने वाला! तार-तार निकाल लिया है जमाने ने. . .इसकी जमाने की तो. . .

★ ★

——अरे बड़ी गपचुप बैठेली ए, एड़ी बाई! सुंदरी की खोली और आसपास की आठ-दस खोलियों में बरतन-भांडे घिसने वाली बाई थी. एड़ी की तरफ पांच का नोट बढ़ा कर बोली——अय एड़ी बाई. . .! मैं सुना तुम सादी बनाया. . .अरे कौन है वो सिकंदर. . .दिखा न, बाई!

हंस कर एड़ी ने बदरू की तरफ इशारा किया जो मालिश के बाद हम्माम जाने के लिए तैयार था. कलिंजर ने बाटली ला कर बाई को थमा दी. बाई ने आंखें छोटी करके बदरू को तौला. बाटली नीचे रख कर उसने कन-पटियों पर उंगलियां चिटका कर बलाएं लीं—— देवा रक्खे. . .! जैसी कौली तू वैसा कौला बो. . .कह कर बाई ने बाटली उठायी और जाने को हुई.

एक रुपये का नोट बाई को देते हुए एड़ी बोली—— ले बाई. . .चा-पानी कर.

——एऽ देवा, बाई हंस कर बोली, दिल वाली का गोदभर घाई कर. . .

——हट साली, एड़ी ने झिड़का. मेरी बन्नो को बोल. . . देखती नईं इसका हालत. . . नर बच्चा दिया कोई, तो नियाज के लिए सेवा करेगी उसका.

——होएंगा. . . होएंगा. . . उसकूं भी होएंगा. . .

——अरे अइसा कइसा! एड़ी सड़क पर देख कर बुदबुदायी.

फूला कमाठिन के भाई को पुलिस वाले ले जा रहे थे. एड़ी को देख कर फूला रुक गयी.

——तड़ी पार किया था इसकूं. . . वह बोली. . . आज घर आया था मिलने कूं. . . मुखबिर देखा इसको इधर. . . और अबी ये. . .

——क्या साला. . .जा-जा. . .एड़ी बोली. . .मुखादम जामनगीर को ले के जा. . .मांडवाली कर डाल सा'ब से नईं तो मारी पड़ेंगा. . . तड़ीपार का केस है रघड़ डालेंगा. . . समजा. . .!

——रोकड़ा नईं न. . . दागीना है. . . रखने-बेचने को टाइम मांगता न. . . कहते हुए फूला अपने झुमके उतारने लगी.

——अरे सोना रखने-बेचने को किदर टाइम मांगता? ए भगवती! एड़ी ने आवाज दी. फिर फूला से पूछा——रखने का . . . बेचने का?

——रखने का. . . छुड़ायेगी मैं.

——भगवती. . .! ये ले. . .सौ रुपया लाके दे इसकूं. . . मुसीबत में है. . . .

रुआंसी फूला को देख कर भगवती ने एड़ी के हाथ से झुमके ले कर परखे और क्लब की सीढ़ियां चढ़ गया.

——मुखादम किदर होएंगा? फूला ने पूछा.

——जाड्या ईरानी होटल के पीछे बाजू चंडूखाने में देख. नईं तो ग्यारा गल्ली में केरी के झाड़ के बाजू में जमना की खोली में पड़ा होएंगा. . . जा, घबरने का नईं. . . . वापिस आके बोल मेरे को. . . आं. . . कहते क्लब की तरफ देखा, भगवती सौ का नोट हाथ में लिये हुए सीढ़ियां उतर रहा था.

★ ★

. . .पांच का एक नोट एड़ी को दे कर कलिंजर बाटली लेने अंदर गया. गलियों में धंधा. . . बाटलियों की बिक्री और ठंड धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी. खाट के पास सिगड़ी सुलगने लगी थी. एक-दो छोकरियां और आसपास की दुकानों पर काम करने वाले छोकरे हाथ पांव सेंक रहे थे.

एड़ी खाट की तरफ आयी. . . . खाट पर बैठी हुई छोकरियां उठ कर जमीन पर बैठ गयीं. . .

——बस क्या लड्डन? बैठती हुई एड़ी बोली. मैं क्या बोली थी तेरे को. . . हाथ-पांव रगड़ के . . . हो गयी चंपी. . . .

——अबी मैं क्या करेंगा?. . . हटा दिया मेरे को. . . लड्डन इस तरफ आता हुआ बोला.

——वो तो हरामी है, एड़ी बोली.

——अबी मेरे को क्या मालुम! कहता हुआ लड्डन अपनी कुर्सी के पास मंडराते हुए 'गिराहक' को देख कर भागा.

——चलो छोकरियो, भागो. . . एड़ी हाथ सेंकती हुई छोकरियों से बोली. अबी इधर तुमेरा कोई काम नईं. . .

चलो धंधा देखो अपना. . . छोकरियां उठ कर जाने लगीं. . . —एड़ी को गाली नईं देने का. . .

★ ★

—अबे हरामी! . . . एड़ी चिल्लायी. . .

मंगती का धंधा करने वाला मदकची झगड़ा कर रहा था. . .

—मर जाएंगा. . . अइसा बूम मारेंगा क्या? दो दिन बाकी है तेरा. . . गपचुप जी लेने का. . .

—अबी तुम देखो एड़ी बाई, वह बोला. . . कल पंद्रा पाई का पाव लिया. . . आज बीस का बोलता. . . मैं बोला बरोबर. . . दस पाई कल देंगा. . . मेरे को सपना गिरता था क्या?

—तू रैता किदर है, मड़वे? एड़ी चिड़चिड़ायी. पता नईं तेरे को. . . इधर साल में छे टाइम मंगाई गिरता. . .

—पता क्या! मैं पढ़ेला-लिखेला क्या! . . . अपुन को तभी मालूम गिरता. . . जबी पाव पंद्रा का बीस हुआ चाऽ बीस का पच्चीस हुआ. . . एक आने में उस्सल-पाव होता था, मुंबई में. . . वह गिड़गिड़ाया—एड़ी मेन. . . तू बोल न. . . मैं दस पाई कल देता. . .

एड़ी दस का सिक्का उछाल कर बदहवास-सी आती हुई छोटकी को देखने लगी. . .

कलिजर ने मिमियाती हुई बन्नो की पीठ पर कपड़ा डाल दिया. आसपास से इकठ्ठा किये लकड़ी के टुकड़े और गत्ते सिगड़ी में डालने लगा. धुआं लगते ही एड़ी ने कलिजर को चपत मार कर गाली दी. कलिजर ने खीसें निपोर दीं. . .

—ए सकुंतला मेन. . . छोटकी बोली. . . सुन न. . .

एड़ी उठ कर छोटकी के साथ दो कदम चली. मुसकरा कर बोली— बोल. . . सकुंतला मेन, बोल. . . साली काम बोल. . . अबी किदर से आ रैली तू?

—सीधा कंपनी से. . . सेठ बोला, पइस कल देंगा. . . तू आधा बाटली दारू दे न!

—ए वेड़ी! तेरे कूं पता नईं. . . मैं खुचरे का धंधा नईं करती. कभी बाटली से कमती धंधा किया क्या?

—कुछ कर न. . .

—हां-हां. . . देती मैं तेरे को दारू. . . छोड़ दे! नौकरी-मजूरी करने वाली छोकरी का पीना खोटी बात!

—कस्सम से. . . छोटकी बोली, अपने लिए नईं. . . मां के लिए. . . दारू लेके नईं गयी तो घर में नईं घुसने दे. बोलती. . . किसी के पास 'बइठ' के ला. . . मगर ले कें आ. . . अबी. . . तू बोल मैं खोटा धंधा करेगी क्या? . . .

—नईं. . कब्बी नहीं. एड़ी रुपये निकालती हुई बोली, तू किदर और से ले ले. . . मेरे पास नौटाक-पाव सेर का धंधा नईं. . . अपनी मां को दारू पिलाने का सबाब तू लूटे. . . रोकड़ा मेरा. . . स्यानीऽऽ, पइसा कल वापिस देने का. . .

—देंगा. . . देंगा. . . कहती हुई छोटकी . . . पीने चली गयी.

एड़ी के खाट पर बैठते ही कलिजर उसे कुछ रुपये देता हुआ बोला— माल खलास. . .! दो-तीन बाटली होएंगा बस. . .

—वांदा नईं. . . एड़ी बोली. दो-तीन, जितना भी बाटली होवे, निकाल डाल. . . बंद कर. . . रोटी खाया?

कलिजर उसका मुंह ताकता रहा.

—चल भाग! . . . एड़ी रुपया देते हुए बोली. खा ले. . . एक चाऽ बोल उसकूं. . . अरे देख रे. . . बन्नो क्या कर रैली. . .

फूला आ कर खाट पर चुपचाप बैठ गयी.

—आ . . . एड़ी बोली. . हो गिया. . .?

—हो गिया, फूला ने बताया. . . छोकरा दो बरस के वास्ते 'तड़ीपार-हुकुम' में था. छोकरा बोलता दो बरस खलास हुआ. पुलिस बोलता, इधर चोपड़ी में लिखंत-पढ़ंत नईं. . . कइसा हो गया दो बरस. . .? चारज मारेंगा!

—हां. फिर?

—मुखादम सा'ब को बात किया. . . सौ का नोट लिया. बोलता बीस रुपया और देव. . . .!

—मुखादम! एड़ी बोली. उस मां का यार को एक पइसा नईं देने का . . . लिया होएंगा. . .

—मैं जाती, फूला उठती हुई बोली. . . तेरे को बोलने आया बस. . .

—जा. . . आने का फिर. . . फूला, चाऽ पी के जा ना. . !

पर फूला चली गयी. एड़ी ने छोकरे के हाथ से चाय ले ली.

★ ★

बिजली के खंबे की गोद में पीक भरता हुआ भगवती एड़ी के सामने आ कर बैठ गया— बचेंगा नईं. . .!

—कौन रे? एड़ी ने पूछा.

—छोकरा. . . भगवती बोला. . वो कलिजर के माफक एक छोकरा होता था न. . . पालिस वाला . . . वेवड़ी का छोकरा.

—कौन. . .? छोटकी का भाई? एड़ी ने पूछा.

—हां-हां. . . खीसे में बुरुस-पालिस डाल के टिरेनों में फिर-फिर के धंधा करता था. . . टिरेन का हड़ताल हुआ. . . उसका धंधा बंद. . . उसके पास पेटी तो है नहीं. . . जो जंटलमैन पालिस कराके रुपया देंगा. . . किदर-किदर करके दो रुपया कमाया बिचारा. . . घर आया. दो रुपया उसका मां ले लिया. . रोटी नईं दिया. . . लात मार के बाहर किया. . . वो. . . घासलेट पी गया. . . अस्पताल ले गये उसकूं. बचेगा नईं.

—अरे अइसा कइसा! . . . एड़ी ने सोचा . . अब्बी तो . . . छोटकी. . . अइसा कइसा. . . .

लड्डन पास आ कर बोला— मगर उसकूं घासलेट मिला किदर?

★ ★

बदरू को आते देख कर एड़ी उठ कर उस तरफ चल दी.

—ओय होए, हीरो लग रैलाए! . . . एक टिक्का लगा ले. . . नजर नीं लग जावे. . .

—बस. . . बस, रैन से अब्बी. . तेरे को हम्माम जाने का, तो जा! बदरू ने कहा.

—नईं रे. . . एड़ी बोली, मैं कब्बी की न्हा-धो के पाक-साफ. . .

—दरसन किये न. . . गणपति के? बदरू ने पूछा.

—छोकरा बनता ए. . . समजता नईं जइसा!

—ये मेन. . .क्या जवाब हो गया?. . .

—हां. ऐड़ी ने सर हिलाया.

—तो हो जाये फिर, बदरू मुसकराया. क ाए क टेम खा रैली. . .? अबी इदर कोई काम-वीम है तेरा?

—ट्र ऽ. . . अब्बी क्या?

—तो चल फिर. . . बदरू ने एड़ी को देखा. ये क्या. . . थोड़ा कपड़ा-बिपड़ा चेन् कर. . . तेरे माकड़े में देख जाके. . . बैग पड़ेला ए मेरा. . . साड़ी तपास उसमें. . . पहन के आ. . . आदा बारंडी की बाटली. . .दो बीर पडेली ए. . ले ले. . उसकू बी ले ले. . . चल घाई कर. . . अबी क्या हो गया तेरे को?. . . मेरे थोबड़े में क्या देख रैली ए?. . .

—क्या. . . आती मैं. एड़ी चौंक कर बोली.

—हां, जा के आ. . . मैं चाऽ पीता होटल में.

अचानक एड़ी की नजर बदरू के हाथ पर पड़ी.

—अरे बता तो. . . अगूंठी नवी डाली क्या. . .?

—अरे नईं रे. . बदरू हाथ बढ़ाता हुआ बोला. मैं बोला चल डाल लेवे हाथ में. . . मंगता ए. . .?

—नईं, एड़ी हाथ छोड़ कर बोली. नग कमजोर इसका. . . लाफा-वाफा मारे तो गिर जावे. . .

—नईं गिरता. . . मैं मार के देखा. . .अबी जा न तू. . . बंकस कर रैली. . . .

* *

चाय पीता हुआ बदरू जाड्या ईरानी होटल में एड़ी का इंतजार करने लगा.

नयी साड़ी में लिपटी एड़ी. . .बदरू को एड़ी न लग कर कोई और ही लग रही थी.

बदरू खड़ा हो गया. एड़ी बदरू के पास आ कर चुपचाप खड़ी हो गयी. दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला.

—चल, एड़ी के होंठ हिले. . .

—चल. . . अरे! चाऽ का पइसा देने का. . .वे दोनों चल दिये.

—नईं! इदर से नईं. . . सरम लगती. . .

सिनेमा हॉल का चक्कर लगा कर एड़ी उसे एक सुनसान अंधेरी गली में ले जाने लगी.

—अरे, इदर किदर जा रैली तू?

—चल न, बताती मैं. . .!

गली के बीचों-बीच थोड़ी-सी जगह घेरे एक बहुत ही छोटा-सा मंदिर था. एड़ी ने सर ढक कर दहलीज को हाथ लगाया. माथा टिकाया. जलते हुए दिये की रोशनी को दोनों हाथों से बटोर कर चेहरे पर पोता. बदरू से भी उसने ऐसा करने को कहा. बदरू ने भी किया.

—अब चल. बदरू जाने के लिए मुड़ा.

—ठेर ना. . . एड़ी ने उसकी बांह पकड़ ली. एड़ी बैठ कर मन-ही-मन कुछ बुदबुदाती रही. फिर उ[se] बदरू के पांव छू लिय.

—अरे! बदरू पीछे हटता हुआ बोला. ये क्या रैली तू?

एड़ी डांट कर बोली—बस क्या! अबी मेरे कुंकुम लगा! कह कर एड़ी ने चेहरा ऊपर उठा दिया.

बदरू ने मूरत के पांव से अंगूठा रगड़ कर एड़ी माथे पर टीका लगा दिया. एक लंबी सांस ले [कर] एड़ी ने आखें खोल दीं—आ. . .अब्बी चल. . .

—चल. दोनों आगे बढ़े. किदर? बदरू ने पूछा.

—मैं सब बंदोबस्त किया. . . पैले से. . . बिंदास. फिकर नईं. . .मैं पैला सुंदरी को मिल लेवे दो मिनिट. मेन होती ए वो मेरी. . . खोटे धंधे में पड़ गयी बिचारी.

—अरे छोड़. . . बदरू बोला. अपुन आज होटल रूम बुक करायेंगा. . .

—न बाबा, न. . .! होटल-फोटल में जाने वा[ली] मैं नईं. . .

—काए को?

—होटल में रंडियां जाती. . . मेरे को उदर न[ईं] जाने का. . .

—क्या बात करती तू?. . . होटल में नईं जा[ने] का. . . बड़ा-बड़ा लोग जाता. . . वो सब रंडी है क्या?

—होएंगा. . . मेरे को उदर नईं जाने का!

—नईं जाने का? बदरू चिढ़-सा गया.

—नईं. . . .

—लाफा खाने का?. . .

एड़ी ने झटके से बदरू को देखा. उसका चेहरा कस गया. —लाफा मारेंगा! मार! सच्चा मरद है तो मार!

तड़ाक! बदरू ने थप्पड़ मार दिया. . . एड़ी की आंख में पानी आ गया. . . अरे!. . .

बदरू नजरें झुका कर अपना हाथ देखने लगा. एड़ी ने उसका हाथ पकड़ लिया.—देख, गिर गया न! मुसकरा कर बोली. मैं बोली थी. . .नग गिर जायेंगा. . .!

बदरू को हंसी आ गयी. बोला—जाने दे. . . गाल पर हाथ रखा. . . जास्ती लगा तो नईं? चल, जिदर तू मंगती ए, चल. . .मेरी मां. . .

—नईं. . .जिदर तू मंगता ए. . .ले के चल. . .! मैं जरा सुंदरी को दिखा देऊं एक मिनट. . .

सुखला जी स्ट्रीट में खुलने वाली कमाठीपुरा, चौदहवीं गली के नुक्कड़ से सटे संडास के सामने के गलियारे में दोनों आगे-पीछे बच-बच कर चलने लगे. दोनों तरफ की खोलियां कुछ दिन हुए पुरानी बिल्डिंग के साथ धसक गयी थीं. गलियारे के बीच में खड़ी गल्लियों पर नयी छत टिकी है. बायीं तरफ दस कदम पर सुंदरी की खोली है.

खोली में पहुंच कर एड़ी ने बदरू से बैठ जाने को कहा. बदरू बैठ गया. दाहिनी तरफ का पलंग परदों से घिरा था. अंदर से परेशान आवाजें आ रही थीं.

एड़ी ने सुंदरी को आवाज लगायी.

तेज-तेज सांस लेती सुंदरी नीचे आयी—अरे मेरी एड़ीऽऽ. . . एड़ी को भींचते हुए सुंदरी ने कहा. मैं तो

सोचा. . .तू भूल गयी अपनी मेन को. . . . दरवाजे की तरफ मुंह उठा कर बोली—दो थंडा लेके आ. . . आ, बैठ न. . . कहते हुए वह बदरू को देख कर एड़ी की तरफ शरारत से मुसकरायी. यही है न?

एड़ी ने सर हिलाया और पूछा—कइसा है?

—एक रात मेरे को दे दे. . . सुंदरी बोली. बगल से गुजरती हुई बाई के हाथ से सोडे की एक बोतल ले कर एड़ी को थमा दी और बदरू की तरफ इशारा किया.

—अबी जायेगी मैं. . .तू ऊपर क्या करती थी? गिराहक. . .!

—अरे, नईं रे. . . सुंदरी बोली. उधर राजस्थान में सूखा पड़ा. . . कितना माल गिरा बंबई में. . . ब्योपारी लोग सस्ता-सस्ता, कड़क माल लाया उदर से. . . मेरे पास चार दाना था. . तीन को तो भेजा 'गोदाम' में तैयार करके. . .एक बचा ए. . .मानती नहीं. . .मारो-पीटो. . . खाना नईं देव. . .कुछ भी करो. . . . उदर ई थी मैं. . .

—अच्छा! ऊपर. . .मेरे को बी दिखा. . .

—चल, देख ले. . . सुंदरी ने कहा.

दोनों सीढ़ियां चढ़ने लगीं. एड़ी ने जाते-जाते बदरू से पूछा. बदरू ने सोडे की खाली बोतल कुर्सी के नीचे रखते हुए एड़ी को जाने का इशारा किया.

पलंग के परदे खन-खन करते खुले. एक आदमी बटन बंद करता हुआ बाहर निकल गया. बदरू ने सिगरेट सुलगा ली. छोकरी मोरी से वापस आ कर कंघी करती हुई बदरू के घुटनों से अपनी जांघें रगड़ने लगी. कंघी फेंक कर वह धच् से बदरू की गोद में बैठ गयी. बदरू ने एक तरफ का गाल चूम कर दूसरा थपथपाया—अबी बस. . . आ. . .उदर बैठ सीधा. . .

—अच्छा, एक सिगरेट दे. बदरू ने सिगरेट दे दी.

★ ★

वह राजस्थानी छोकरी एक कोने में घुटनों में चेहरा छुपाये सुबकियां लेती बैठी थी. सीढ़ियों पर होती आवाजों पर उसने आखें खोलीं. चेहरा उठाते हुए उसकी निगाह एड़ी के पैरों से होती हुई चेहरे पर आ कर अटक गयी.

ताजे बहे हुए आंसू अब भी उसकी आखों और गालों पर थे. बिखरे हुए बाल. . . थोड़ी धंस गयी आंखें. . . पीला पड़ गया चेहरा. . . इकहरा-कमजोर बदन. . . बाहों, गालों और पेट पर उछले हुए बेंत के निशान. . .

एड़ी को सामने देख कर उसने पीठ सीधी कर ली.

—तू वी मारबे आई वे. . .? मार ले, मेरी बूटी-बूटी नूंच ले. . .मी राजपूततनीं बेटी. . .मी वो काम नी करूं. . .

एड़ी ने उसके सामने बैठते हुए उसके बदन पर पड़े बेंत के निशानों को सहलाया. गालों पर आंसुओं की नमी महसूस की.—नईं रे. . . मैं तेरे को मारने नईं आयी.

सुंदरी की तरफ देख कर एड़ी बोली—जाने दे, सुंदरी. . .ये नहीं मानेगी. . .इसे जाने दे. . . तरस खा. . .

—तरस खाऊं! . . .सुंदरी बोली. . .काए का तरस. . . मेरे पे कोई तरस नईं खाया. . बारा बरस की उम्मर में मेरे सर पे कर्जा लेके 'गोदाम' में पटक दिया था. कइसा छोड़ेगी मैं? कइसा जाने देगी?

. . .उस छोकरी ने बिखर कर एड़ी को भींच लिया और फूट-फूट कर रोने लगी—मी नी रऊं यां. . . चल. . . आपणे संग. . . जिनगी भर चाकरी क[रूं] तेरी. . . मेरी मैणा, ले चल. . .

एड़ी ने उसे चुप कराया—घबरने का नईं. . . मर जाना. . . जहर खा लेने का. . खोटा धंधा नईं करने का. मैं आयेगी फिर. . . आं! घबरने का नईं. . .

सुंदरी ने एड़ी का कंधा झकझोर दिया.—ये क्या क[र] रैली तू?. . . मैं इसका पइला गिराहक का मांडवाल[ी] हजार रुपये में नक्की किया. . .हां. . .

—तू एक टाइम हां बोल दे. . . एड़ी ने सुंदरी [को] देखा. देखा और देखती रही. उसे लगा उसकी मां अ[भी] मरी नहीं है. . .

—तू एक टाइम हां बोल दे. . . हजार रुपये में न[थ] उतरवाऊं तेरी. काए को मुकद्दर पे थूक रैली तू?. . . पइसा बटोर ले. . . पइसा अपना मरद. . .पइसा धरम. . .

—नईं. . .मेरे को ये खोटा धंधा नहीं करने का. . पइसे के लिए सब मरद के साथ नईं सोयेगी मैं. . .

—फिर क्या करेगी तू?. . . धंधा नईं करेगी. . ऐक्टर बनेगी! . . .

—शादी बनायेगी. . . इज्जतदार धंधा करेगी. . . अपना एक मरद होयेंगा. . . खानदान वाला. . . . इज्जत दार धंधेवाला. . .

—शादी बनायेगी तू?. . . एड़ी हो गयी तू. . . अरे अपने यहां आज तक किसी औरत ने शादी बनायी जो तू सती-सावित्री बनेगी. . . सरम नईं आती?. . . एक मरद की गुलामी करेगी. . .?

—मैं किसी की घरवाली बनेगी. . . औरत बनेगी. . . रंडी नहीं बनने का है मेरे को. . . समजती है क्या. . .?

—क्या बोली?. . . इतनी छोकरी धंधा करती, वो औरत नहीं?. . . रंडी हैं. . . मैं अउरत नहीं! . . . सिरफ रंडी है! . . . .

—तू अपने को अउरत बोल तो बोल. . . दुनिया मानती क्या. . .?

—मैं किसी की अउरत नहीं. . . मैं अउरत नहीं!

—हां-हां. . .तू रंडी है. . . औरत नहीं. . . बोल किस की औरत है तू? . . . पीर माय अली भाय की. . . जिसको तू मेरा बाप बोलती. . . किदर है वो! . . . तू किसी की अउरत होती तो उसके घर में होती. . . इधर कमाठीपुरा के बाजार में खटिया नहीं चलाती होती. . . तू अउरत होती तो मेरे को, अपनी छोकरी को धंधा करने को नईं बोलती. . . बोल किदर से अउरत है तू. . .?

—मैं तेरी जबान खींच लेंगी. . . मिरचें भरवा देंगी. . . . देखती मैं भी कइसा नईं मानती तू. . . एड़ी को उसकी मां ने मारना शुरू कर दिया था. मारती रही थी, मारती रही थी. अचानक ही एड़ी ने अपनी मां को धक्का दे दिया था. . . वह दीवार से टकरा गयी थी. फिर वह धीरे-धीरे अपनी मां की तरफ आगे बढ़ी थी. . .

चीख सुन कर बदरू ऊपर लपका. सुंदरी की गरदन को एड़ी की उंगलियां कसती जा रही थीं. . . ☐☐☐

द्वारा श्री नितिन सेठी, बी-२, अल्वोराडा,
ऑफ सेंट् रोक् रोड, बांद्रा, बंबई-४०००५०

स्टाफ आर्टिस्ट

• चंद्रकिरण सौनरेक्सा

अहमद को लगा, आज रास्ता बेहद लंबा हो गया है. चलते-चलते उसके पांव थके जा रहे थे और जामा मसजिद दिखाई ही नहीं पड़ रही थी. इस रास्ते वह जिंदगी में सैकड़ों बार जामा मसजिद गया है. जुमए अलविदा और ईद की नमाज पढ़ने वह हमेशा यहीं आता है. फिर आज रास्ता इतना लंबा क्यों लग रहा है? उसने पीछे मुड़ कर देखा. साठ वर्षीया अमीना मैले-फटे बुरके में अपने को लपेटे टूटी जूतियां सटर-पटर करती घिसटती-सी चली आ रही है.

वह रुक कर उसका इंतजार करने लगा. अमीना ने भी उसे रुका देख कर अपनी चाल बढ़ायी. दो मिनट बाद वह अहमद के करीब आ गयी. पर तेज-तेज चलने से उसकी सांस फूल गयी थी, खांसी उठ रही थी और अहमद ने देखा, अमीना की उभरी नीली नसों वाला, झुर्रियों भरा गोरा हाथ कांप रहा था. बुरके में छिपा मुरादाबादी कलई का घिसा कटोरा हिल रहा था.

अहमद का दिल दर्द से भर आया.

—भावज! उसने बड़े प्यार से कहा. थक गयीं?

—नहीं, छोटे मियां ..अमीना ने अपनी खांसी पर काबू पाते हुए बुरके के भीतर से कहा. मुई खांसी ने परेशान कर दिया है, बस. पर अब रुको नहीं, कदम बढ़ाये चलो.

अहमद का मन हुआ अमीना का हाथ थाम ले—उसी तरह जैसे आज से पचीस साल पहले भाई जान के चालीसवें के दिन थामा था. लेकिन तब वह आज की तरह बेकार बूढ़ा नहीं था, तैंतीस साल का कुंवारा जवान था और पैंतीस वर्ष की तीन बच्चों वाली भाभी को उसने जिंदगी भर के लिए सहारा देने की कसम खायी थी. बाकायदा, निकाह पढ़ा कर भावज को बीवी बनाया था. भाई के बच्चों को सरपरस्ती बख्शी थी, और तब तक की आवारगी और मौज-मजे को बालाये ताक रख कर नौकरी के लिए कमर कसी थी.

आज वह ताकत कहां है?

उन दिनों भी कितनी मुश्किलों से उसे नौकरी मिली थी. वह खास पढ़ा-लिखा नहीं था. बस उर्दू की चार जमातें पढ़ कर उसने मदरसे को सलाम कर लिया था. अब्बा के हुक्के की निगालियां या बड़े भाई के थप्पड़ों की मार भी उसे फिर मदरसे न पहुंचा पायी थी. काश, वह उस वक्त पढ़ लेता! दसवीं भी कर लेता तो आज यह नौबत न आती. अब से चालीस साल पहले दसवीं पास को आसानी से किलर्की की पक्की नौकरी मिल जाती थी. लेकिन तकदीर का लिखा कौन मेट सकता था! उसे तो बचपन से ही गाने-बजाने की महफिलों का चस्का पड़ गया था. बब्बन खां की सारंगी ने तो उसका तन-मन लूट लिया था. वह मार खाता, घर से भागता और बब्बन के यहां पहुंच जाता.

बब्बन खां उस वक्त के नामी सारंगिये थे. चावड़ी बाजार की मशहूर तवायफ जानी बेगम के सारंगिये. कभी-कभी राजे-नवाबों की महफिलों में भी उनकी बुलाहट होती थी. वह ठाठ से रहते थे. सफेद बुर्राक लट्ठे का अलीगढ़ कट पाजामा और उस पर चिकन का लखनवी कुरता, पांवों में नागरा, आंखों में सुरमा और मेहंदी से रंगी दाढ़ी के साथ पानों से रंगे होंठ. उंगलियों में फीरोजे की कई-कई अंगूठियां. उनकी लंबी-पतली उंगलियां जब सारंगी पर चलतीं तो लगता मानो दरियाए-यमुना में हलकी-हलकी मौजें उठ रही हों. और घड़ी भर में वे मौजें आसमान चूमने लगती थीं. बच्चे अहमद का मन, उसके कान, उसका नन्हा जिस्म उन मौजों के साथ-साथ बहने लगता. वह घर से भागता और बब्बन की सीढ़ियों पर छिप जाता. सारंगी के इश्क में खाना-पीना भूल जाता. मार-पीट, डांट-डपट से जब कुछ नहीं बना, तो मां, बाप, भाई, सभी ने उसे उसके हाल पर छोड़ दिया था. रोटी-सालन के वक्त घर में हुआ तो खाना दे दिया, न हुआ तो कोई परवाह न करता.

* *

बब्बन खां ने शुरू के कई सालों तक उसे कोई लिफ्ट नहीं दी थी. कभी प्यार से और कभी डांट से समझा कर घर भगा देते थे. लेकिन जहां चाह, वहां राह निकल ही आती है. उस बार ईद के अपने नये कपड़े बेच कर चौदह साल का अहमद उन्हीं रुपयों से सारंगी खरीद उस्ताद के कदमों में जा पड़ा तो उन्हें जगह देनी ही पड़ी थी.

और फिर तो पांच-छह बरसों में उस्ताद की जूतियां सीधी करके, उनका हुक्का भर कर अहमद भी धीरे-धीरे सारंगी पर अपनी पकड़ बढ़ाता गया... वह अच्छी सारंगी बजाने लगा और उसी कूचे का हो कर रह गया.

वैसे जिंदगी मजे में गुजर रही थी. बब्बन का शागिर्द था. सारंगी पर उसका हाथ छोटी उम्र में ही खूब रवां हो गया था. बब्बन अब प्रायः उसे ही संगत पर बैठा देते थे. कोई बड़ा राजा-रईस आया तो खुद संगत पर बैठते, वरना अहमद ही अब जानी बेगम और उनकी लड़की का सारंगिया था. अच्छा खाना-पीना, शराब ...सभी कुछ मयस्सर था.

छठे-छमाहे, ईद-बकरीद पर घर जाता तो बीस-तीस रुपये भाभी को दे आता, भतीजियों को खिलौने ले देता. घर वाले भी अब उसे घर पर रहने को या कहीं कोई छोटी-मोटी नौकरी को न कहते. जानते

थे, अहमद का मन तो सारंगी के सुरों में बंधा है. उससे भला किसी किराने या बजाजे की दुकान पर सामान या थान उठाने-धरने या किसी रईस की चौकीदारी का काम काहे को होगा?

देखने में अहमद ऊंचे-पूरे कद वाला गबरू जवान था, लेकिन शादी उसकी नहीं ही हुई. कोठे के सारंगिये को कोई शरीफ आदमी अपनी बेटी कैसे देता? उसके अपने ठाठ तो कोठेवालियों की मेहरबानी से निभ रहे हैं. पर उनकी बेटी के रोटी-कपड़े का इंतजाम कौन करेगा? अहमद ने भी कभी शादी की बात नहीं सोची. सारंगी ही उसकी दुल्हन थी. उसे ही गले लगाये-लगाये वह तीसी पार करके तैंतीसवें में कदम रख चुका था. अहमद सारंगिये की शादी की चर्चा भी अब भाई-बिरादरी वालों को भूल गयी थी—कि अचानक अहमद के बड़े भाई चार दिन की बीमारी में चल बसे ...पीछे छोड़ गये पैंतीस वर्ष की विधवा और तीन बच्चे.

बेकस बेवा भौजाई ने पति के चालीसवें के दिन तीनों बच्चे अहमद की गोद में बैठा कर कांपते स्वर में कहा—नन्हे मियां, अब तो तुम्हीं इनके बाप-चाचा-बाबा हो. ऐसा मत करना कि इन्हें थाम कर मैं दर-दर मारी फिरूं.

अहमद का दिल भर आया था. उसने छोटे नन्हे को गले लगाया, दोनों भतीजियों के सिर पर हाथ फेरा और कहा—भाभी! अहमद आवारा भले ही हो, कमीना नहीं है. अब से चाहे चोरी करूं, डाका डालूं पर तुम्हें और बच्चों को भूखा नहीं सोने दूंगा.

भावज कृतज्ञ स्वर में दुआएं दे कर बोली—खुदा तुम्हें सलामत रखे! चोरी-डाका क्यों डालोगे, मियां! तुम्हारे तो हाथों में हुनर है. कमाते भी हो. बस इस मुई शराब को कम कर दो. उतने में ही हमारी गुजर हो जायेगी.

अहमद शराब से तौबा तो न कर सका, लेकिन उसने घर पर रहना मंजूर कर लिया. कोठों की महफिल रात दो बजे भी खत्म होती, तो भी वह लौट आता ...फिर छह महीने बाद उसने भावज से निकाह पढ़ा लिया. भावज अब अधिकार से उसकी कमाई थामने लगी. साल-भीतर एक बच्ची भी हो गयी. और अहमद चार बच्चों का बाप कहलाने लगा.

* *

भावज अमीना, जो अब उसकी नेक बीवी थी, की खिदमत और अपनापे ने अहमद को घर से बांध लिया. यहां तक कि देश को आजादी मिलने के बाद जब कानून की चक्की में पिस कर कोठे उजड़ गये, कोठेवालियां गायब हो गयीं और अहमद की सारंगी महफिलों की संगत के अभाव में सिर धुन कर कोने में बैठ गयी, तो हमेशा के आजाद तबियत अहमद ने दौड़-धूप व रईसों की खुशामद करके एक नौकरी भी जुटा ही ली. वह ऑल इंडिया रेडियो का आर्टिस्ट बन गया.

उन दिनों बोलती फिल्मों का इतना धुआंधार बोलबाला नहीं था. पक्के गानों के रसिया रेडियो पर उस्तादों के गाने और तबले-सारंगी के बोल शौक से सुनते थे. अहमद वहां के लिए कारामद इनसान साबित हुए. और उनकी यह नौकरी जो यद्यपि हर साल नयी होती थी, एक तरह से पक्की-सी हो गयी.

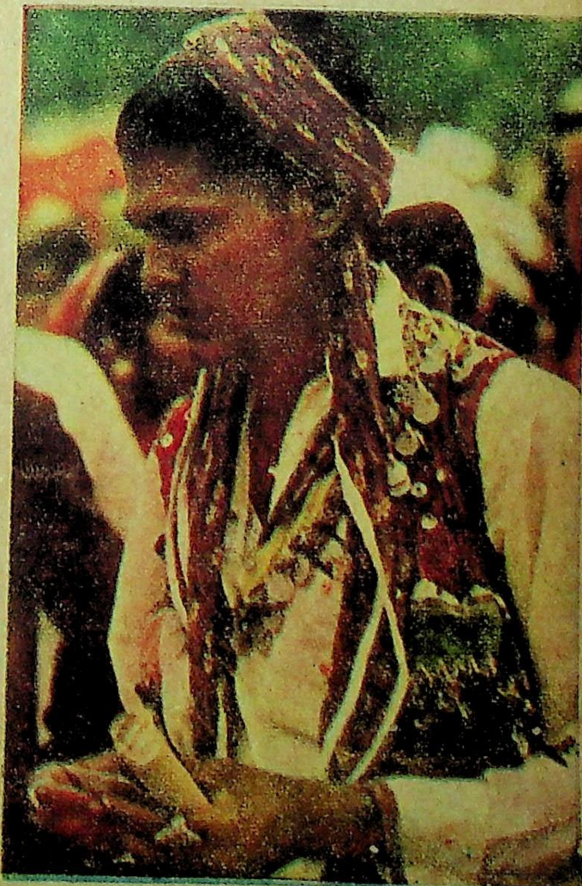
तनख्वाह थोड़ी थी. अहमद को कभी-कभी अफसोस होता था कि तनख्वाह जितनी रकम तो कोई-कोई कद्रदान रईस उन्हें एक ही महफिल में न्योछावर करके दे देता था. परंतु वे महफिलें अब उजड़ चुकी थीं. कुछ भी हो, अफीम के नशे की भांति तनख्वाह पहली तारीख को मिल तो जाती थी, जिससे घर की सूखी दाल-रोटी से बेफिक्री हो गयी थी.

कभी-कभी किसी रईस के घर मुंडन-छेदन या शादी में गवैये की संगत के लिए भी बुलावा आ ही जाता था, जिससे घर के कपड़े-लत्तों व पान-पत्ते का खर्च निकल आता था. शाम को एकाध ट्यूशन लगाये रहते कि नशे-पानी का खर्चा चलता रहे.

* *

अहमद खां सारंगी वाले का पहाड़ी झरने-सा जीवन अब एक शांत, छोटी नहर की भांति अपनी एक ही लीक पर बहने लगा था. घर से दफ्तर, दफ्तर से घर.

अपनी सारंगी का सारा रस, अपनी उंगलियों का सारा कमाल, उन्होंने माइक पर न्योछावर कर दिया.



बड़े से बड़ा उस्ताद भी वहां आता तो सारंगी अहमद ही बजाते थे.

मशहूर गवैये इलियास मुहम्मद खां तो जब सन साठ में विलायत के टूर पर तशरीफ ले जा रहे थे तो अपने साथ संगत के लिए अहमद को ले जाना चाहते थे. उन्होंने उससे कई बार कहा—म्यां, क्या रखा है तुम्हारी इस साली नौकरी में! पंद्रह बरसों से घिस रहे हो और 'अब तुम्हें कुल पौने दो सौ मिल रिया है. हमारे साथ यौरुप चलो. पांच सौ रुपये महीना दूंगा. आने-जाने, रहने-खाने का खर्च मेरा...

पर...पर अहमद नहीं गये. एक तो उन्हें अंग्रेजी, बिल्कुल नहीं आती थी और उन्हें डर था कि जब यहां ही बिना अंग्रेजी-पढ़े की उनकी कदर नहीं होती तो विलायत तो अंग्रेजों का मुलुक ठहरा, वहां बिना अंग्रेजी जाने जाना महज बेवकूफी है. वह तो किसी से पीने को पानी भी न मांग सकेंगे. फिर खां साहब तो कुल छह महीने तक साथ रखेंगे, उसके बाद क्या होगा? हजार-दो हजार वहां से कमा भी लायेंगे तो के दिन खायेंगे? यहां उनकी नौकरी पक्की तो थी नहीं कि छह महीने की छुट्टी मिल जायेगी. हर साल कांट्रैक्ट बनता था. कहीं इस विलायती सैर का सबब न बना तो बेमौत मारे जायेंगे.

जिंदगी में आये ऐसे स्वर्णावसर को भी उन्होंने बच्चों की रोजी-रोटी के लिए छोड़ दिया. वह अपनी इसी नौकरी से चिपके रहे.

★ ★

कहते हैं बारह बरस पर घूरे के भी दिन फिरते हैं. अहमद के भाग भी जागे. अर्थात् स्वतंत्र देश की स्वतंत्र सरकार ने उनके विभाग के उन जैसे कलाकारों का वेतनमान बढ़ा दिया. दो सौ से वह एकदम साढ़े तीन सौ पाने लगे — और हर साल के कांट्रैक्ट की जगह पूरे पचपन साल की आयु तक का कांट्रैक्ट एक ही बार भरवा कर छुट्टी कर ली.

नये भरती कलाकारों ने सुख की सांस ली. कम-से-कम पचीस साल के लिए सिर पर से लटकती बेकारी की तलवार हट गयी. अहमद भी खुश थे. इस नये परिवर्तन से उन्हें केवल छह-सात सालों की बेफिक्री हुई थी, परंतु वेतन लगभग दूना हो गया था. परदे में बैठी जवान तीनों बेटियों की शादी अब वह कर सकते थे. उधार ले कर ही सही, लेकिन अब उधार की किस्त देने के बाद भी दाल-रोटी से भूखे मरने की नौबत नहीं आने वाली थी.

सारी जिंदगी उनकी नेकबख्त बीवी के हाथ बरतन मलते-मलते फटीचर हो गये थे. बढ़ी तनख्वाह में उन्होंने दस रुपये में एक बरतन मांजने वाला नन्हा छोकरा भी रख लिया. जिंदगी में पहली बार अमीना को एक तोले सोने की झुमकियां बनवा कर दीं. यूं बीवी ने हरचंद मना किया कि इस बुढ़ापे में झुमकियां पहन कर क्या करूंगी? लेकिन अहमद माने नहीं. खुदा की मेहरबानी से अब गुजर लायक तनख्वाह थी और हर साल पंद्रह रुपयों की तरक्की भी.

यूं इस बीच महंगाई भी सुरसा की भांति बढ़ रही थी. अहमद के चार हरे नोट देखते-देखते उड़ जाते थे. फिर भी वह खुश थे. अमीना खुश थी. जो कहीं पहले वाले पौने दो सौ ही मिलते होते, तो तन पर चीथड़े लटक जाते.

इस ढलती उम्र में अहमद की बाहर की महफिलें भी तो बंद हो गयी थीं. न वे पक्के गानों के पसंद करने वाले रईस रहे थे और न सारंगी सुनने के शौकीन-कद्रदां. फिर भी अल्लाह का शुक्र था. वह अपनी नौकरी में खुश थे. बहुत खुश.

लड़के दोनों छोटे थे. लड़कियां तीनों बड़ी. धीरे-धीरे सबकी शादियां कर दीं. एक लंबी रकम किस्तों में कट जाती थी. फिर भी दाल-रोटी मयस्सर थी. दोनों लड़के पढ़ने में होशियार नहीं थे. अहमद ने एक को दर्जी का काम सिखाया, दूसरा जरदोशी की कढ़ाई करने लगा.

मतलब यह कि अहमद के अट्ठावन साल के होते-होते उनके दोनों लड़के अपनी गुजर लायक कमाने लगे, यही चार-पांच रुपये रोज के कारीगर. दो गरीब घर की लड़कियां उनके घर बहू बन कर भी आ गयीं. और शीघ्र ही अहमद दो पोतों के बाबा बन गये.

अमीना बिल्कुल नहीं चाहती थी कि अहमद पोतों के होने पर दावत करे. पर अहमद नहीं माना. उसने भरायी आवाज में बीवी से कहा— भावज, मेरी नौकरी खत्म होने जा रही है. आज का पांच सौ रुपये कमाने वाला दो महीने बाद रिटायर हो कर एकदम निट्ठला-बेकार बन जायेगा. तब खुदा जाने कभी किसी को बुला कर खिला सकूं या नहीं! यह आखिरी जश्न मना लेने दो न!

अमीना सुन कर एक बार कांप गयी थी. सचमुच अहमद अट्ठावन का होने वाला था. यूं सभी नौकरीपेशा एक दिन रिटायर होते हैं. अट्ठावन साल के बूढ़े अगर रिटायर न हों, तो नयी पौद को नौकरियां कहां से जुटेंगी?

लेकिन अहमद का रिटायर होना अमीना के लिए जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना थी, क्योंकि वह सरकारी नौकरी करने पर भी पक्का नौकर नहीं था. वह आज भी स्टाफ आर्टिस्ट था, जो अट्ठावन सालों तक कांट्रैक्ट पर पूरे पच्चीस वर्षों से अपना हुनर सरकार को बेच कर घर की रोजी-रोटी कमा रहा था. उसकी नौकरी का नियम ही यही था— कि जब तक काम, तब तक दाम.

और यह काम भी उसे वहां केवल अट्ठावन साल की उम्र तक ही मिल सका था.

★ ★

यूं अहमद के अब आराम करने के दिन थे. वह बूढ़ा हो चला था. आधे दांत गिर चुके थे, सिर के बाल भी कपास जैसे सब सफेद हो गये थे. हाथों पर नीली नसें उभर आयी थीं. परंतु उसकी उंगलियां, लंबी-पतली उंगलियां, सारंगी पर आज भी वैसे ही थिरकती थीं, जैसे अब से तीस साल पहले जानी बेगम की महफिलों में. पर इससे क्या होता है? वह जो अट्ठावन साल का हो गया था!

सरकारी नियम से उसे अब रिटायर होना ही था. रिटायर यानी एकदम बेकार. कौड़ी का तीन. पूरे पांच सौ रुपये की अच्छी-भली रकम एक ही झटके में खत्म हो जानी थी. अमीना सोच कर कांप उठती. यूं दोनों लड़के अपनी गुजर लायक मजदूरी कमा लेते थे, फिर भी घर

का अधिकांश खर्च अहमद की कमाई से चलता था. बेटियों का आना-जाना, देना-लेना, ईद-बकरीद और पोते-पोतियों की पैदाइश की दावतें, सभी कुछ उसी कमाई से था.

अहमद की शराब का खर्च भी था ही. आधी-तिहाई पेनशन मिलने की उम्मीद होती तो अमीना इतनी परेशान न होती. सौ-डेढ़ सौ, जो भी मिलता, बूढ़े-बूढ़ी का खर्च तो निकल ही जाता. लड़के, जैसे बनता, अपनी-अपनी गुजर करते.

बेटियों के ब्याह का कर्ज तो लगभग निबट गया था, लेकिन अहमद को पेनशन नहीं मिलेगी. वह जो स्टॉफ आर्टिस्ट था! अमीना सोचती, सोचती और सिर थाम कर बैठ जाती. उसकी बूढ़ी आंखों के आगे अंधेरा-ही-अंधेरा था.

* *

और अहमद रिटायर हो गया.

पांच सौ रुपये की पूरे परिवार की पोषक रकम एक झटके में खत्म हो गयी. एक समर्थ कलाकार जीवन की उतरती संध्या में अकस्मात ही अपंग हो उठा. अपंग ही समझो. अब इस आयु में उसे कहां काम मिलने वाला था?

अमीना के बचाये पांच-सात सौ रुपये तीन महीनों में ही साफ हो गये थे. वो भी तब, जब घर में सिर्फ दाल-रोटी पकती है, गोश्त, अंडा, दूध, सभी बंद है, क्योंकि लड़कों की कमाई में इसकी कोई गुंजाइश नहीं है.

सारी जिंदगी अच्छा खाने वाले बड़े लड़के ने अहमद से उस दिन तल्ख आवाज में कहा था — अब्बा, ये उधार गोश्त क्यों ले आते हो? जुबान के ये चटखारे अब बंद कीजिए. क्या हम और हमारे बच्चे खाना नहीं जानते? लेकिन इतना कहां से आये? आपने तो जिंदगी भर कमाया और लुटाया. जानते थे, बिला पिनसन की नौकरी है, फिर भी चार पैसे बुढ़ापे के लिए बचा के न रखे! अब तो जिंदगी भर हमारी ही खोपड़ी पर रहना है... जरा जुबान पर ताला लगाइए. और हां, ये शराब के पव्वे भी नहीं चलेंगे — समझे!

अहमद तो मानो जड़ हो उठा था. बड़ी देर तक मुंह से बोल ही न फूटा. अमीना ने ही दबे स्वर में बेटे से कहा— इलियास, सारी जिंदगी की आदत धीरे-धीरे ही कम होगी, बेटा. चालीस बरसों से रोज पीने वाला एकदम से छोड़ देगा, तो कैसे जियेगा? अभी तो उन्होंने तेरे से इसके लिए पैसे नहीं मांगे हैं! मैं अपनी गांठ से देती हूं.

इलियास दबा नहीं. मां को घूर कर बोला — हां-हां, मुझे पता है कि तुम्हारे पास खजाना गड़ा है! कै दिन पिलाओगी गांठ से? अभी से बंद नहीं करोगी, तो चार दिन बाद उधार की पियेंगे और दरवाजे पर पठान लठ ले कर हमारा सिर तोड़ेगा! हजार-दो हजार चुरा कर रखे भी हो तो रखे रहो, हम छीन न लेंगे. पर समझ लो, अपना पान-पत्ता, कपड़ा-लत्ता, बेटियों को बुलाना-चलाना हमारे सिर मत डालना. घर में जो चटनी-रोटी बने, खाओ और खुदा का शुक्र करो...

इलियास तो बड़बड़ाता चला गया, पर अमीना मानो उसी दिन मर गयी थी.—उफ! बीस बरस खिला-पहना कर पाल देने पर उनका अपना पेट का जाया दो महीने में ही आंखें बदल गया! उसके सूखे गालों पर निश्शब्द ही बड़े-बड़े मोती ढुलकने लगे.

—भावज! अहमद ने हाथ बढ़ा कर उसके आंसू पोंछे. रो मत. सब वक्त की बातें हैं. हमारा वक्त बुरा है... खैर, अब आज से न पीने की कसम खाता हूं. मर जाऊंगा, पर शराब...

अमीना ने अहमद का हाथ थाम लिया था. दोनों सिर झुकाये रात के बढ़ते अंधियारे में अपनी कोठरी में बैठे रहे.

* *

फिर, शराब की जगह अहमद जरा-सी अफीम खाने लगा था. बिना कोई भी नशा किये उसकी यह नशे-खायी बूढ़ी देह उठती ही न थी. दूध तो बंद था, पर अमीना चोरी से उसके लिए रेवड़ियां मंगा लेती थी. आखिर यह अफीम का नशा भी तो दूध-मिठाई मांगता है!

छह महीने गुजरते-न गुजरते अमीना के पास झंझी कौड़ी भी न बची. दोनों को दिन में ही तारे नजर आने लगे. दोनों झुमकियां और चांदी की चारों चूड़ियां भी अफीम के चक्कर में निकल गयीं. अब रेवड़ियां तो दूर, अफीम के लिए एक रुपया पाना भी अमीना के लिए सूली पर चढ़ने के बराबर था.

पिछले इतवार को बड़ी बहू एकदम बरस पड़ी, अपने को कोस कर बोली— अल्लाह पाक सात दुश्मनों को भी ऐसे सास-ससुर न दे! मेरे बच्चे बूंद भर दूध को तरसते हैं, महीने में एक बार भी गोश्त की हांडी नहीं चढ़ती, पर इन्हें रोज अफीम चाहिए... अरे, एक ही बार दो तोला खा कर छुट्टी क्यों नहीं करते!

और... और रुपया मांगने गयी अमीना निर्वाक उलटे पैरों अपनी कोठरी में लौट आयी थी.

फिर तीन दिन अहमद को अफीम नहीं मिली. बूढ़ा रात-रात भर खांसता और कराहता. अमीना के पानदान में न सुपारी थी, न पान... वह कोरी तंबाकू फांक रही थी और तंबाकू भी खत्म होने वाली थी.

अहमद बिना अफीम कल से मुरदे की भांति लस्त पड़ा था. और तब लाचार-मजबूर अमीना ने रात के अंधेरे में पति के आगे जो प्रस्ताव रखा, उसे सुन कर अहमद एक बार सिरकटे बकरे-सा तड़प उठा. कांप उठी थी उसकी जर्जर देह...

अमीना ने उससे कहा था — छोटे म्यां! क्यों न तुम मुझे मुंह-अंधेरे जामा मस्जिद की सीढ़ियों तक पहुंचा दिया करो. बुर्का ओढ़े रहने पर कोई पहचान भी न पायेगा. वहां तो बीसियों फकीर-फुकरा मांगते हैं. अल्लाह उन्हें भी रोजी देता ही है—तुम इधर-उधर टल जाया करना, मैं अल्लाह वाले हाथ पसार लूंगी. धेली-पावली कुछ तो देगा ही खुदा ताला. आखिर इसके सिवा अब मैं कर ही क्या सकती हूं!

यह सुन कर अहमद गूंगा हो गया था...बड़ी देर में सांस खींच कर बोला — भावज! अब यह नौबत आयेगी? इससे तो मैं ही चौराहे पर खड़ा हो कर सारंगी बजाऊं तो क्या...

——न-न! अमीना ने बीच में ही बात रोक ली. इससे इलियास की बदनामी होगी. वह चिढ़ जायेगा, बुर्के में मुझे तो कोई पहचानेगा नहीं. बस सुबह-सुबह दो-तीन घंटे सीढ़ियों पर हाथ फैलाऊंगी. लौटने पर अगले मोड़ से तुम साथ हो लिया करना...

अहमद क्या कहे?... बात गले के नीचे उतर तो गयी थी, पर गले से पेट तक एकदम चीरती भी गयी थी. आधी रात तक खाट पर पड़ा करवटें बदलता रहा. छटपटाता रहा... नींद कोई सुबह के पहर आयी...

...और भोर के धुंधलके में अहमद अमीना को ले कर उसी रास्त बढ़ रहा था. जामा मस्जिद अभी दूर थी. हांफती-कांपती अमीना उसके पीछे थी.

अहमद मोड़ पर रुक गया. ——भावज! अहमद ने पत्नी के कान में फुसफुसाया, नहीं, लौट चलो... मैं ... मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता.

——रुकिए भी.. अमीना फुसफुसायी और आगे जाते एक सफेदपोश के पीछे सड़क की दूसरी ओर मुड़ गयी. ——अल्लाह के नाम पर... उसने बुर्के में ही गुनगुनाया... खुदा तुम्हारी कमाई में बरकत दे... एक पांच पैसे बूढ़ी लाचार को... उसने अपना कटोरा बढ़ा दिया. हाथ उसके कांप रहे थे.

——धत् तेरे की! इतने सुबह-सुबह भी इन बलाओं से पीछा नहीं छूटता! सफेदपोश मुंह में बड़बड़ाया और एक पांच का सिक्का कटोरे में उछाल कर आगे बढ़ गया. अमीना भी पलटी, पर पीछे आती साइकल की घंटी उसने नहीं सुनी थी. मुड़ी तो साइकल का धक्का लगा... वह वहीं गिर पड़ी. ——या अल्लाह... वह कराही. कटोरा छिटक कर दूर जा गिरा था और पांच का सिक्का उछल कर नाली में.

अहमद दौड़ा. गिरी अमीना को गोद में उठाते हुए चीखा—— भावज! नहीं-नहीं... वह एकदम पसीना-पसीना हो उठा था. कांप रहा था... उसका गला खुश्क हो रहा था, जैसे गले में कांटे उग आये हों.—— भावज!

——छोटे म्यां! छोटे म्यां! अमीना ने उसे झकझोर कर जगा दिया. क्या हुआ? सपना देख रहे हो क्या? पसीने से तर अहमद की आंख खुल गयी—— वह परेशान हालत में अपनी खाट पर पड़ा था. दूर कहीं सुबह की अजान का स्वर आ रहा था —— अल्ला हो अकबर!

□□□

सी १८१२, रिवर बैंक कॉलनी, लखनऊ

केरल की दंतकथा

प्रतीक्षा

एक बार जंगल में दो-तीन दिनों तक लगातार बारिश होती रही. पशु-पक्षियों का शिकार के लिए बाहर निकलना संभव नहीं हुआ. एक सियार भूख से बेहाल हो गया था. चौथे दिन जब बारिश बंद हुई, तो सियार भोजन की तलाश करता-करता एक शेर की मांद में जा घुसा. शेर उस समय शिकार की खोज में बाहर निकलने वाला था. उसने कड़क कर पूछा—— कौन हो तुम?

इसके पहले कभी सियार ने शेर नहीं देखा था. वह घबरा गया. परंतु शीघ्र ही उसने अपनी घबराहट को दबा कर जवाब दिया—— मैं महाशेर हूं! क्या आपने अभी तक मुझे नहीं देखा है? मैं आस-पास के सात जंगलों का स्वामी हूं, जिसके अधीन यह जंगल भी आता है. मैं यहां अभी आप को खबरदार करने के लिए आया हूं कि आप अपने जंगल की सीमा से बाहर न जाया करें, वरना आप की चटनी बना दी जायेगी. शेर ने सोचा कि वाकई, यह कोई असाधारण शक्तिशाली जीव है. तभी तो मुझसे डरना तो दूर, मुझे ही धमका रहा है. और फिर सात जंगलों का राजा! उसे कोई उपाय नहीं सूझ रहा था कि इस महाशेर का कैसे स्वागत किया जाये! उसे अपनी पुत्री की याद हो आयी. उसने महाशेर से कहा—— महाराज! मैं तो अपनी कन्या की शादी का प्रस्ताव ले कर आप के ही पास जा रहा था. आइए, पधारिए!

सियार अकड़ कर बैठ गया. शेर ने अपनी लड़की का विवाह सियार से करके उन दोनों को विदा दे दी. रास्ते में एक गड़रिया भेड़-बकरियां चरा रहा था. भेड़-बकरियों को देख कर शेरनी बोली——भूख तो आपको भी लगी होगी. क्यों न एक-दो भेड़-बकरियां खा लें?

——जरूर खाना चाहिए! सियार ने कहा.

पति की आज्ञा पाते ही शेरनी ने झपट कर दो बड़े-बड़े बकरों को फाड़ डाला और उनकी चटनी बना कर अपनी भूख मिटा ली. उधर महाशेर रूपी सियार भेड़ के एक बच्चे से ही दो-दो हाथ कर रहा था. उसके लौटने पर शेरनी ने कहा——आप तो भेड़ के एक बच्चे से ही जूझ रहे थे?

——तुम बिल्कुल गंवार ही हो! सियार ने उत्तर दिया. जो मजा बच्चों के मांस में होता है, वह बड़ों के में नहीं!

इस प्रकार अंत में उस महाशेर रूपी सियार की मांद भी आ गयी. वहां पहुंच कर उसने शेरनी से कहा——तुम यहीं प्रतीक्षा करो. यहां मेरा एक दोस्त रहता है. उससे मिल कर आता हूं.

और वह मांद में जा घुसा. इधर शेरनी अपने दूल्हे के लौटने की प्रतीक्षा करती रही. सांझ रात में बदल गयी. रात दिन में बदल गयी. दिन रात में बदल गया और रात पुनः दिन में बदल गयी—— परंतु दूल्हा नहीं लौटा.

□□□

प्रवासी: पृष्ठ ५६ से आगे

रास्ता हमें ठीक से पता नहीं है और अगर किसी जंगल में या किसी घाटी में जा गिरे, तब क्या करेंगे?

★

नहीं भई, अब तो नहीं जायेंगे आगे! हम जहां हैं, वहीं रहेंगे.

★

ऐसा क्या करते हैं! हम लोग जिस मार्ग पर खड़े हैं, वह मार्ग आगे भी कहीं जाता है या नहीं? हमारे आने से पहले बहुत से मनुष्य इसी मार्ग से तो गये होंगे.

★

हां, बैलगाड़ी के पहियों के निशान स्पष्ट तो दिख रहे हैं. और क्या चाहिये?

★

और कुछ नहीं चाहिये! बेशक आगे चले चलो धुंधलका है तो क्या हुआ? देर करने से क्या फायदा?

★

जाओ, आगे जाओ! हंसी-खुशी चलते चलो! हम यहां से रत्ती भर भी हटेंगे नहीं! बेसिर पैर के रास्ते पर जाकर मरना है क्या?

★

हां! आज तक इस मार्ग पर जानेवाले मनुष्य जैसे मर ही गये हैं है न!

★

कैसे नहीं मरे हैं? सभी लोग एक बार गढ़े में या घाटी में गिर कर, सिर फूट जाने पर मरे कैसे नहीं होंगे?

★

मैं कह रहा हूं. दूसरे मरे, इसलिए हमें भी मरना ही चाहिये क्या?

★

भई, मुझे तो ऐसा लगता है कि अपने अब लौट कर पीछे जायं और उस धर्मशाला में जाकर ठहरें.

★

हां! -हां! बहुत अच्छी बात है! चलो फिर से चलें.

★

दुबारा जायें? नहीं भई, हम फिर से नहीं आयेंगे.

★

और अब फिर से लौट कर जाना कहां है? और. कैसे? किस तरह से का क्या मतलब? उसी मार्ग से धर्मशाला आसानी से पहुंच जायेंगे.

★

अपने भी उसी तरह जायेंगे, तो रास्ता भटक जायेंगे. ऐसा लगता है क्या?

★

ऐसा कैसे नहीं हो सकता है? रास्ता भटक कर या फिर किसी घाटी में गिरकर सिर फूटने पर मर कैसे नहीं जायेंगे? बतलाना तो?

★

ओफ, हो! लेकिन अभी इसी रास्ते से आये हैं या नहीं? यह ठीक है ..

★

लेकिन जिस रास्ते से हम आये हैं, उसे भी कैसे भूल सकते हैं?

★

क्या धुंधलका साफ हो जाने तक हम यहीं खड़े रहें?

हां हां हां, ऐसी ही करना पड़ेगा!

★

क्या ऐसा ही करना पड़ेगा? मान लो, धुंधलका साफ होने तक हम यहीं खड़े रहें और भूकंप आ जाये?

★

इसीलिये तो कह रहा हूं. कि हम आगे ही चलें, तब मौत भी आ जाये तो कोई बात नहीं!

★

नहीं, भई, इससे अच्छा तो पीछे लौटते वक्त मरें.

★

और जीते जी मर जाना ही क्या बुरा है?

★

हां! हां! हां!

★

ठीक है! मैं तो आगे चलता हूं. जिसे मेरे साथ आना हो आ जाय.

★

लो! हम भी चल रहे हैं आपके साथ!

★

अरे, रे! जा कहां रहे हैं? मुड़ो और हमारे साथ पीछे चलो! नहीं! हम लौट कर नहीं जायेंगे. तुम्हें जाना है तो जाओ! कोई तुम्हारा रास्ता नहीं रोक रहा है.

★

तुम नहीं आ रहो हो हमारे रास्ते में! लेकिन हम तुम्हें जाने देंगे तब न!

★

यह बात है क्या? तो हम भी देखते हैं कि दुबारा कैसे लौटते हैं?

★

अरे ए मूर्खो! हमारे साथ चुपचाप यहीं खड़े रहो!

★

नहीं! हम तुमसे आगे जायेंगे!

★

हम तुम्हें पीछे खींच लेंगे.

★

खबरदार! जरा भी हिले तो! अपने स्थान पर ही खड़े रहो, मूर्खो!

★

कौन मूर्ख है?

★

तुम मूर्ख हो!

★

नहीं तुम्हीं मूर्ख हो!

सब लोग हाथापाई पर उतर आते हैं. एक दूसरे को घसीटने लगते हैं. कोई किसी को लकड़ी से मार रहा है तो कोई पत्थरों की वर्षा कर रहा है. बेचारे बच्चे घबराकर रोने लगते हैं. मेरा सिर फूटा! मां, सीने पर पत्थर लग गया! अरे वो आगे भाग रहा है पकड़ो-पकड़ो!' और ऐसे शोरगुल के साथ लोगों का दौड़ना शुरू हो जाता है. □□□

(अनुवाद: रेखा सिंह)

किस्मत

गो. गं. लिमये

ठिक्-टिक्, ठाक् और उसके बाद गोलाबारी का धूम-धड़ाका.

वह जानी-पहचानी आवाज सुनते ही रामदयाल का कलेजा धक् से हो गया. हाथ कांपने लगे और उसके हाथों से डोली (स्ट्रेचर) गिरने को आयी. यह आवाज बद्दू (बागी अरब) लोगों की बंदूकों की थी. इससे पहले यह विशिष्ट आवाज रामदयाल ने दो-चार बार ही सुनी होगी. फिर भी उससे अच्छी तरह जान-पहचान हो गयी थी. मानों उनका जिंदगी भर का साथ हो. गुस्सैल या मरकहे शिक्षक के खखारने की आवाज चाहे एकाध बार ही सुनी हो, फिर भी बच्चों के लिए वह पूरी परिचित हो जाती है. वैसे ही यह ठाक्-ठिक् रामदायाल के कानों में पूरी तरह समा गयी थी. कहीं से कोई आवाज आती तो रामदयाल का दिल धड़कने लगता था, वह कान उठाकर देखने लगता था, और इस बार तो सचमुच लड़ाई शुरू हो गयी थी. फिर उसकी घबराहट न पूछिए! ठीक से बोल भी न पा रहा था वह.

रामदयाल एक फील्ड-एंबुलेंस में डोलीवाला था, और वह एक कालम के साथ जा रहा था. सामने लड़ाई शुरू होते ही अगाड़ी की पलटन ने गोलाबारी शुरू की. ढप् ढप्... हमारे फौजियों की गोलाबारी शुरू हो गयी. लूईस गनों की 'सटटटट' सुनाई देने लगी मशीन गनों ने भी 'चट्चट्' चट-चट गोलियों की बौछार आरंभ की. अपनी तरफ की यह भयंकर गड़गड़ाहट सुनकर रामदयाल की जान में जान आ गयी, और इतने में बाकी कालम को अपनी जगह पर रुकने का हुक्म आया. तब उसे अच्छा लगा, लेकिन यह खुशी ज्यादा देर तक न रही. सूं-सूं करती हुई एक गोली उसके सिर के ऊपर से चली गयी. फौरन दूसरी आयी. फिर अगल-बगल से 'सूंऽऽ' करती हुई गोलियां गुजरने लगीं. रामदयाल को लगा कि जीवन का अंत आ गया. अब वह कभी घर नहीं लौट सकेगा. उसकी हड्डियां तक सियार-कुत्ते ले जायेंगे.

डोलियां नीचे रख कर रास्ते के किनारे बैठ जाने का हुक्म दिया गया. झट से रामदायल एक छोटे-से कनाल में हाथ-पैर सिकोड़ कर और सर छुपा कर लेट गया. बाकी लोगों में से कुछ हंसी-मजाक करने लगे. कुछ बद्दुओं को गालियां देने लगे और जो समझदार थे वे अपना झोला (किट-बग) खोल कर 'रोटी और सब्जी' खाने लगे. एक ने तो जल्दी से जमीन खोद कर चूल्हा बनाया. और पास से घास ला कर चाय के लिए पानी भी चढ़ा दिया. जो डरपोक थे, वे छिपने के लिए तरह-तरह की जगहें ढूंढ़ने लगे और वहां बैठ कर किसी ने हुक्का पीना भी शुरू कर दिया. कुछ बीच में उठकर 'परिस्थिति' का अंदाजा लगा रहे थे. गोलियों का धड़ाका जारी था. कभी पंचम में तो कभी सप्तम में गाना गाती हुई गोलियां जा रही थीं. एक गोली तो रामदयाल जहां लेटा हुआ था, उस कनाल के बांध को लगी. लेकिन सौभाग्य से उसने घुटनों में सर छुपा लिया था इसलिए गोली से उड़ी धूल उसने नहीं देखी और उसी वक्त एक खच्चर के उछलने की वजह से उस गोली की टप् आवाज उसकी समझ में नहीं आयी. वरना उसे लगता कि उसी को गोली लग गयी है और वह मर जाता.

अब 'फॉल इन' का हुक्म आया. अगाड़ी पर बहुत से लोग घायल हो गए थे इसलिए डोलीवालों की एक टोली आगे भेजनी थी. घुटनों से सर निकाल कर रामदयाल अपनी जगह पर थरथराता खड़ा हो गया. उसने डोली उठायी और वह डोली आगे बढ़ने लगी. अब तो रामदयाल के होश उड़ गये थे. मन को लगातार डर लग रहा था. अब यह गोली तो नहीं लगेगी— बाप रे बाप! कितनी करीब से चली गयी यह— ओह! यह तो बिलकुल सट कर चली गयी. हां, उसके साथ चलनेवाले डोलीवाले को ही लगी. लेकिन खुशकिस्मती से वह बच गया. वह गोली उसकी बांह के आरपार चली गयी. 'ड्रेसी बाबू' (ड्रेसर) ने पट्टी बांध कर उसे वापस भेज दिया. रामदयाल को लगा, हाय! वह गोली मेरी बांह में क्यों नहीं लगी? फिर मैं एंबुलेंस में बैठ कर वापस चला जाता, फिर अस्पताल, फिर बगदाद और आखिर 'इंडिया' जाने का मौका मिलता. कम से कम कुछ दिनों के लिए इस घमासान लड़ाई से छुटकारा तो मिलता. लेकिन नहीं, वे आगे बढ़ते रहे. गोलियों की बौछार जारी थी. 'सट्'— और एक गोली आयी. आयी नहीं, उसके नाइक के सीने में घुस गयी. धड़ाम से वह नीचे गिर पड़ा. ड्रेसी बाबू ने देखा. देखने की कोई जरूरत ही नहीं थी. दस कदमों पर एक गड्ढा था. रास्ते से हटा कर वहां उसे छोड़ दिया गया. भगवान का नाम लेने की भी फुरसत नहीं मिली उसे. गोलियां कह कर थोड़े ही आती हैं? बंदूक की आवाज सुनायी देने से पहले ही उसमें से निकली गोली सीधी हमारे पीछे चली गयी होती है. गोली आ गयी, कहना गलत है. गोली चली गयी, कहना चाहिए. आने से पहले गोलियां 'नोटिस' नहीं देतीं.



नाइक की मौत देख कर रामदयाल के रोंगटे खड़े हो गये. आगे बढ़ने की उसमें बिलकुल हिम्मत न रही. उसे चक्कर आ गया और चलते-चलते वह एकदम नीचे बैठ गया. दूसरे लोगों ने उसे बहुत समझाया कि तुम यहीं रह जाओगे बीच में ही. हम तो आगे बढ़ जायेंगे. एंबुलेंस भी बहुत पीछे रह गयी है. लेकिन नहीं, 'मेरे पेट में दर्द हो रहा है,' कह कर वह सड़क के किनारे बदन सिकोड़ कर पड़ा रहा. ड्रेसर ने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया, धमकाया, बूट से कोंचने की भी कोशिश की लेकिन सब बेकार! 'डरने से क्या फायदा? जो होना है, सो होगा. तुम्हारी किस्मत में मरना हो तो यहां पड़ कर भी मरोगे. चल उठ, पागल कहीं का!' ड्रेसर ने कहा. रामदयाल कहता है, 'बाबूजी, मैं डर नहीं रहा हूं. लेकिन पेट में भयानक दर्द उठ रहा है. चक्कर आ रहा है और बिलकुल चला नहीं जाता. मैं भी क्या करूं?' ड्रेसर ने उसे थोड़ी-सी 'दवा' पिलाई और 'मरो साले यहीं पर!' कह कर वह टोली के साथ आगे चला गया.

वह टोली आंखों से ओझल हो जाते ही रामदायाल के पेट का दर्द अचानक गायब हो गया और धीरे से उठ कर झुके-झुके उसने 'रिटायर' करना शुरू किया. अगल-बगल से गोलियां आ ही रही थीं. गोली की 'सूंऽऽ' आवाज आते ही वह और नीचे झुक जाता. जरा मुड़ जाने पर उसने इर्द-गिर्द देखा तो कोई भी नजर नहीं आ रहा था. अगाड़ी के लोग आगे और पिछाड़ी का कालम पीछे. वह बीच में ही अकेला रह गया था. अब शाम हो गयी थी. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये. एक बार उसे लगा कि कुछ भी हो, आगे जा कर अपनी टोली में शामिल हो लिया जाये, फिर मरना हो तो दोस्तों के बीच मर जाऊंगा. घायल हो गया तो लौटने को डोली मिल जायेगी. एक घूंट पानी की जरूरत हो तो कोई भी दे देगा. लेकिन अगर पैर को गोली लग गयी तो? तो क्या करूंगा? मर गया तो किसी को पता तक नहीं चलेगा. मरा नहीं और इधर से बद्दू आयें और पकड़ कर ले जायें तो? इस तरह सोचते हुए वह पीछे की ओर मुड़ा. लेकिन फिर उसे लगा, जितना आगे बढ़ता जाऊंगा, उतना डर भी ज्यादा, और वह टोली अब नहीं मिली तो? इस तरह दो-तीन बार वह आगे-पीछे चला गया. इतने में उसकी बायीं ओर तीन कदमों पर एक गोली आ कर टकराई. वह डर के मारे कांपने लगा. वॉटर-बॉटल में से थोड़ा-सा पानी पीने की भी ताब न रही.

इधर रात हो गयी. गोलाबारी धीरे-धीरे कम होती गयी. तोपों की गड़गड़ाहट भी थम गयी. उस रात वहीं 'कंप' करने का हुक्म आया.

ड्रेसर बाबू अपनी टोली को ले कर लौटने लगा. चलते-चलते रास्ते में उसे ठोकर-सी लगी. दियासलाई जला कर देखा तो रामदयाल की लाश! गोली ठीक सीने में लगी थी और सीने के पार हो गयी थी. □□□

(अनुवाद : माधव मोहोलकर)

(स्थानाभाव के कारण कैप्टन गो. गं. लिमये की दूसरी कहानी 'मैकेनो' फरवरी '७६ के अंक में प्रकाशित की जा रही है. --संपादक)

लघुकथा

विद्वता बनाम सहज बुद्धि

किसी नगर में चार ब्राह्मण रहते थे जिनमें परस्पर बड़ी मित्रता थी. उनमें से तीन अत्यंत विद्वान थे किंतु उनमें सहज बुद्धि का अभाव था. चौथा विद्वता से दूर था किंतु सहज बुद्धि का धनी था. एक दिन चारों विचार-विमर्श करने लगे. सभी एकमत हुए कि यात्रा करके राजदरबार में पहुंच कर राजा को प्रभावित कर धन अर्जित किया जाये.

चारों यात्रा पर निकल पड़े. अभी वे कुछ ही दूर गये होंगे कि उनमें से सबसे बड़े ने कहा--हममें से चौथा विद्वान नहीं है, उसमें सिर्फ सहज बुद्धि ही है. राजा का ध्यान सहज बुद्धि से ही कोई आकर्षित नहीं कर सकता. अतएव हम अपनी कमाई उसको नहीं देंगे. वह लौट जाये.

दूसरे ने कहा--मेरे बुद्धिमान मित्र, तुममें ज्ञान का अभाव है. अच्छा हो कि तुम वापस लौट जाओ. किंतु तीसरे ने कहा--नहीं, यह उचित व्यवहार नहीं है. हम सब बचपन से साथ ही खेल-कूद कर साथ-साथ बड़े हुए हैं. चलो मित्र, तुम भी साथ चलो. हम सब अपनी कमाई आपस में बराबर-बराबर बांटेंगे.

इस समझौते के बाद वे चारों यात्रा पर बढ़ते गये. अंत में वे एक वन में पहुंचे जहां एक मृत सिंह की हड्डियां पड़ी हुई थीं. उन्हें देख कर एक ने कहा--अपनी विद्वता का परीक्षण करने का अवसर आ पहुंचा है. यहां पर किसी मृत प्राणी की हड्डियां पड़ी हैं. अपनी ईमानदारी से अर्जित ज्ञान द्वारा हम इसे जीवित कर देंगे.

अब पहले ने कहा--हड्डियों को जोड़कर ढांचा बनाना मुझे आता है.

दूसरा बोल पड़ा--मैं उसमें चर्म, मांस तथा रक्त भर सकता हूं.

तीसरा भी पीछे न रहा--मैं उसमें प्राण फूंक सकता हूं.

सो पहले ने ढांचा तैयार किया, दूसरे ने उसमें चर्म, मांस तथा रक्त डाला किंतु तीसरा उसमें प्राण फूंकने ही वाला था कि सहज बुद्धि वाले मित्र ने विरोध किया--यह सिंह है. जीवित होते ही यह हम सब को ही निगल जायेगा.

--तुम पोंगा हो, हम अपने ज्ञान को व्यर्थ नहीं जाने देंगे, वे तीनों बोले.

--ऐसा है, तो जरा ठहरो. पहले मुझे इस वृक्ष पर चढ़ जाने दो.

उसके ऊपर चढ़ते ही तीसरे मित्र ने सिंह में प्राण फूंक दिये. उसने तीनों को मार डाला जब कि चौथे ने वृक्ष से उतर कर अपने घर की राह ली.

--('पंचतंत्र' से) □□□



एस. डी. चौधरी

छह लघुकथाएं ● रामसरूप अणखी

भेद की बात

एक महिला थी. उसके दो जेठ थे और तीन देवर. गांव में परिवार नियोजन वालों का शिविर लगा. वहां बहुत-से मर्दों-औरतों के ऑपरेशन किये गये.

उस महिला का स्वामी बड़ा भोला था. उसे असली संसार का ज्ञान बहुत कम था. उनके पांच बेटियां और दो बेटे थे.

स्वामी शिविर में पहुंचा. ऑपरेशन के लिए उसने अपना नाम लिखवा दिया. महिला भी पीछे-पीछे आ पहुंची. स्वामी कहता—- ऑपरेशन मैं कराऊंगा. महिला कहती—- मैं करवाऊंगी. हेल्थ डिपार्टमेंट हैरान था — इतनी जल्दी है इन्हें! यहां केस तो ढूंढने से नहीं मिलते और ये दोनों ही तैयार हैं!

आखिर उस महिला ने एक लेडी डॉक्टर को एक ओर ले जा कर समझाया —- बहन जी, मेरा ही ऑपरेशन कर दीजिए. मैं किस-किसका ऑपरेशन करवाती फिरूंगी? मेरे तो दो जेठ और तीन देवर हैं. ब्याह तो इस अकेले गावदी से ही हुआ है. □

खटिया और फांस

किसी भी हाई स्कूल का हेडमास्टर एक खटिया होता है. आप कहेंगे—-खटिया? जी हां, हमारे इलाके में हेडमास्टर को खटिया ही कहते हैं.

यह तो आप जानते ही हैं कि खटिया के पाये जरूर होते हैं, सो, हेडमास्टर के भी चार पाये होते हैं. पहला पाया —- पी. टी. आई., जो अनुशासन कायम रखता है. दूसरा पाया —- क्लर्क, जो दफ्तर का काम चलाता है. तीसरा पाया — ड्राइंग मास्टर, जो स्कूल की सजावट करता है. और चौथा पाया—-चपरासी, जो हर समय हेडमास्टर के अंग-संग रहता है, हर तरह से उसकी सेवा करता है.

आप पूछेंगे, महाराज, तब सेकेंड मास्टर की कौन-सी जगह हुई? लीजिए, इसका जवाब भी सुनिए. क्लर्क के पास काम ज्यादा हो तो हेडमास्टर उसकी सहायता के लिए सेकेंड मास्टर को लगा देता है, ड्राइंग मास्टर को मोटो वगैरा लिखना हो तो सेकेंड मास्टर उसको गाइड कर देता है. चपरासी को घंटी बजाने के लिए टाइम टेबल बना देता है. पी. टी. आई. को कोई मैच खेलाना हो तो हेडमास्टर कह देता है—- सेकेंड मास्टर सा'ब जरा पी.टी. के साथ जाइए. सो भाई साहब, इस खटिया की अगर कोई चूल ढीली हो तो सेकेंड मास्टर को फांस के रूप में ठोक दिया जाता है. आप कहेंगे — फांस, हां श्रीमान, सेकेंड मास्टर किसी भी स्कूल की 'फांस' होता है. हेडमास्टर उसे हमेशा अपने हाथ में रखता है. □

किताब

तब मैं छठी जमात में पढ़ता था. किसी मित्र के कहने पर मैंने भाई चतरसिंह, पुस्तकों वाले, बाजार माई सेवां, अमृतसर से 'हीर-वारिस', चिट्ठी भेज कर मंगवा ली. छह रुपये की बी. पी. छुड़वायी तो बापू को पता चल गया. पूछने लगे-कौन-सी किताब मंगवायी है? मैं चुप. उन्होंने फिर पूछा — बताते क्यों नहीं?

मैंने कहा — यों ही बस, एक किताब मंगवायी है. पढ़ने के लिए.

बापू ने कड़क कर कहा — अरे नाम तो होगा उसका कोई?

मैंने डरते हुए जवाब दिया — वारिस शाह की 'हीर' है.

बापू को तसल्ली हो गयी. बोले—-फिर तो कोई बात नहीं. मुझे तो डर था कहीं कोक-शास्त्र न मंगवा लिया हो . . .

मैंने धीरे से कहा—-उसकी क्या जरूरत है, बापू. . . □

घर और घर

रघुकुल और प्रियदर्शन दोस्त थे. उनके घर भी पास-पास थे.

रघुकुल के पिता की बहुत ऊंची और शानदार इमारत थी, प्रियदर्शन के पिता का बस एक छोटा-सा एक कमरे का ही मकान था. दोनों दोस्त छोटी उम्र के थे. अभी स्कूल नहीं जाते थे. वे दोनों सारा दिन म्यूनिसिपल पार्क में खेलते रहते. सबेरे ही पार्क में आ जाते. दोपहर की रोटी खाने घर जाते और फिर पार्क में पहुंच जाते.

एक दिन दोपहर-बाद वे दोनों पार्क में आये तो दोनों उदास थे. बातें तो करते रहे, पर खेले नहीं!

—रघु, तू क्यों उदास है? प्रियदर्शन ने पूछा.

—आज मेरी ममी ने भाजी में देसी घी नहीं डाला था. रोटी अच्छी नहीं लगी.

अब रघु ने पूछा—तू क्यों उदास है?

—मुझे तो आज रोटी ही नहीं मिली. घर में आटा नहीं था... पिताजी पिछले छह दिन से बीमार हैं... □

टैंकर

गेहूं की पकने के करीब आयी बालियां सूखने को हो आयी थीं. बारिश की भी कोई उम्मीद नहीं थी. नलकूपों के इंजिन गुमसुम थे—तेल का अभाव था.

एक-एक डिब्बे के पैसे जेब में डाल कर किसान लोग शहर जाते और सारा-सारा दिन यों ही गुजार कर खाली हाथ घर लौट आते.

शहर के पंपों पर जाने कब तेल आता था और जाने कब खत्म भी हो जाता था.

इसी तरह कई दिन गुजर गये. एक दिन वे उदास चेहरे लिये दिन-छिपे गांव के अड्डे पर बस से उतरे. तेल का एक टैंकर उन्हें सामने से आता दिखायी दिया. क्षण भर के लिए एक आदमी ने दूसरे आदमी की आंखों में देखा. अन्य कई लोगों ने उनकी आंखों की ओर देखा. दूसरे पल ही वे सब पंक्ति बना कर टैंकर के सामने खड़े हो गये. पत्थरों की दीवार की तरह. टैंकर रुक गया. ड्राइवर और क्लीनर की क्या मजाल कि वे नीचे न उतरते!

—ड्राइवर सा'ब, भरो डिब्बा! एक ने कहा.

—ड्राइवर सा'ब, मेरा भी! दूसरे ने कहा... और इसी तरह सभी ने...

थोड़ी देर में ही सबके डिब्बे भर गये. तेल के पैसे ड्राइवर की जेब में थे.

उनके चेहरों पर लाली थी.

ड्राइवर के चेहरे पर भी लाली थी. □



• एस. टी. जोशी

मॉडर्न रांझा

चूचक ने हीर की मर्जी के खिलाफ जब उसे सैदा से ब्याह दिया, तब डोली चढ़ने से पहले हीर ने रांझे से कहा कि वह उससे मिलने आये. ब्याह के बाद भी वह उससे पूरा-पूरा इश्क निभायेगी.

रांझा जोगी बन कर रंगपुर गया. देखा, हीर पर तो बहुत-सी पाबंदियां लगी हुई हैं! सख्त पहरा था. उसे तो घर से बाहर ही नहीं निकलने दिया जाता था. हीर की ननद, सहती से रांझा की बातचीत हुई. सहती सुंदर भी थी और बातचीत में बहुत कुशल... बस, एक चिनगारी ही थी वह! रांझे की मुलाकातें सहती से ही होने लगीं. हीर तो एक बार ही मिल सकी. हीर ने सहती को सारी बात बताते हुए कहा कि वह उनके लिए कुछ ऐसा प्रबंध करे कि वे रंगपुर से निकल सकें. सहती रांझे से पूरी तरह घुल-मिल गयी थी. हर रोज उस जोगी से मिलने जाती. पांच दिन बाद पूरे रंगपुर में हाहाकार मच गया. रांझा जोगी अज्जू की बेटी सहती को अगुवा करके ले गया था. □

विविधा

समांतर कहानी : एक विचार-गोष्ठी

● विनोदकुमार तिवारी

१७ अगस्त को पुहुप साहित्य परिषद के तत्वावधान में बाराबंकी जनपद में 'समांतर कहानी' पर विचार-गोष्ठी का एक महत्वपूर्ण आयोजन स्थानीय युवा पीढ़ी के साहित्यकारों द्वारा किया गया.

मुख्य वक्ता डॉ. शंभूनाथ चतुर्वेदी जी ने 'समांतर कहानी' के कथ्य और शिल्प पर प्रकाश डालते हुए कहा कि इस प्रकार की कहानियां एक नये आंदोलन या नारे के रूप में पाठक वर्ग के सम्मुख आ रही हैं. डॉ. चतुर्वेदी ने यह स्वीकार किया कि समांतर कहानियां आर्थिक और सामाजिक वैषम्य को अंकित कर रही हैं. उन्होंने कमलेश्वर के इस कथन पर आपत्ति प्रगट की कि समांतर कहानियां जिंदगी की सक्रियता से जुड़ी रह कर अपने अस्तित्व को भोगने के लिए प्रेरित करती हैं.

डॉ. घनश्याम कृष्ण शुक्ल, पुलिस अधीक्षक, बाराबंकी ने कहा कि समांतर कहानी जीवन की कहानी है. साहित्य में खेमे गड़ने से अच्छा ही है, क्योंकि नये-नये खेमों के गड़ने से नयी प्रतिभाओं का जन्म होगा.

जिलाधीश श्री आर. एस. टोलिया ने परिचर्चा में भाग लेते हुए कहा कि आंचलिकता का प्राधान्य समांतर कहानियों में होना चाहिए. विनोदकुमार तिवारी ने विषय प्रवर्तन करते हुए कहा कि 'समांतर कहानी' वर्तमान समय का दस्तावेज है और आम आदमी के जीवन का नग्न अंकन इसमें हुआ है. शिल्प और कथ्य की दृष्टि से ये महत्वपूर्ण हैं. विनय कुमार दास ने कहा कि 'समांतर कहानी' मानवीय संवेदना को प्रमुखता देती है और किसी स्तर पर पाठकों के मन में टीस पैदा करती है. ये कहानियां न तो जीवन का हल देती हैं और न ही दिशा-निर्देश ही करती हैं. यही दोषारोपण अभिलाश चंद्र धीर ने भी किया. इसका उत्तर देते हुए विनोदकुमार तिवारी ने कहा कि आज का आम आदमी जीवन की अनिश्चयात्मक स्थिति में जी रहा है. समांतर कहानीकार भी उससे संबंधित है, तो वह दिशा-निर्देश ही कैसे दे सकता है!

राजेश वर्मा ने गोष्ठी में भाग लेते हुए कहा कि समांतर कहानी एक नारा मात्र है. इसके पूर्व भी सामाजिक यथार्थ प्रधान कहानियां लिखी जा चुकी हैं. विनोदकुमार तिवारी ने कहा कि समांतर कहानियों में यथार्थ का चित्रण तो है, परंतु शिव और सुंदर का अभाव नितांत खटक[ता]
है. इन पात्रों से कोई पाठक प्रेर[णा]
नहीं प्राप्त कर सकता. इस[के]
प्रत्युत्तर में विनयकुमार दास [ने]
कहा कि वर्तमान युग में मनुष्य [के]
लिए दो वक्त की रोटी ही [सब]
कुछ हो गयी है. ऐसी स्थिति में शि[व]
और सुंदर की कल्पना कैसे की [जा]
सकती है? इसका समर्थन अमर
बहादुर सिंह ने अरस्तू के कथन द्वा[रा]
किया कि 'स्वस्थ शरीर में स्व[स्थ]
मस्तिष्क का निर्माण होता है.'

इस गोष्ठी का संचालन डा. रा[म]
अंजोर सिंह, हिंदी-विभागाध्य[क्ष]
जवाहरलाल नेहरू स्मारक प[र]
स्नातक महाविद्यालय ने कि[या.]
उन्होंने कहा कि समांतर क[हा-]
नियां सामाजिक वैषम्य को [...]
करने का प्रयास कर रही हैं. [ ]

परिचर्चा-गोष्ठी का एक महत्वपूर्ण क्षण



कच्छी कथाकारों [का] सम्मान

साहित्यकार संघर्ष से भाग[ता]
नहीं, न ही वह समाज [से]
अलग-थलग रह सकता है. साहि[त्य]
तथा जीवन एक दूसरे पर आश्रि[त]
हैं, किंतु जो शाश्वत है, वह
साहित्य—ये उद्‌गार कच्छ [की]
खारी धरती के मीठे फल [के]
रूप में वहां की कहानियों [के]
सर्वप्रथम संग्रह **'खारी धर[ती]
मीठा फल'** पुस्तक का विमो[चन]
करते हुए **'सारिका'**-संपादक [श्री]
कमलेश्वर ने प्रकट किये.

श्री कमलेश्वर ने यह [भी]
कहा कि भाषा एक सीमा अ[...]
है, किंतु मानव-संवेदना [...]
समान है. यही कारण है कि साहि[त्य]
को प्रादेशिक अथवा देश-देश [की]
भौगोलिक सीमा में नहीं बां[धा]
जा सकता.

समारोह के अध्यक्ष, [...]
के महापौर श्री नानालाल मे[...]
ने कच्छ के सभी कहानीका[रों]
का अभिनंदन किया.

प्रारंभ में संस्था के मंत्री [श्री]
हेमराज शाह ने सबका स्वा[गत]
करते हुए कहा कि स्व.
जयंत खत्री की कहानी को पा[...]

स्तान की पाठ्य पुस्तक में सम्मिलित किया गया है. महाराष्ट्र राज्य के हायर सेकंडरी (कक्षा ११) की पाठ्य पुस्तक में जयंत खत्री के विषय में प्रिंसिपल श्री अमृतलाल याज्ञिक ने जो कुछ लिखा है, उससे प्रत्येक कच्छी को गर्व का अनुभव करना चाहिए.

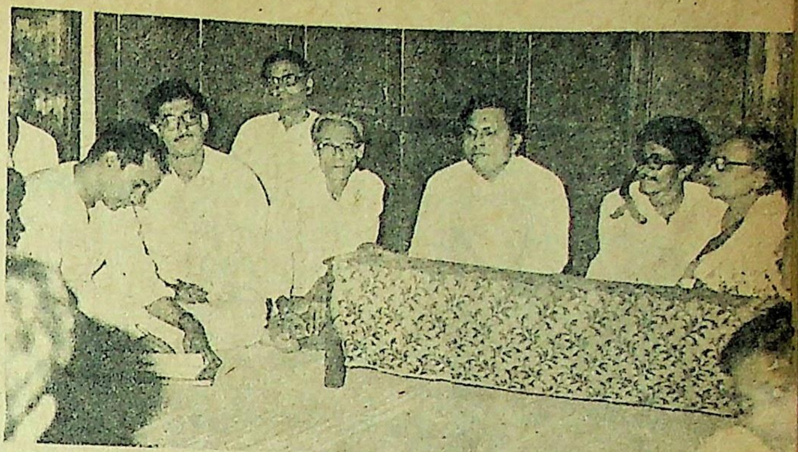
कच्छ से आये हुए डॉ. मनुभाई पांधी ने कथा-संग्रह की भूमिका को समझाया और कच्छी साहित्य के प्रणेताओं की सराहना की.

कथा-संग्रह के संपादक श्री मूलराज रूपारेल ने बतलाया कि कच्छी कलाकारों ने अपनी रचनाओं में अपनी विशिष्टता को बनाये रखा है, तथापि वे क्षेत्रीय भावनाओं से ऊपर हैं. श्रीमती सरोज पाठक ने इस समारोह को एक आनंददायक अवसर बतलाया. अंत में श्री बाबूलाल मेघजी शाह ने सबके प्रति आभार व्यक्त किया. □

बनारस : कथा-साहित्य की अद्यतन प्रवृत्तियों पर विचार

● मृगांक शेखर घोषाल

दीपावली के इर्द-गिर्द की ही कोई एक समशीतोष्ण शाम. मदैनी मोहल्ले में गोस्वामी तुलसीदास के नाम पर बनी प्राचीन संस्था 'तुलसी पुस्तकालय'.



गोष्ठी का एक दृश्य : (बायें से) सर्वश्री बुद्धिनाथ मिश्र, मनुदेव भट्टाचार्य, देवानंद शर्मा, भोलाशंकर व्यास, डा. शिवप्रसाद सिंह, मृगांक शेखर घोषाल तथा श्रीमती आशापूर्णा देवी

गोष्ठी में मुख्य अतिथि पद पर आसीन बंगला की प्रतिनिधि कथा-लेखिका श्रीमती आशापूर्णा देवी ने विषय-प्रवर्तन के बहाने कहा कि बंगला का वर्तमान कथा साहित्य विदेशी साहित्य की विकृत अनुकृति के कारण भोगवादी दौर से गुजर रहा है, जिसमें परंपरागत मूल्यों को तोड़ने की प्रवृत्ति अधिक है और नया विकल्प देने की क्षमता बिल्कुल कम.

उन्होंने कहा कि युद्धोत्तर काल में मूल्यों के टूटने का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह सामाजिक संदर्भों से जुड़ा हुआ था. साहित्य युद्ध की विभीषिका से संत्रस्त मानव मन को नजर-अंदाज नहीं कर सकता था. लेकिन इसके साथ ही एक रोग भी पैदा हुआ है, और वह रोग है दिशाहीनता का. संप्रति नयी पीढ़ी के रचनाकार दिशाहीनता के दौर से गुजर रहे हैं.

उन्होंने चिंता व्यक्त की कि बंगला कथा साहित्य में प्रतिभाशाली लेखिकाओं की संख्या धीरे-धीरे घटती ही जा रही है. आज बंगला कथा लेखिकाओं का प्रतिनिधित्व पुरानी पीढ़ी ही कर रही है.

हिंदी के प्रतिनिधि कथाकार डॉक्टर शिवप्रसाद सिंह ने संतोष व्यक्त किया कि हिंदी में यह बात नहीं है और नयी पीढ़ी की कई कथा लेखिकाओं ने हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है. उन्होंने बताया कि नयी पीढ़ी का हिंदी कथाकार दिशाहीनता की स्थिति से उबर कर नवीन मूल्यों की सृष्टि में जुट गया है. वह अपने दायित्व को अच्छी तरह समझने लगा है और इसीलिए वह कहानी में मामूली लोगों को उनकी अपनी भाषा और परिवेश में प्रस्तुत करने में ज्यादा सक्षम दिखायी देता है.

उन्होंने आशापूर्णा देवी की इस बात पर आपत्ति की कि बंगला में जो कुछ नया लिखा जा रहा है, वह बेकार ही है. उन्होंने कहा कि बंगला की कथा विधा भावुकता में रोने-गाने की स्थिति से बहुत आगे बढ़ चुकी है और हिंदी की कथा विधा भी 'देवदास' की परंपरा से मुक्त हो कर नया बौद्धिक आयाम ग्रहण कर रही है.

हिंदी के सुप्रतिष्ठित विद्वान प्रोफेसर भोलाशंकर व्यास ने कहा कि नवीनता के नाम पर यौन कुंठाओं और संत्रास वाली मनोवृत्तियों को आधार बना कर लिखी जा रही कथाओं का दौर अब लगभग खत्म हो चुका है. यह अच्छी बात है, जो स्वस्थ दिशा की ओर संकेत करती है.

गोष्ठी के संयोजक युवा कवि बुद्धिनाथ मिश्र ने काशी में एक ऐसे मंच की आवश्यकता महसूस की जहां हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं के साहित्यकार एक-दूसरे से मिल सकें और समसामयिक स्थितियों पर विचार-विमर्श कर सकें. उन्होंने कहा कि हिंदी में जिस अनुपात में अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की कृतियों का अनुवाद हो रहा है, उस अनुपात में हिंदी की कृतियों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद नहीं हो रहा है.

गोष्ठी का समापन श्री बुद्धिनाथ मिश्र के काव्य-पाठ से हुआ. आरंभ में तुलसी पुस्तकालय के मंत्री श्री देवानंद शर्मा ने साहित्यकारों का स्वागत किया और अंत में श्री मृगांक शेखर घोषाल ने धन्यवाद-ज्ञापन किया. □□□

हत्यारा

• अनीता औलक

उसे अचानक मोड़ पर संजीव मिल गया. मिल क्या गया, टकरा गया. उस टकराहट से जो झंकार पैदा हुई, उसमें वह खो गयी. वह सुन नहीं सकी कि संजीव ने उससे क्या-क्या कहा. उसका सारा ध्यान इसमें केंद्रित था कि उसे संजीव से क्या-क्या कहना है. लेकिन जिस तरह बिना किसी चेतावनी के वह दिखा था, ठीक उसी तरह गायब भी हो गया. उसने फिर चलना और सोचना शुरू किया. आखिर संजीव ने उससे क्या कहा होगा! क्या उसने यह तो नहीं कहा...और अगर यह नहीं तो यह कहा होगा...अगर यह भी नहीं तो फिर क्या?...

अच्छा हुआ जो उसने नहीं सुना, क्योंकि संभव है कि संजीव ने वह सब न कहा हो कि जिसकी उसे दरकार है —तलब है.

वह जानती है कि संजीव एक व्यस्त और स्तर वाला व्यक्ति है. शायद इसीकी वह कायल भी है. यह भूल कर कि वह अपने में कुछ भी नहीं. संभवतः यही हीन भावना उसे सुनने का अवसर कम और सोचने का अवसर अधिक देती रहती है.

अशोक से भी उसे संजीव ने ही मिलवाया था.

—तुम्हारा नाम संजीव है न?

—कहो.

—तो मिलवा दो...

वह देखता रहा था, उसे बिखरते हुए. उससे रहा नहीं गया. वह उसे घर ले आया. तब अशोक भी वहीं था. फिर पता नहीं कब संजीव लापता हो गया.

उसे संकोच जरूर हुआ था, लेकिन बिखरने से बच गयी थी. उसका महल बन गया था. महल के दो झरोखे थे. एक उसका बनाया हुआ था, दूसरा संजीव का. दुनिया से जुड़े रहने के लिए अशोक ने इन्हीं दो झरोखों को चुन लिया था.

वह अशोक को आंखों से पिलाती और संजीव उसे उनमें डूबने से बचाये रखता. संभवतः इन दोनों के बिना अशोक का जीवन बेवजह था. वह खुद भी इसका फैसला नहीं कर सका था कि इन दोनों में से किस एक की कमी होने पर भी वह जी सकता है.

वह अशोक को फूल, पत्तों और हवा का महत्व समझाती और संजीव उसका ध्यान सड़क के पत्थर और आकाश में उड़ान भरती पतंग की तरफ मोड़ता.

कभी-कभी जब उसके और संजीव के बीच मतभेद हो जाता तो अशोक के लिए धर्मसंकट उत्पन्न हो जाता. उस समय उसका और संजीव का आपसी समझौता ही उसे नया जीवन देता.

★ ★

पड़ोस में हत्या हो गयी थी—सुन कर उसकी रूह कांप गयी. यदि उसके घर में हत्या ही जाती तो संभवतः वह बर्दाश्त न कर सकती.

—क्यों...? हत्या करना कोई अनोखा काम है क्या? अशोक ने पूछा था.

—पता नहीं, लेकिन हर कोई भी नहीं कर सकता, उसने उत्तर दिया था.

—कोई भी कर सकता है... अगर मुकाम आये तो... संजीव ने कहा था.

—लेकिन हत्यारे को क्या मिलेगा...?

—मिलेगा कुछ नहीं...हत्यारा एक दयनीय व्यक्ति होता है... वह व्यक्ति जो किसी को कुछ दे न सके... हत्यारा ही होता है...उसे नफरत नहीं...अंडरस्टैंडिंग की दरकार होती है...

—अंडरस्टैंडिंग...क्यों...एक हत्यारे का अंडरस्टैंडिंग से क्या वास्ता?...

—हत्यारा भी इनसान ही होता है. ...उसकी भी अपनी अपेक्षाएं और सीमाएं हो सकती हैं...

—तुम समझते हो कि तुमने कह दिया और मैंने मान लिया!...वह बिगड़ पड़ी.

तभी अशोक बोला—सबसे ज्यादा तो तुम्हें अपनी सीमाएं तंग कर रही हैं... तुम समझने की कोशिश ही नहीं करना चाहतीं.

फिर उसे अपने साथ सटा कर बोला—अच्छा, अब छोड़ो...बड़ी नादान हो.

—और संजीव जिद्दी है...

—यह उसकी सीमा है...

—और तुम पक्षपाती हो...

—लेकिन... यह भी तुम्हारी ही सीमा है, उसने बचते हुए कहा. और तीनों हंस दिये.

★ ★

कई बार शामें घर पर ही निकल जातीं—जब संजीव नहीं होता था.ऐसे में भीड़ में अशोक को और भी अकेलापन सताता था.

दोनों खिड़की के पास बैठ कर चाय की चुस्की लगाते बाहर क्षितिज तक की सैर कर लेते. वह वही सब देखती जिसे अशोक देखता, उसी हवा में सांस लेती और फिर दोनों सांसों को एक ही लय देती—अशोक के जिस्म से आती गंध को अपने में कैद करती. फिर उसके कहे गये एक-एक शब्द को दस्तावेज का रूप देती और एक-एक पल को भी किसी दास्तान से कम न समझती. फिर दोनों अंधेरे की गिरफ्त में आ जाते...तब तक, जब तक कि किरणें ही न आक्रमण करतीं.



—तुम संजीव से क्यों प्यार करते हो? उसने बच्चों की तरह मचल कर पूछा.

—मैं तुम्हें क्यों प्यार करता हूं?

—मुझे क्या पता . . . तुम्हीं बताओ . . .

—मुझे तो यह भी नहीं पता . . .

—अच्छा तो फिर यह बताओ कि तुम मुझसे क्यों प्यार करती हो . . ?

—मुझे भी नहीं पता . . . फिर अशोक को कस कर, चूम कर बोली—तुम जलील हो.

—और तुम बेवकूफ हो. . .बैठे-बैठे अपने लिए समस्याएं पैदा करती रहती हो. . . फिर उसे अपने वक्ष से सटा कर बोला —तुम्हारी सीमा यह है. . . इसके आगे कुछ नहीं . . .

* *

पत्र-व्यवहार से अधिक और कोई संपर्क उसका संजीव से नहीं रह गया था. वह भी बारह पत्रों पर एक पत्र की वसूली की दर से :

तुम्हारे सभी पत्र मिल गये. . . तुमने अपने बारे में कुछ नहीं लिखा . . .

वह चाहती थी कि लिखे कि उसकी भी अपनी सीमाएं हैं. . .या फिर. . .तुमने भी तो अपने बारे में कुछ नहीं लिखा.

पता नहीं क्यों, वह अपेक्षा करती थी कि ऐसे में संजीव को उसके बिल्कुल निकट होना चाहिए था. अशोक के नाते ही सही . . .

वह उसे लिखना भी चाहती थी. लेकिन संभवत: कारण दूसरा होने के नाते नहीं लिख सकी.

एक बार वह रानीखेत भी गयी थी: संजीव को उसके आने का पता भी चला था. लेकिन उसके काम की दिक्कतें उसे परेशान किये हुए थीं. फिर वह जिन दिक्कतों को समझाने आया था, उन्हीं की वजह से लौट भी गया था.

उसने फिर उसे दूर,बहुत दूर तक जाते देखा—इतनी दूर, जहां समझना और समझाना दम तोड़ देता है.

जाने से पहले उसके मन में आया था कि उससे पूछे कि तुम्हारा नाम संजीव ही है न! लेकिन आज के संदर्भ में उसे यह सब बेमानी लगा.

जिस समय संजीव अशोक का दाह-संस्कार कर रहा था, उस समय कहीं उसे विश्वास था कि वह उसे जलायेगा नहीं,बल्कि जिलायेगा. . .फिर से. . .उसके लिए.

लेकिन देखते-देखते और का और ही हो गया था. संजीव इतना बिखर गया था कि उसे जिलाने की बात समझ ही नहीं आयी. उसे सब असंभव और अशुद्ध लगा. संभवत: सीमाओं के घेरे में आ चुका था.

—प्रत्येक व्यक्ति, फिर चाहे वह 'हत्यारा' ही क्यों न हो, किन्हीं सीमाओं से बंधा होता है—जिंदगी की मजबूरियां ही उसे 'हत्यारा' बना देती हैं. . . कोई भी व्यक्ति महज शौक से 'हत्यारा' नहीं बनता. . . संजीव ने कहा था . . .

—उसकी सीमाएं कुछ भी रहें, लेकिन औरों को तो नाहक दुख देता है न . . . वह बोली थी.

—लेकिन यह कैसे कह सकती हो कि स्वयं भी दुख नहीं पाता? . . .

—पाता होगा. . .लेकिन इससे तो बेहतर होता यदि अपने आप को मार देता, क्योंकि अपने दुख से दूसरों को मारना कोई समाधान नहीं . . .

—ठीक है, लेकिन अपने को मारना भी कहां का समाधान है?

—जो भी हो. . .लेकिन रहेगा 'हत्यारा' ही. . .

उसने इतना लंबा पत्र संजीव को लिखा कि जितने में वह अपने लिए न्याय मांग सकती. उसने उस पत्र को कई बार पढ़ा, मानो सामने खड़े संजीव को विश्वस्त कर रही हो. लेकिन सुनाने की जगह उसने सुना अधिक . . .

क्या संजीव भी उसे विश्वस्त करना चाहेगा?

□□□

सी–७/५७ ईस्ट ऑफ कैलाश,
डी. डी. ए. फ्लैट्स, नयी दिल्ली.

कृतियां

दो कहानी-संग्रह

'बातूनी लड़की'

लेखक : रामसरूप अणखी;
प्रकाशक : चित्रलेखा प्रकाशन, १४७ सोहबतिया बाग, इलाहाबाद; १३० पृष्ठ; सात रुपये

● से. रा. यात्री

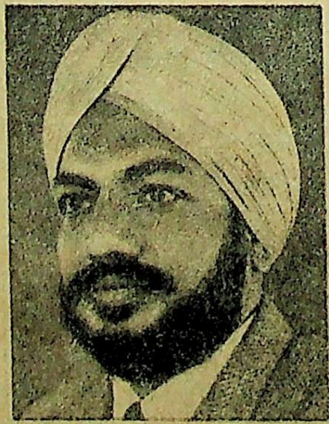
रामसरूप अणखी मूलतः पंजाबी के लेखक हैं और पंजाबी में अब तक उनके छह कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. प्रस्तुत संग्रह में अणखी की आठ कहानियां संग्रहीत हैं जो हिंदी की पत्रिकाओं में यत्र-तत्र प्रकाशित भी हो चुकी हैं. संग्रह के आरंभ में भूमिका स्वरूप **'गर्दिश के दिन'** (**'सारिका'** में पूर्व-प्रकाशित) भी शामिल हैं.

अणखी की कहानियां प्रायः छोटी हैं—मात्र एक कहानी **'कटे पंखों वाला उकाब'** अपेक्षया काफी लंबी है. **'गर्दिश के दिन'** को कहानी नहीं कहा जा सकता, पर इसमें उन परिस्थितियों का गहराई से उल्लेख किया गया है, जिन्होंने अणखी को रचनात्मक लेखन की ओर प्रवृत्त किया है. अणखी ने अपनी परिस्थितियों और परिवेश का बहुत बेबाकी और बारीकी से उल्लेख किया है. भूमिका के व्याज से इस आत्म-कथ्य में जो कुछ कहा गया है, उसमें श्रेष्ठ रचनात्मकता के सभी गुण समाविष्ट हैं.

'बातूनी लड़की' की लगभग सभी कहानियों में निम्नमध्य वर्ग के निरंतर ध्वस्त होते चले जाने के संकेत हैं. अणखी के लेखन की सर्व-प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने पंजाब के वृहत्तर देहात का प्रकृत रंग अपनी रचनाओं में पूरी तरह उजागर किया है. उनके कथ्य में एक ऐसी बेलौस सादगी है जो उन्हें पाठक से सीधे जोड़ देती है और शैली या शिल्प के स्थान पर कथ्य की विदग्धता ही पाठक का अभीष्ट बन जाती है. अणखी के अधिकांश पात्र पंजाब के ठेठ देहाती रंग में रंगे हैं, परंतु उनकी संवेदना इतनी व्यापक और सार्वजनीन है कि लोकेल कहीं व्याघात उपस्थित नहीं करता. वह अपनी कहानी किसी विचार अथवा गंभीर मंतव्य से आरंभ नहीं करते—रोजमर्रा की जिंदगी का घिचपिच माहौल और क्षीण होते हुए पात्र उनकी कहानियों को गहरी मानवीय संवेदना दे जाते हैं. आदमी से आदमी को जोड़ने वाला डायलॉग अणखी के लेखन का अदम्य अस्त्र है!

अणखी का कथ्य चूंकि महत्वपूर्ण है, इसलिए उन्हें कहानीपन को बरकरार रखने के लिए व्यर्थ की जोड़-तोड़ नहीं करनी पड़ती. संग्रह की आठ कहानियों में कई तरह के रंग देखे जा सकते हैं. इन कहानियों में यौन संबंधों का आकर्षण-विकर्षण भी देखा जा सकता है. अणखी ने दांपत्य संबंधों की बारीकियों का विश्लेषण कतिपय कहानियों में किया है—इस दृष्टि से उनकी कहानियां **'कटे पंखों वाला उकाब'**, **'खारा दूध'**, **'फासले'**, **'नहाया हुआ घोड़ा'** आदि द्रष्टव्य हैं. परिस्थितिजन्य संदेहों से दांपत्य संबंधों का अंदरूनी विश्वास किस प्रकार खंडित हो कर विदीर्ण हो जाता है, यह उनकी कई कथाओं का उपजीव्य है.

आम आदमी आज कितना त्रस्त है, और सुरसामुख-ऐसी बढ़ती महंगाई ने उसके पैरों को अपनी जमीन से कितना उखाड दिया है— यह भी अणखी की कहानियों में व्यक्त हुआ है. उनकी कहानी **'पहली तारीख'** और **'ईंधन'** इस दिशा में उल्लेखनीय हैं. मात्र वहिर्परिवेश अणखी के लेखन में नहीं मिलता — **'कटे पंखों वाला उकाब'**, **'खारा दूध'**, और **'नहाया हुआ घोड़ा'** में दैहिक उष्णता और वर्जना-विखंडन के सूक्ष्म संकेत निहित हैं.



रामसरूप अणखी

अणखी की कहानियों से गुजरते हुए महसूस होता है कि ये कहानियां गहरा कंप और जीवित थरथराहट पैदा करती हैं—ये कहानियां केवल इकहरी सचाइयों का अलबम नहीं हैं. आंदोलित करने वाली संप्रेषणीयता कतिपय कहानियों का मूल स्वर है. आर्थिक पराधीनता मानवीय आकांक्षाओं के कोमलतम स्तरों पर कैसी घिनौनी खरोंच छोड़ जाती है, यह कटु यथार्थ भी कई कहानियों में सफलता के साथ उभर कर सामने आ गया है. □

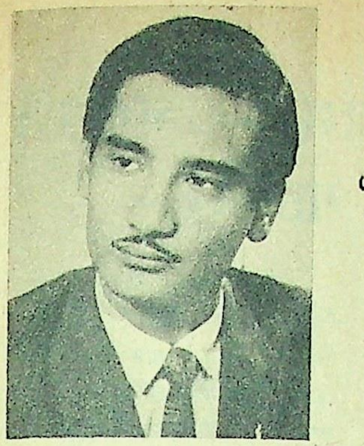
'अजनबी होता हुआ मकान'

लेखक : रॉबिन शॉ पुष्प;
प्रकाशक : अनुपम प्रकाशन, पटना; ७१ पृष्ठ; छह रुपये.

● डॉ. उषा वर्मा

कथ्य और कथन तथा आधुनिक भाव-बोध की दृष्टि से सातवें दशक के कहानी-शिल्प ने जिस स्वरूप और धारा-प्रवाह को अपनाया है, उसमें रॉबिन शॉ पुष्प की कहानियां सही उतर पायी हैं.

'अजनबी होता हुआ मकान' की सारी कहानियां जीवन की गहरी सूझ, नवीन अर्थ-गौरव, शिल्प के अनौपचारिक सुलझाव, ताजगी, सार्थक तथा उपयुक्त सांकेतिकता तथा दृष्टि की गहनता के कारण विशेष प्रभावशाली बन गयी हैं. इनकी कहानियों में अभिव्यक्त वर्तमान नारी-जीवन की विसंगतियों का सजीव चित्रण



पुष्प शौकीन

पाठक को न जाने कितने अलिखित अर्थ समझाने की क्षमता रखता है. प्रस्तुत कहानी-संग्रह की कहानियां दुनिया की वास्तविकता तथा जीवन के टूटते-चुभते दर्पण के स्वच्छ प्रतिबिंब हैं.

'अजनबी होता हुआ मकान' नारी-जीवन की गहरी पीड़ानुभूति तथा द्वंद्वपूर्ण मनोदशाओं का एक ऐसा चित्रफलक है, जहां जीवन की एक अव्यक्त उमस भरी तड़पन से मुक्ति पाने के लिए इला श्रीवास्तव पति, घर-द्वार, नारी-रिश्ते, सब कुछ छोड़ देने के बाद भी एक तनावपूर्ण संघर्ष तथा हर वक्त पीछा करती एक कड़वी संदेह दृष्टि से अपने को मुक्त करने में असफल रही. **'शवयात्रा'** मध्यम-वर्ग की घिसती-टूटती कसमसाहट भरी, बिखरती जिंदगी का दस्तावेज है, लक्ष्मी ऐसी ही टूटी हुई जिंदगी ढोने को विवश है. लेखक ने बड़ी ही बारीकी से मध्यम वर्ग के अर्थाभाव से संघर्ष-रत जीवन का चित्र खींचा है. एक ओर पैसे का अभाव, दूसरी ओर जीवन के प्रति एक नहीं टूटने वाला मोह **'शवयात्रा'** का दर्दनाक प्रस्तुतीकरण है. **'विकल्प'** एक शाश्वत अंतःसंघर्ष की विकल गाथा है. आदमी उम्र या परिस्थितियों से नहीं हारता है, बल्कि अंतःसंघर्ष की सुलगती आग में तिल - तिल बिखर कर राख हो जाता है. **'सर्पदंश उर्फ बैसाखियों पर टिका चेहरा'** नयी पीढ़ी के असफल विद्रोह की कहानी है. राजनीतिज्ञ पिता की तिकड़मबाजियों की बैसाखियों पर टिका पुत्र सामाजिक व्यवस्था, गंदी और बेईमान राजनीति के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता है, किंतु कर नहीं पाता, क्योंकि आत्मा नाम की चीज ढेर-सारी कुर्सियों, पदलोलुपता और काले धन के बोझ तले दब जाती है. □

एक उपन्यास

'माटी की महक'

लेखक : सच्चिदानंद धूमकेतु

● मधुकर सिंह

सन ६० के आसपास कतिपय कथाकारों ने भारतीय आर्थिक सामाजिक स्थितियों से कट कर वैयक्तिक अनुभूतियों और जिस 'संबंधहीनता की खोज' के प्रति अपनी संलग्नता दिखलायी थी, उसकी जड़ता से उपन्यास भी अछूता नहीं रहा था. इन बौद्धिक विलासियों की यह लाचारी थी कि वे अज्ञेय-जैनेंद्र की परंपरा से जुड़ते चले गये. नागार्जुन के **'बलचनमा'** और फणीश्वरनाथ रेणु के **'परती : परिकथा'** के बाद कुंठा और गत्यावरोध की स्थिति उत्पन्न होने लगी थी; परंतु **'अलग-अलग वैतरणी'**, **'आधा गांव'** की परंपरा पुनर्जीवित हुई और युवा कथाकार सच्चिदानंद धूमकेतु ने साठोत्तरी ग्रामीण जिंदगी के अंतर्विरोधों, मूल्यों और अर्द्धचेतन सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों को ले कर **'माटी की महक'** की रचना की.

धूमकेतु का यह उपन्यास **'माटी की महक'** बिहार के एक गांव रामपुर के आसपास केंद्रित है जो सन् '४६ के सांप्रदायिक दंगे से शुरू हो कर सन् '६२ के भारत-चीन युद्ध तक आ कर समाप्त हो जाता है. संपूर्ण उपन्यास नायिका गौरी के इर्द-गिर्द चक्कर काटता है जो किसानों के लिए जीवन-पर्यंत संघर्ष करती हुई अपने को बलिदान कर देती है. इस उपन्यास की कथा से अधिक महत्वपूर्ण है ठाकुर दे,मेन काका,हाजी साहब, मिसिर जी, ज्योति बहू, ओझाइन आदि के माध्यम से परिवर्तित होते गांवों की जीवंतता का वास्तविक चित्रण. लेखक अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल है और ग्रामीणों के संघर्षपूर्ण जीवन को चित्रित करते हुए इसने **'माटी की महक'** के अंतर्गत स्पष्ट किया है कि गांवों में सामूहिकता अब बिल्कुल नहीं रह गयी है. भाई और भाई तथा बाप-बेटे के बीच का तनाव अजीब तरह से जन्म ले चुका है. वैयक्तिक ईर्ष्या, राग-द्वेष, जातीयता और तरह-तरह की धार्मिक-सामाजिक संकीर्णताएं प्रबल होती जा रही हैं और बड़े और प्रतिष्ठित किसानों के चंगुल में खेतिहर मजदूर और निम्न श्रेणी के किसान तबाह और शोषित होते जा रहे हैं. परंतु लेखक को विश्वास है कि गंदी राजनीति के जाल से उबर कर गांव के सही लोग आगे आयेंगे. 'रास्ते कंटकाकीर्ण हैं, लेकिन उन्हें चलना है, रोटी के लिए, जीने के लिए.'

सामंती संस्कारों से ग्रस्त मोहन किसानों पर जुल्म करने के बावजूद अपनी प्रेमिका गौरी के प्रति कुंठाएं मार नहीं पाता और गौरी की हत्या भी करा देता है. गांवों से हो कर नेशनल हाइवे गुजरता है, बिजली के बल्ब चारों तरफ दौड़ गये हैं. फिर भी गांव में ऐसी अफवाहें जोर पकड़ लेती हैं कि 'पुवारी मुहल्ले में मुसलमान हिंदुओं को मार रहे हैं.' फिर तो गंड़ासे दंगाइयों के हाथों में दिखलायी पड़ने लगते हैं. उनकी आंखें खूंखार भेड़िये की तरह नजर आती हैं. सभी मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं. कितना भयावह बनता जा रहा है गांव! वस्तुतः धूमकेतु ने गांवों की छटपटाती हुई आत्मा की चीख पहचान ली है. इसीलिए **'माटी की महक'** एक संपूर्ण दशक की कथात्मक प्रतिक्रिया से ग्रामीण अर्थनीति में आमूल परिवर्तन की ओर संकेत देता है और इस सच्चाई के प्रति विश्वास व्यक्त करता है कि बगैर जनवादी चेतना के परिवर्तन की कामना गलत है. □□□

प्रसंग

पुण्य-स्मृति

मराठी नाट्य-आकाश के राजहंस : राम गणेश गडकरी

मराठी का साहित्य बहुत संपन्न है. अधिकांश पाठक-वर्ग परिष्कृत रुचि का है. लेखकों का आदर किया जाता है... पर वे इससे अधिक के हकदार हैं. फिर भी राम गणेश गडकरी ऐसे अकेले मराठी नाटककार, कवि और हास्यकार हैं, जिनके चमत्कार ने पिछली आधी शताब्दी से अधिक लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया है.

परंतु भाग्य बड़ा क्रूर होता है. ३४ वर्ष की ही आयु में इस राजहंस को मौत ने बड़ी निर्ममता के साथ उठा लिया. उस समय एक प्रतिभाशाली लेखक के रूप में, अपने जीवनकाल में ही, वह एक किंवदंती बन गये थे. भाग्य हमेशा ही उनके प्रतिकूल रहा.

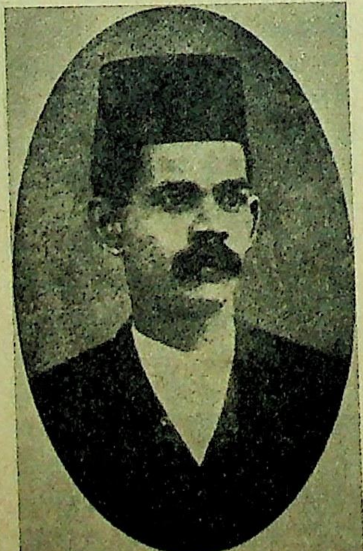
बड़े आश्चर्य की बात है कि गडकरी, जिन्हें मराठी रंगमंच का शेक्सपियर कहा जाता है, २६ मई, १८८५ को गुजरात में, नवसारी के पास, गणदेवी में एक सामान्य दर्जी के घर में जन्मे थे. उनके पिता गायकवाड़ी (गुजरात) में मामलतदार थे. इसलिए दस वर्ष की आयु तक उन्हें गुजराती में शिक्षा मिली. बालक राम, जिसे लाड़ में लालजी कहा जाता था, छुटपन में ही अपने पिता की छत्रछाया से वंचित हो गया. सारा परिवार ही इस आघात से चरमरा गया.

किशोर राम का जीवन घोर संघर्ष में बीता. **'ज्ञान प्रकाश'** के संपादक ने न जाने क्या सोच कर उसे पंद्रह रुपये मासिक पर व्यापार संवाददाता नियुक्त किया. परंतु युवा पत्रकार अंग्रेजी तारों का मराठी में अनुवाद करता था और घर पर ही रहता था. जब उससे बुला कर पूछा गया, तो वह संपादक पर उबल पड़ा—हर दिन मूल्य कैसे घट-बढ़ सकते हैं? अगर ऐसा होता है तो अधिकारियों की यह शैतानी रोकनी होगी. नतीजा यह हुआ कि उसकी वहां से छुट्टी कर दी गयी.

१९०५ में राम ने सीता से विवाह किया, लेकिन विवाह असफल रहा. कुछ वर्ष बाद, उनकी मां ने अपने होनहार पुत्र को थियेटर की जगमगाती रोशनियों की रंगीन दुनिया से दूर रखने के लिए, दूसरा विवाह करने पर विवश किया. लेकिन दूसरा विवाह भी एक त्रासदी में बदल गया. भाग्य एक झटके के बाद दूसरा झटका दे रहा था.

उनका मस्तिष्क विचारों की चकरघिन्नी में घूम रहा था. फर्गुसन कॉलेज के पहले वर्ष में ही उन्होंने नाटक लिखा—**'प्रेम संन्यास'**. इसकी प्रमुख कथा विधवा-विवाह से संबंधित थी, जो कि उन दिनों का बहुत विवादास्पद विषय था. निस्संदेह गडकरी का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा, यद्यपि नाटक पर लोगों की मिश्रित प्रतिक्रिया देखने को मिली. लेकिन उनका यह प्रयास थियेटर की रोशनी देखता, इससे पहले ही उन्हें एक और विपक्ष का सामना करना पड़ा.

राम गणेश गडकरी



संघर्षशील लेखक ने कुछ दिन पहले अपना नाटक **'गर्व निर्वाण'** लिख कर पूरा किया था. उनके स्टेज-मैनेजर शंकरराव मुजुमदार ने उसे चुपचाप कहीं खो दिया. बेचारे लेखक को पूरा नाटक फिर से लिखना पड़ा, और प्रसिद्ध किर्लोस्कर कंपनी में पुनर्लिखित नाटक का पाठ शुरू हुआ.

महाराष्ट्र में उन दिनों सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल का दौर चल रहा था. लोकमान्य तिलक **'केसरी'** के माध्यम से दहाड़ रहे थे. आगरकर तथा अन्य कुछ समाज-सुधारक सामाजिक क्रांति के अग्रदूत थे. गडकरी यद्यपि स्वभाव से कुछ संकोची थे, फिर भी उन्होंने नासिक जा कर कुछ क्रांतिकारियों से भेंट की थी. वहीं ओजस्वी बैरिस्टर सावरकर ने प्रखर राष्ट्रप्रेम की मशाल जलायी थी. गडकरी का नाटक एक रूपक था, जिसमें हिरण्यकश्यप के पौराणिक चरित्र द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की भर्त्सना करायी गयी थी.

प्रकृति से वह भक्त थे. पूना की गलियों में जहां कहीं भी वह गुजरते तो मारुति या किसी और मंदिर के समक्ष रुक कर जल्दी-जल्दी अपनी प्रार्थना जरूर कहते. अपने सिरहाने वह **'शिवलीलामृत'** अवश्य रखते थे. शिव और विठोबा के चित्र भी उनकी शैया के पास अवश्य रहते थे. शायद उनकी इसी भक्तिपरक रुचि की देन था **'पुण्यप्रभाव'**.

गडकरी का नाटक लिखने का एक अलग ही ढंग था. पहला अंक बाद में लिखते, बाद वाला पहले. नाटकीय गुणों, वाक्चातुर्य, भव्यता, करुणा और घोर त्रासदी में मराठी रंगमंच पर यह नाटक अभी तक अनोखा रहा है.

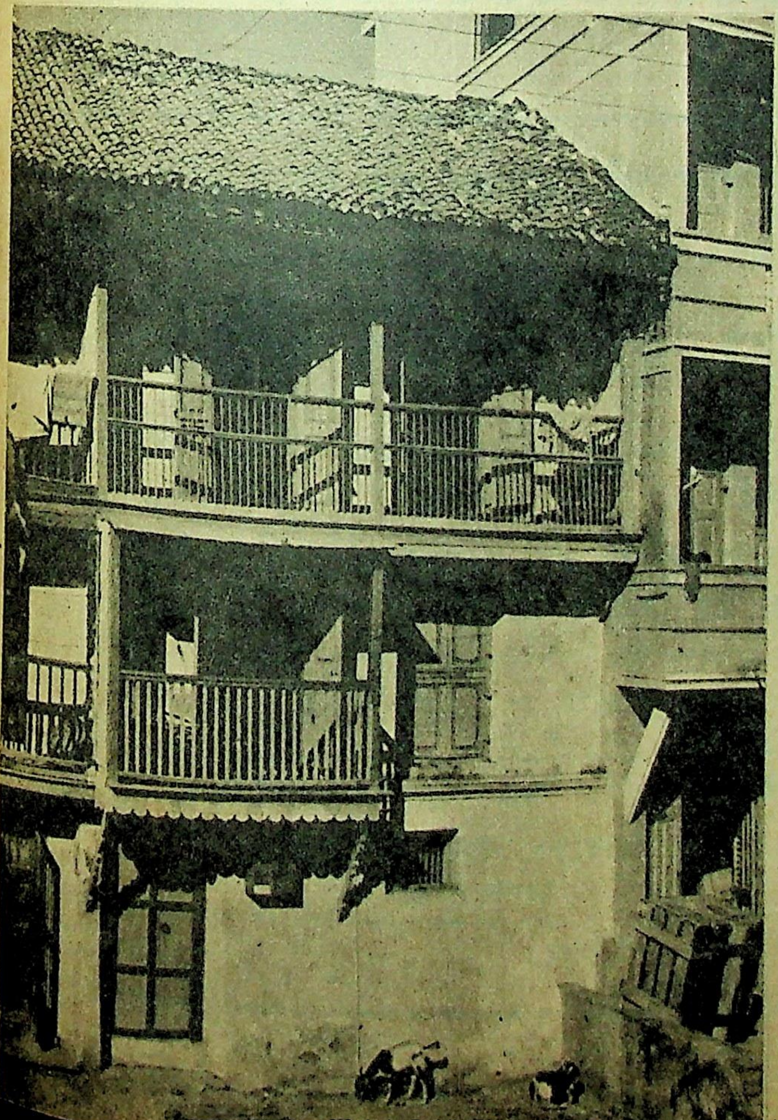
लेकिन उनके नाटकों में सबसे अधिक संपूर्ण और सशक्त है **'एकच**

प्याला', जिसमें उन्होंने एक शराबी पति और उसकी परंपरागत, दुख झेलती हिंदू पत्नी का इतने मार्मिक और प्रभावपूर्ण ढंग से चरित्र-चित्रण किया है कि स्त्री और पुरुष दोनों, आज भी थियेटर में आंखों में आंसू भर लाते हैं. मराठी रंगमंच के प्रिय कलाकार बालगंधर्व, सिंधु की भूमिका इस निपुणता के साथ निभाते थे कि वृद्ध दर्शक आज भी यही बताते हैं कि ऐसा नाटक कभी नहीं लिखा जायेगा और कोई कलाकार भी इस उत्पीड़ित गृहिणी की भूमिका में बाल गंधर्व को नहीं पहुंच सकेगा.

भाग्य ने गडकरी के साथ अपना जो क्रूर खेल खेला, उसमें सबसे दुखद बात यह थी कि गडकरी अपने अंतिम और सर्वश्रेष्ठ तीन नाटकों का मंचन स्वयं नहीं देख सके. ये नाटक उनकी मृत्यु के पश्चात् रंगमंच पर प्रस्तुत किये गये. **'भाव बंधन'** तो उस समय लिखा गया, जब उनका स्वास्थ्य बुरी तरह से बिगड़ रहा था. अपनी मृत्यु वाली रात, २३ जनवरी १९१९, को उन्होंने अंतिम अंक का अंतिम दृश्य लिखना आरंभ किया. साहित्य-जगत के इतिहास में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण देखने को नहीं मिलता, जहां नाटककार तब अंतिम दृश्य लिख रहा हो, जब कि वह स्वयं संसार के रंगमंच से विदा ले रहा है.

गडकरी की सबसे बड़ी ताकत और प्रभाव है, उनकी शब्दों पर मजबूत पकड़. सचमुच वह शब्दों के जादूगर थे, मराठी के सच्चे शब्द-मर्मज्ञ और चतुर श्लेषवादी.

वह घर, जहां मराठी नाट्य-आकाश के राजहंस, राम गणेश गडकरी का जन्म हुआ



जब किर्लोस्कर कंपनी पणजी (गोवा) में थी, उन दिनों उनकी जेब में कागज और स्याही खरीदने के लिए भी कुछ पैसे नहीं थे. निर्मम थियेटर मैनेजर शंकरराव मुजुमदार ने इस काम के लिए उन्हें चंद आने देने से भी साफ मना कर दिया. उस दशा में गडकरी ने इश्तहार इकट्ठा करके उनके पीछे अपने बहुत सुंदर नाटक **'पुण्यप्रभाव'** का पहला अंक लिखा.

उनकी सबसे अच्छी कविता **'राजहंस माझा निजला'** एक अमर कृति है. 'सुनहरे राजहंस' को विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन पर स्ट्रेचर में लाया गया. उनका चेहरा सूजा हुआ था और आंखें धंसी हुईं. वहां से उन्हें सावनेर (नागपुर के पास) ले जाया जा रहा था, जहां उनके भाई एडवोकेट थे. आंखों में आंसू लिये, सिसकियां भरते हुए, अपनी मौत का आभास पा उन्होंने अपनी अंतिम यात्रा शुरू की.

जब वह मरे तो ब्राह्मणों ने उनकी देह छूने से इनकार कर दिया. इसलिए नानासाहब खेडकर और मावलकर ने इस बदकिस्मत प्रतिभा का शव उठाने के लिए किसी तरह से चार भैया बुलाये--रामचरण, कालिकाचरण, शिवदयाल और रामरतन. कोलार नदी के किनारे उनके शव का दाह-संस्कार किया गया.

उनकी रचनाएं उद्धरणों का रूप ले चुकी हैं. अपने जीवनकाल में वह एक किंवदंती थे, आज भी हैं. मैं इस छोटी-सी श्रद्धांजलि को उनकी एक महान कविता **'कन्हैया बजाव मुरली'** की इन पंक्तियों से ही पूरा करूंगा :

अणु रेणु ही वेही स्वैर
भिन्नता विसरली वैर
अब नंदलाल! कर खैर,
प्रेमाची दुनिया उरलि,
कन्हैया बजाव मुरलि.

□ **वसंत देशमुख**

चंपा: पृष्ठ १५ से आगे

चीजों पर नजर डालती हुई, अपने में ही मस्त आगे बढ़ी जा रही थी. कई लोग जानबूझ कर इंदु और चंपा के बदन को हलका-सा स्पर्श करके चले जाते. कोई विलासप्रिय युवक अश्लील गाने की पंक्ति गुनगुनाता हुआ दो उंगलियां मुंह में डाल कर जोरों की सीटी बजा देता.

थोड़ी ही देर में वे दोनों भवानी के भव्य दालान में से निकल कर मंदिर के विस्तीर्ण आंगन में पहुंच गयीं. क्षणभर वे वहीं रुकी रहीं और सोचने लगीं कि अब किस दिशा में आगे बढ़ा जाये. दोनों ने प्रथम सारी दुकानें देख डालने का निश्चय किया.

दुकानों में बहुत भीड़ थी. कुछ लोग चीजें देखने-परखने में व्यस्त थे, कुछ मोलतोल करने में उलझे हुए थे और कुछ औरतों से बातचीत करने का मौका ढूंढ़ निकालने की ताक में थे. अपनी आंखें मटकाती हुई चंपा शौकीन नवयुवकों को तलाश रही थी. घंटे भर दोनों सहेलियां घूमती रहीं. अपने कामुक कटाक्षों से चंपा ने पांच-छह मर्दों को घायल कर दिया.

जब पालकी में बैठे हुए भगवान की फेरी निकली तो चमकीले कपड़े और हार पहने महाजन पालकी के इर्दगिर्द एकत्रित हो गये. उनकी कामांध नजर सुंदर-मोहक औरतों को खोजती रही.

देवदासियों के घेरे में चंपा शामिल हो गयी. उसकी मस्त शानदार चाल अनायास ही सबको अपनी तरफ आकर्षित कर रही थी. चंपा के अंग-प्रत्यंगों का सौंदर्य उस जानलेवा बीमारी में लगभग गायब हो चुका था. फिर भी सौंदर्य की कमी वह अपने नाजुक कटाक्षों से और लुभावने हावभावों से पूर्ण करने का प्रयास कर रही थीं.

मेलों का एक अनोखा नशा होता है. उस नशे से लोग बेहोश हो गये थे. चंपा देवदासी एक ही रात में ज्यादा से ज्यादा रुपये कमा लेने की लालसा से पागल हो उठी थी. नींद से आंखें झपक रही थीं, फिर भी वह आंख फैला कर उस असीम भीड़ में से शौकीन तथा दिलदार मर्दों को चुनने का प्रयत्न कर रही थी. मंदिर के अहाते में बेशुमार भीड़ थी. रात का एक बज चुका था पर फिर भी नाटक का पर्दा ऊपर नहीं उठा था. भीड़ में कोलाहल मचने लगा था.

चंपा मंदिर की सीढ़ियों पर ही बैठी थी ताकि मनचाहे तब उठ कर जा सके. उसकी नजर मर्दों की भीड़ पर टिकी हुई थी.

अचानक पिछवाड़े से किसी ने धीरे से उसे आवाज दी. घबड़ा कर वह पीछे मुड़ी तो व्यंकू देवले ने उसे इशारे से अपने पास बुलाया. चंपा उठ कर उसके पास गयी और फिर उससे हलकी आवाज में फुसफुसाती रही.

थोड़ी-सी देर बाद भड़कीले कपड़े पहने हुए एक मर्द वहां आ पहुंचा. जेब में से निकाल कर उसने नोटों की एक गड्डी व्यंकू देवले के हाथ में दी. व्यंकू ने वह चंपा के स्वाधीन किया.

--आधे घंटे के बाद आप आइयेगा. मैं इंतजार करूंगी, कहते हुए चंपा उसी क्षण घर की तरफ मुड़ी.

मेले के धुलीमिली आवाज वातावरण में निनादित हो रही थी. चंपा के हाथ में पचास रुपयों के नोट थे पर उन रुपयों के बदले में देने वाले की वासनापूर्ति करने की ताकत अब उसके शरीर में थी ही नहीं.

घर में कदम रखते ही मेले का वह अजीब नशा उतर गया. जीत कर आते हुए वीर के समान वह हतबल हो कर क्षणभर चारपाई पर लेट गयी.

मां और मौसी बच्चों के साथ अभी भी नाटक देख रही थीं. घर में वह बिलकुल अकेली थी. तभी वह अनजान गृहस्थ पांवों से जमीन कुरदते भारी-भरकम गैंडे के समान मस्ती में झूमता हुआ आ धमका, उसकी आहट पाते ही चंपा भय से कांप उठी.

वह चारपाई से उठी. मुंह पर मुसकान लाते हुए उसका स्वागत करके वह आगे बढ़ी. उसकी तरफ देखते ही वह मर्द सहसा रुक गया. उसके चेहरे पर परिवर्तित भाव उभरे. मंदिर की सीढ़ियों पर उसने चंपा को थोड़ी देर पहले ही तो देखा था. चंपा का यौवनावस्था का उन्माद लुप्त हो गया था. वह सूख गयी थी, पूर्णतः रसहीन हो गयी थी.

गुस्से से उस मर्द ने एक झटके में चंपा को अपने पास खींचा. वह दाम दे चुका था और अपनी पसंद लायक कुछ चंपा से प्राप्त करने की उसकी आशा नष्ट हो चुकी थी. लेकिन उसकी कामवासना अमर्यादित हो गयी थी. उस पर वह काबू नहीं कर सकता था.

चंपा ने नम्रतापूर्वक कहा--इस तरह आप नाराज मत हों. जरा बैठिये ना.

वह गरजकर बोला--बैठूं? किसलिए? पचास रुपयों में तो मुझे मस्त जवान लड़की मिलती. कहते हुए चंपा की बांह उसने इतनी जोर से पकड़ी कि दर्द के मारे चंपा चिल्ला पड़ी. उसने तुरंत बत्ती बुझा दी और चंपा को चारपाई पर पटक दिया.

चंपा अब जोर-जोर से चिल्लाने लगी--नहीं नहीं, ऐसा मत करो!

घर में और कोई था भी तो नहीं. वह बिलकुल अकेली थी. शरीर से क्षीण, थकीहारी, पुरुष से घृणा करने वाली और संभोग से पूरी नफरत करने वाली, वह चीख रही थी पर उसकी पुकार सुनने वाला कोई नहीं था. वह कामासक्त मर्द अपनी मर्दानगी, अपना पौरुष बेचारी बेसहारा चंपा पर उतारते हुए अपने पचास रुपये पूरी तरह वसूल कर रहा था. चंपा का हृदयविदारक आक्रोश, उसका हाहाकार क्षीण होते हुए घर के उस सूने अंधेरे में विलीन होता गया...

□□□

(अनुवाद : मालिनी बिसेन)


एक मस्ती
भरी चाय
जैसे बोतल
में भरी जाय



बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित. पो बाक्स २१३, बंबई—१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली—१; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट लंदन आफिस : ...

पंजीयत सं एम. एच. दक्षिण बंबई-३४